

दिव्य दृष्टि

द्वितीय खण्ड

ऋत और धर्म

संरक्षण का विज्ञान

अनिल पाण्डेय

लखनऊ, भारत



BlueRose ONE^{.com}
S t o r i e s M a t t e r

New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS

India | U.K.

Copyright © Anil Pandey 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-69822-11-4

Cover design: Deepak Katheria
Typesetting: Manisha Rawat

First Edition: July 2026

दिव्य दृष्टि त्रयी

प्रथम खण्ड

दिव्य दृष्टि: ब्रह्मांडीय श्वास

श्वास साधक और ब्रह्मांड के बीच सेतु के रूप में — प्राणायाम से शुमान अनुनाद तक, गंगा के विज्ञान से कुम्भ-योग की क्रियाविधि तक।

द्वितीय खण्ड

दिव्य दृष्टि: ऋत और धर्म

अन्तःकरण-रूपी आन्तरिक उपकरण स्वयं — पंचकोश, अन्तःकरण की चार वृत्तियाँ, कर्माशय, गुण, और उनके क्वांटम-यांत्रिक समानान्तर।

तृतीय खण्ड

दिव्य दृष्टि: यू-इनवर्स — चेतना का कोड

(जैसा भीतर, वैसा बाहर)

यू-इनवर्स सिद्धान्त — जब अवधान पूर्णतः प्रतिलोमित (inverted) होता है, तब मस्तिष्क स्वयं को ब्रह्मांड के सम्पूर्ण डिजिटल यमज (digital twin) के रूप में प्रकट करता है।

एक जिज्ञासा, तीन आन्दोलन — बहिर्मुखी श्वास, आन्तरिक स्थापत्य, ब्रह्मांडीय पहचान। यह तृतीय खण्ड त्रयी को पूर्ण करता है।

कोलाहलपूर्ण संसार में स्थिरता की खोज में लगी हर आत्मा के लिए —
और परमहंस स्वामी अङ्गङ्गानन्द जी महाराज के लिए,
जिनकी यथार्थ गीता की दृष्टि आज भी सबसे गहन दिशासूचक बनी हुई है।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

"सत्य के ताप से ऋत और सत्य का जन्म हुआ।"

— ऋग्वेद 10.190.1

ॐ



गहनतम श्रद्धा और कृतज्ञता के साथ

परमहंस स्वामी श्री अङ्गडानन्द जी महाराज

यथार्थ गीता आश्रम

जिनकी भगवद्गीता पर देदीप्यमान टीका — यथार्थ गीता — इस पुस्तक के लेखन में
प्रकाश और मार्गदर्शन का निरन्तर स्रोत रही है।

अध्यात्म का विज्ञान शृंखला

एक ही जिज्ञासा का अनुसरण करती कृतियों की शृंखला: कि वैदिक परम्परा की गहनतम अन्तर्दृष्टियाँ और आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष परस्पर प्रतिद्वन्द्वी नहीं हैं, बल्कि भिन्न-भिन्न उपकरणों के माध्यम से देखी गई एक ही व्यवस्था हैं।

दिव्य दृष्टि: ब्रह्माण्डीय श्वास

उद्गम खण्ड। श्वास की खोज ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की लघुतम इकाई के रूप में — एक मनुष्य की श्वास की लय और स्वयं ब्रह्माण्ड की लय के बीच का सामंजस्य।

ऋत एवं धर्म: संरेखण का विज्ञान

आधारभूत खण्ड। वह व्यवस्था क्या है (ऋत), मानव जीवन उसके प्रति किस प्रकार उत्तर देता है (धर्म), और उसके साथ संरेखण में जीने का व्यावहारिक विज्ञान। वही पुस्तक जो आपके हाथ में है।

कर्म का विज्ञान

परिणाम पर केन्द्रित खण्ड। किस प्रकार कर्म, बोध और प्रतिपुष्टि वह तन्त्र रचते हैं जिसके द्वारा संरेखण और विसंरेखण एक जीवन-भर में संचित होते जाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में विज्ञान

पराकाष्ठा का खण्ड। श्लोक-दर-श्लोक यह प्रमाणित करता हुआ कि गीता कोई रूपक नहीं, बल्कि चेतना, श्वास और ब्रह्माण्डीय नियम का एक सटीक विवरण है — वही प्रश्न जो डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने 2005 में रखा था, उसका पूर्ण उत्तर।

प्रत्येक पुस्तक स्वयं में पूर्ण है। साथ मिलकर वे एक ही तर्क रचती हैं, जो एक-एक चरण आगे बढ़ता है।

इस पुस्तक और वृहत्तर जिज्ञासा पर एक टिप्पणी

सन् 2005 में, एक ऐसी बातचीत में जिसे मैं कभी नहीं भूला, डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने मुझसे एक प्रश्न पूछा जिसने तब से मेरे लिखे हर शब्द को चुपचाप आकार दिया है। उन्होंने, सारतः, यह पूछा कि भगवद्गीता में विज्ञान कहाँ है। काव्य नहीं। भक्ति नहीं। विज्ञान — इस बात का परीक्षणीय, संरचनात्मक विवरण कि वास्तविकता वस्तुतः किस प्रकार कार्य करती है। यह किसी संशयवादी की चुनौती नहीं थी। यह उसके विपरीत था: एक ऐसे वैज्ञानिक का प्रश्न जिसे संदेह था कि ऋषि किसी वास्तविक वस्तु का वर्णन करते रहे हैं, और जो यह जानना चाहता था कि क्या उसे रूपक के बजाय तन्त्र की भाषा में पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

तब मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। मुझे विश्वास नहीं कि अब भी मेरे पास कोई पूर्ण उत्तर है। परन्तु वह प्रश्न एक दिशासूचक बन गया, और इस शृंखला की पुस्तकें उसका अनुसरण करने के मेरे प्रयास का अभिलेख हैं। यह पुस्तक — ऋत एवं धर्म — उस प्रयास की नींव है, और मैं यहाँ आरम्भ में ही स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि यह क्यों महत्वपूर्ण है और यह एक वृहत्तर जिज्ञासा में कहाँ स्थित है, ताकि आप इसे वैसा ही पढ़ें जैसा यह है।

*

**

यह जिज्ञासा वास्तव में श्वास से आरम्भ हुई। दिव्य दृष्टि: ब्रह्माण्डीय श्वास में, मैंने एक ही प्रेक्षण का उसके निष्कर्ष तक अनुसरण किया: कि श्वास केवल एक जैविक क्रिया नहीं, बल्कि ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की लघुतम दृश्य इकाई है — एक ऐसी लय जो एक शरीर के स्तर पर उसी आवर्ती गति का प्रतिबिम्ब है जो हमारी ज्ञात विशालतम संरचनाओं को संचालित करती है। वह पुस्तक सूक्ष्म जगत् और बृहद् जगत्, श्वास और ब्रह्माण्ड, एक और समग्र के बीच के सामंजस्य से सम्बद्ध थी। उसने एक ऐसा प्रश्न उठाया जिसका उत्तर वह अकेले पूर्ण रूप से नहीं दे सकती थी: यदि कोई ऐसी व्यवस्था है जो श्वास से लेकर ब्रह्माण्ड तक चलती है, तो वह व्यवस्था ठीक-ठीक क्या है, और मानव जीवन उसके साथ सम्यक् सम्बन्ध में किस प्रकार आता है?

यही वह प्रश्न है जिसका उत्तर देने के लिए यह पुस्तक विद्यमान है। वैदिक ऋषियों के पास उस व्यवस्था के लिए एक शब्द था — ऋत — और उसके प्रति मानवीय प्रतिक्रिया के लिए एक शब्द था — धर्म। ये धार्मिक पारिभाषिक शब्द नहीं हैं। ये संरचना के वर्णन हैं। ऋत वह संगति है जो नियमों को अस्तित्व में रहने देती है; धर्म वह है जो तब घटित होता है जब किसी मनुष्य का बोध और कर्म उस संगति के साथ संरेखण में आ जाते हैं। यह सम्पूर्ण पुस्तक उन्हीं दो अभिज्ञानों और उन्हें जोड़ने वाले व्यावहारिक विज्ञान का उद्घाटन है।

*
**

मुझे अपने दृष्टिकोण के विषय में ईमानदार होना चाहिए, क्योंकि वही यह आकार देता है कि मैं कैसे लिखता हूँ। मैं न तो कोई संन्यासी हूँ और न ही कोई परम्परागत विद्वान्। मैंने तीन दशक प्रौद्योगिकी, रोबोटिकी और संगठनों के नेतृत्व में बिताए हैं — एक कार्यमय जीवन जो तन्त्रों को या तो संगठित होते या बिखरते देखने में बीता, और प्रायः पीड़ादायक रूप से यह सीखने में कि ऐसा क्यों होता है। उस पृष्ठभूमि ने मुझे एक ऐसी बात के प्रति आश्चर्य किया है जो आध्यात्मिक प्रवृत्ति के किसी व्यक्ति के मुख से विचित्र लग सकती है: कि तन्त्र, प्रतिपुष्टि, बन्धन और संरेखण की भाषा प्राचीन अन्तर्दृष्टि के साथ विश्वासघात नहीं, बल्कि उसका सर्वाधिक निष्ठावान आधुनिक अनुवाद है। जब कोई संगठन अपने बाज़ार की वास्तविकता के साथ संरेखित होता है, तो वह प्रवाहित होता है; जब नहीं होता, तो कोई भी प्रयास उसे नहीं बचा पाता। ऋषि उसी नियम का वर्णन एक गहनतर स्तर पर कर रहे थे।

अतः आप पाएँगे, विशेषकर इस पुस्तक के परवर्ती भागों में, कि मैं बार-बार उस सीमा के आर-पार पहुँचता हूँ जिसे प्रायः एक विभाजक रेखा माना जाता है — ऋग्वेद और ऊष्मागतिकी के बीच, यथार्थ गीता और तंत्रिकाविज्ञान के बीच, प्राणायाम और तंत्रिकातंत्र की शरीरक्रिया के बीच। मैं ऐसा अध्यात्म को विज्ञान से सजाने के लिए नहीं करता, न ही विज्ञान को अध्यात्म में घटाने के लिए, बल्कि इसलिए कि मुझे विश्वास हो गया है कि वे एक ही वस्तु का वर्णन कर रहे हैं। डॉ. कलाम के प्रश्न में भी यही पूर्वधारणा निहित थी। यह शृंखला यह दिखाने का मेरा प्रयास है कि वह पूर्वधारणा सही थी।

*
**

इस सबको किस प्रकार ग्रहण किया जाए, इस पर एक शब्द। मैं आपसे यह नहीं कह रहा कि मेरा विश्वास करें। ऋत को विश्वास की उतनी ही आवश्यकता नहीं जितनी गुरुत्वाकर्षण को। उसे आवश्यकता है ध्यान की। आगे आने वाले अध्यायों को वैसे ही पढ़िए जैसे कोई वैज्ञानिक

किसी परिकल्पना को पढ़ता है: अस्थायी रूप से, परीक्षणीय रूप से, अपने ही अनुभव की कसौटी पर। जहाँ मैं भौतिकी या जीवविज्ञान के विषय में कोई दावा करता हूँ, वहाँ मैंने उसे यथार्थ रखने का प्रयास किया है और स्पष्ट रूप से अंकित किया है कि मैं कहाँ स्थापित विज्ञान से निकलकर व्याख्या में प्रवेश करता हूँ। जहाँ मैं वैदिक परम्परा का आश्रय लेता हूँ, वहाँ मैं उस वंश-परम्परा पर टिका हूँ जो मेरा अपना दिशासूचक रही है — परमहंस स्वामी अङ्गदानन्द जी महाराज और यथार्थ गीता की देदीप्यमान टीका। जो त्रुटियाँ शेष रह जाती हैं, वे मेरी अपनी हैं।

यह एक दीर्घ यात्रा का आधारभूत खण्ड है। आगे जो है, वह उसका तर्क है, जो एक-एक अभिज्ञान करके रचा गया है। आप जहाँ कहीं हैं, वहीं से आरम्भ कीजिए। व्यवस्था तो इस समूचे काल भर प्रतीक्षा करती रही है।

— अनिल पाण्डेय

प्रातःकथन: आप खोए हुए नहीं हैं, आप विसरेखित हैं

एक क्षण आता है, चुपचाप।

नाटकीय नहीं। विनाशकारी नहीं। बाहर से देखने वाले किसी के लिए लगभग अदृश्य। आप अपने जीवन के मध्य में बैठे हैं — चीजें चल रही हैं, कम-से-कम ऊपरी सतह पर — और फिर भी एक सूक्ष्म बेचैनी है जिसे आप ठीक-ठीक नाम नहीं दे पाते। पीड़ा नहीं। असफलता नहीं। संकट नहीं। बस यह हल्का किन्तु निरन्तर बना रहने वाला बोध कि कुछ ठीक नहीं है। किसी भी वस्तुनिष्ठ मापदण्ड से दिन अच्छा बीता है। जो करना आवश्यक था, वह आपने पूरा किया है। आपने अपने दायित्व निभाए हैं। अपने आस-पास के लोगों के मानक से आपने पर्याप्त रूप से, और सम्भवतः पर्याप्त से भी अधिक, कार्य किया है। और फिर भी, ज्यों-ज्यों सन्ध्या ढलती है, आपकी थकान में एक ऐसा भाव है जो केवल परिश्रम की शारीरिक थकावट नहीं है। यह कुछ अधिक मौन और अधिक विचलित कर देने वाली वस्तु है। यह बोध कि प्रयास किसी ऐसी दिशा की ओर लक्षित था जो पूर्णतः सही नहीं थी।

आप चारों ओर देखते हैं और सब कुछ अपने स्थान पर प्रतीत होता है। कार्य चल रहा है। दायित्व पूरे हो रहे हैं। आपके आस-पास के लोग सन्तुष्ट जान पड़ते हैं। किसी भी बाह्य मापदण्ड से जीवन आगे बढ़ रहा है। और फिर भी, कुछ स्थिर-सा प्रतीत नहीं होता। यह क्षण भ्रम नहीं है। यह चिन्ता नहीं है। यह इस बात का संकेत नहीं है कि कुछ गलत हो गया है। यह विसरेखण है।

*
**

अधिकांश लोग इस क्षण को कभी पहचान नहीं पाते कि यह वस्तुतः क्या है। इसके बजाय वे इसकी व्याख्या और अधिक सफलता, और अधिक उपलब्धि, और अधिक विकर्षण, और अधिक गतिविधि की आवश्यकता के रूप में करते हैं। अतः वे और तीव्र हो जाते हैं। वे और लक्ष्य, और उत्तेजना, और व्यस्तता जोड़ते जाते हैं। वे अपनी महत्वाकांक्षाओं को बढ़ाते हैं, अपनी रणनीतियों को परिष्कृत करते हैं, अपनी दिनचर्या को अनुकूलित करते हैं। वे अगली वस्तु का पीछा उसी सच्ची ऊर्जा के साथ करते हैं जो वे पिछली वस्तु में लगा चुके

थे। और कभी-कभी, कुछ समय के लिए, यह त्वरण काम कर जाता है — इस अर्थ में कि वह उस मौन संकेत से पर्याप्त विकर्षण बन जाता है जो कह रहा है कि किसी अधिक मूलभूत वस्तु की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

परन्तु त्वरण विसरेखण को ठीक नहीं करता। वह उसे और बढ़ा देता है। कोलाहल और प्रबल हो जाता है। कर्म और स्पष्टता के बीच की दूरी और चौड़ी हो जाती है। बेचैनी और गहरी हो जाती है। और अन्ततः, मनुष्य इस बोध पर पहुँचता है कि कोई भी बाह्य उपलब्धि उस वस्तु को हल नहीं करेगी जो मूलतः एक आन्तरिक विसरेखण है। यह पुस्तक उसी अभिज्ञान के क्षण के लिए लिखी गई है।

**

किसी मोड़ पर, यदि आप पर्याप्त रूप से सजग हैं, तो आप कुछ अधिक गहरा अनुभव करने लगते हैं। समस्या यह नहीं है कि आप क्या कर रहे हैं। समस्या यह है कि आप स्वयं वास्तविकता के साथ किस प्रकार सम्बन्ध रख रहे हैं। आप एक विशेष ढंग से जी रहे हैं — इस बारे में कुछ पूर्वधारणाएँ बनाते हुए कि चीजें कैसे चलती हैं, अपने अनुभव से कुछ अभ्यस्त रीतियों में सम्बन्ध रखते हुए, कुछ रणनीतियों के माध्यम से कुछ लक्ष्यों का पीछा करते हुए — और वे पूर्वधारणाएँ, रीतियाँ और रणनीतियाँ इस बात के साथ पूर्णतः सरेखित नहीं हैं कि चीजें वस्तुतः कैसे चलती हैं। किसी स्पष्ट अर्थ में गलत नहीं। नाटकीय रूप से भ्रमित नहीं। किन्तु सूक्ष्म रूप से, निरन्तर, और परिणामस्वरूप — कुछ हटी हुई।

यहीं एक प्राचीन अन्तर्दृष्टि पुनः प्रासंगिक हो उठती है। ऋग्वेद के मन्त्रों में एक शब्द है जो बार-बार, चुपचाप, बिना किसी व्याख्या के प्रकट होता है — मानो वह इतना स्वतःस्पष्ट था कि उसे किसी व्याख्या की आवश्यकता ही न थी।

ऋत

इसे दर्शन के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया था। इसे एक तथ्य के रूप में पहचाना गया था। ऋत कोई संकल्पना नहीं है। यह कोई विश्वास-पद्धति नहीं है। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे प्रयोग में लाने से पूर्व आपको बौद्धिक रूप से समझना आवश्यक हो। यह वह सरल, अकाट्य प्रेक्षण है कि अस्तित्व यादृच्छिक नहीं है। यह व्यवस्थित है। कठोरता से व्यवस्थित नहीं। यान्त्रिक रूप से व्यवस्थित नहीं। किन्तु गहराई से, बुद्धिमत्तापूर्वक, और निरापद रूप से व्यवस्थित।

जैसे ही आप जटिलता की खोज करना छोड़ देते हैं, आप इसे सर्वत्र देखने लगते हैं। श्वास एक लय में चलती है। हृदय बिना किसी निर्देश के धड़कता है। सूर्य बिना किसी मोल-तोल के उदित होता है। कारण बिना किसी अपवाद के कार्य की ओर ले जाता है। अपने मूल में कुछ भी अव्यवस्थित नहीं है। जो अव्यवस्थित प्रतीत होता है वह प्रायः पहली दृष्टि में समझने के लिए अत्यधिक जटिल, अनुसरण के लिए अत्यधिक तीव्र, या सचेत रूप से लक्षित करने के लिए अत्यधिक सूक्ष्म होता है। परन्तु व्यवस्था वहाँ है। वह सदैव वहाँ रही है। वह उसके समस्त मानवीय ज्ञान से पूर्व विद्यमान थी। ऋतु इस सबका आधार है। यह वह व्यवस्था है जो तन्त्रों को एक साथ धारण करती है, प्रक्रियाओं को कार्य करने देती है, परिवर्तन के मध्य भी संगति बनाए रखती है, और स्वयं अस्तित्व को बिना किसी अनुमति की अपेक्षा के टिकाए रखती है।

*

**

और फिर भी, यहाँ निर्णायक बात है। आप जीवन को व्यवस्थित रूप में अनुभव नहीं कर रहे। आप तनाव, भ्रम, खण्डितता और आन्तरिक कोलाहल का अनुभव कर रहे हैं। अतः प्रश्न उठता है: यदि अस्तित्व मूलतः व्यवस्थित है, तो जीवन अव्यवस्थित क्यों प्रतीत होता है? इसका उत्तर सरल भी है और असहज भी।

आप नियन्त्रण से बाहर नहीं हैं। आप संरेखण से बाहर हैं।

*

**

धर्म

धर्म कोई मत-पन्थ नहीं है। यह परम्परागत अर्थ में नैतिकता नहीं है। यह बाहर से थोपा गया कर्तव्य नहीं है। धर्म वह है जो तब घटित होता है जब आपका बोध और कर्म वास्तविकता की व्यवस्था के साथ संरेखित हो जाते हैं। जब आप स्पष्ट देखते हैं, तो आप स्पष्ट कर्म करते हैं। जब आप स्पष्ट कर्म करते हैं, तो घर्षण घट जाता है। जब घर्षण घटता है, तो जीवन प्रवाहित होने लगता है। इसलिए नहीं कि बाधाएँ हटा दी गई हैं, बल्कि इसलिए कि आप अब उसके विरुद्ध अनावश्यक प्रतिरोध नहीं रच रहे जो पहले से ही सत्य है।

यह पुस्तक आपको कुछ बिल्कुल नया सिखाने के विषय में नहीं है। यह उसे हटाने के विषय में है जो अनावश्यक है — कोलाहल, विकृति, संस्कार और पूर्वधारणा की संचित परतें

— ताकि जो पहले से ही सत्य है वह पुनः दृश्यमान हो सके। आपको संरेखण रचने की आवश्यकता नहीं है। आपको उससे दूर हटना बन्द करने की आवश्यकता है। और जैसे ही ऐसा होता है, थोड़ा-सा भी, आप कुछ उल्लेखनीय अनुभव करेंगे। बाहर कुछ भी नहीं बदला है। परन्तु सब कुछ भिन्न प्रतीत होता है। इसलिए नहीं कि जीवन सुधर गया है, बल्कि इसलिए कि आप अब इस बात का प्रतिरोध नहीं कर रहे कि वह वस्तुतः किस प्रकार कार्य करता है। वही परिवर्तन इस पुस्तक का विषय है।

— अनिल पाण्डेय

इस पुस्तक को कैसे पढ़ें

यह सहमत होने की पुस्तक नहीं है। यह परीक्षण करने की पुस्तक है। यहाँ किसी बात को इसलिए स्वीकार मत कीजिए कि वह गहन प्रतीत होती है। किसी बात को इसलिए अस्वीकार मत कीजिए कि वह आपकी पूर्वधारणाओं को चुनौती देती है। एकमात्र आवश्यक योग्यता है प्रेक्षण की तत्परता — अपनी श्वास का, अपनी प्रतिक्रियाओं का, अपने निर्णयों का, और जीवित रहने के अपने ही अनुभव का।

यह पुस्तक आपसे यह नहीं कहती कि आप किसी विशेष परम्परा में धार्मिक, दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक बन जाएँ। यह केवल इतना माँगती है कि आप जो भी पहले से कर रहे हैं, उसमें ईमानदारी लाएँ। ऋत के विषय में सत्य को किसी दीक्षा की आवश्यकता नहीं। उसे केवल ध्यान की आवश्यकता है। एक वैज्ञानिक, एक व्यवसायी, एक माता-पिता, एक विद्यार्थी, गहन आस्था का व्यक्ति अथवा बिल्कुल भी आस्था न रखने वाला व्यक्ति — ऋत और धर्म की समझ उन सबके लिए उपलब्ध है, क्योंकि यह इस बात का वर्णन है कि वास्तविकता वस्तुतः किस प्रकार कार्य करती है, न कि इस बात का विधान कि आपको उसके विषय में किस प्रकार विश्वास करना चाहिए।

प्रत्येक खण्ड पिछले पर निर्माण करता है, किन्तु ऐसे ढंग से नहीं जिसके लिए पूर्ण अनुक्रम आवश्यक हो। यदि आप स्वयं को किसी विशेष अध्याय की ओर खिंचा पाएँ, तो वहीं से आरम्भ कीजिए। जितना गहरे आप जाते हैं, उतना ही अधिक आप पाएँगे कि विचार पृथक् नहीं हैं — वे उसी अन्तर्निहित पहचान की अभिव्यक्तियाँ हैं, भिन्न कोणों से सम्पर्क की गई। भाग एक स्थापित करता है कि ऋत क्या है। भाग दो धर्म का ऋत के प्रति मानवीय प्रत्युत्तर के रूप में अन्वेषण करता है। भाग तीन परीक्षण करता है कि क्या होता है जब संरेखण विफल होता है। भाग चार सेतु प्रस्तुत करता है — श्वास और सजगता के वे अभ्यास जो संरेखण को व्यावहारिक रूप से सुलभ बनाते हैं। भाग पाँच और छह सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में और टिकाए गए अभ्यास की गहराती स्वाभाविकता की ओर लाते हैं। भाग सात और आठ बाहर की ओर देखते हैं, संसार के लिए निहितार्थों पर, और फिर पुनः भीतर की ओर, स्वयं यात्रा के गुण पर।

अनेक अध्यायों के अन्त में, आप एक संक्षिप्त अभ्यास या चिन्तन पाएँगे। ये शीघ्रता से पूर्ण करके आगे बढ़ जाने वाले व्यायाम नहीं हैं। ये आमन्त्रण हैं कि आप, अपने ही अनुभव में, सत्यापित करें जो अध्याय ने चर्चा की है। इस पुस्तक का मूल्य उसमें नहीं जो आप इसे पढ़ने के पश्चात् स्मरण रखते हैं। यह उसमें है कि आप इसे जीते हुए कितनी स्पष्टता से देखने लगते हैं। यह पुस्तक आपको उत्तर नहीं देगी। यह उसे देखने की आपकी क्षमता को तीक्ष्ण करेगी जो पहले से ही सत्य है। और जब वह होता है, तो संरेखण कुछ ऐसा नहीं जिसे आप अभ्यासित करते हैं। यह कुछ ऐसा है जो अपरिहार्य हो जाता है।

अनुशंसाएँ

प्रतिष्ठित विद्वानों, वैज्ञानिकों और अग्रणियों की प्रशंसा

प्रोफेसर अरुण तिवारी

मिसाइल वैज्ञानिक | स्वर्गीय डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के निकटतम व्यावसायिक
सहयोगी | अनेक पुस्तकों के लेखक | aruntiwariibhat.com

भारतीय चिन्तन में एक सुदीर्घ परम्परा रही है जो व्यवस्था को पदार्थ से पूर्ववर्ती मानती है — कि यह ब्रह्मांड वस्तुओं की कोई यांत्रिक व्यवस्था मात्र नहीं, बल्कि किसी भी विशिष्ट वस्तु या घटना से गहरे नियमों द्वारा शासित एक संरचित उद्घाटन है। वैदिक ऋषियों ने जिसे 'ऋत' कहा — ब्रह्मांडीय व्यवस्था, सम्यक् कर्म का आधार — वह कभी मात्र एक धार्मिक विचार नहीं था। वह एक सटीक अवलोकन था: कि यथार्थ में एक संगति है, एक दिशा है, सामंजस्य की ओर एक प्रवृत्ति है जो अस्तित्व में जो कुछ भी है, उससे पूर्ववर्ती है और उसे धारण करती है।

अनिल पाण्डेय की 'ऋत और धर्म: संरक्षण का विज्ञान' ठीक उस क्षण पर आई है जब संसार को इसी पुनर्खोज की तत्काल आवश्यकता है। एक व्यवस्था-चिन्तक (systems thinker) की स्पष्टता और एक सच्चे साधक की संवेदनशीलता के साथ, वे यह प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन अन्तर्दृष्टि और आधुनिक वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि एक ही अभिज्ञान की ओर संकेत कर रही हैं: कि मनुष्य तब समृद्ध होता है जब उसके कर्म यथार्थ की गहन संरचना के साथ संरेखित होते हैं, और तब पीड़ित होता है जब वह उसका प्रतिरोध करता है या उसकी उपेक्षा करता है। यह रहस्यवाद नहीं है। जैसा कि यह पुस्तक उचित ही तर्क देती है, यह हमारे लिए उपलब्ध सर्वाधिक व्यावहारिक बोध है।

डॉ. कलाम प्रायः प्राचीनों के ज्ञान को आधुनिकों के उपकरणों से जोड़ने की आवश्यकता की बात करते थे। 'ऋत और धर्म' ठीक वही कार्य है — बौद्धिक ईमानदारी, दार्शनिक गहराई और पाठक के रूपान्तरण के प्रति सच्ची चिन्ता से निर्मित एक सेतु। मैं इसकी हृदय से अनुशंसा करता हूँ।

— प्रोफेसर अरुण तिवारी

मिसाइल वैज्ञानिक | डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के सह-लेखक | aruntiwariibhat.com

डॉ. अशोक कुमार तिवारी

मुख्य वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त), सीएसआईआर-भारतीय रासायनिक प्रौद्योगिकी संस्थान,
हैदराबाद | प्रोफेसर, जैविक विज्ञान, वैज्ञानिक एवं नवाचार अनुसंधान अकादमी,
गाज़ियाबाद

जीवित तंत्रों और उन्हें शासित करने वाले सिद्धान्तों के बीच का सम्बन्ध सदियों से जीव विज्ञान, भौतिकी और दर्शन को व्यस्त रखता आया है। इन प्रत्येक अनुशासनों के अत्याधुनिक छोर से जो बात बढ़ती स्पष्टता के साथ उभरती है, वह वही है जिसे वैदिक परम्परा ने बहुत पहले व्यक्त कर दिया था: कि जीवन किसी उदासीन ब्रह्मांड में मात्र एक स्थानीय संयोग नहीं, बल्कि एक गहन व्यवस्थाकारी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति है जो प्रत्येक स्तर पर संचालित होता है — कोशिका की आणविक क्रियाविधि से लेकर पारितंत्रों की स्व-नियामक गतिकी और ब्रह्मांड-विज्ञान के गणितीय नियमों तक।

'ऋत और धर्म: संरक्षण का विज्ञान' इस अभिज्ञान से प्रशंसनीय कठोरता और सुगम्यता के साथ जूझती है। अनिल पाण्डेय अवधान के तंत्रिका-विज्ञान, स्व-नियमन के जीव विज्ञान, तथा प्रतिपुष्टि (feedback) एवं संगति के तंत्र-विज्ञान का सहारा लेकर यह दर्शाते हैं कि 'ऋत' की प्राचीन संकल्पना — ब्रह्मांडीय व्यवस्था — कोई काव्यात्मक रूपक नहीं, बल्कि यथार्थ वास्तव में जैसे कार्य करता है उसका एक सटीक वर्णन है। और धर्म — जिसे धार्मिक बाध्यता के रूप में नहीं, बल्कि उस व्यवस्था के प्रति सटीक, सन्दर्भ-संवेदी प्रतिक्रिया के रूप में समझा जाए — हमारे समय की केन्द्रीय मानवीय चुनौती और अवसर के रूप में उभरता है।

यह एक ऐसी पुस्तक है जो सावधान पठन का प्रतिफल देती है। विज्ञान ईमानदारी से प्रस्तुत हुआ है, दर्शन गहराई से, और व्यावहारिक निहितार्थ — कि हम कैसे जिएँ, कार्य करें, श्वास लें और चयन करें — दुर्लभ स्पष्टता के साथ। मैं इसे अपनी सशक्त अनुशांसा प्रदान करता हूँ।

— डॉ. अशोक कुमार तिवारी

मुख्य वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त), सीएसआईआर-आईआईसीटी, हैदराबाद |
प्रोफेसर, एसीएसआईआर, गाज़ियाबाद

आर. सी. मिश्रा

सेवानिवृत्त सिविल सेवक (आई.ए.एस.)

लोक प्रशासन की सेवा में बीते एक कैरियर में मनुष्य यह सीखता है — कभी-कभी पीड़ादायक रूप से — कि आशय और परिणाम के बीच की खाई प्रायः सदैव अवधारणा की खाई होती है। कोई निर्णय जो मान्यताओं के किसी विशेष समुच्चय के भीतर से उचित प्रतीत होता है, वैसे परिणाम उत्पन्न करता है जिनका पूर्वानुमान वे मान्यताएँ नहीं कर सकीं। इसका उपचार कभी भी मात्र अधिक सूचना नहीं है। वह है अधिक ईमानदार, अधिक सटीक, अधिक सन्दर्भ-संवेदी दृष्टि।

यह ठीक वही क्षेत्र है जिसका अन्वेषण 'ऋत और धर्म: संरक्षण का विज्ञान' इतनी अन्तर्दृष्टि और सावधानी से करती है। अनिल पाण्डेय का केन्द्रीय तर्क — कि धर्म नैतिक नियमों का कोई समुच्चय नहीं, बल्कि किसी परिस्थिति की वास्तविक आवश्यकताओं के प्रति सटीक प्रतिक्रिया का एक गुण है — मेरे सामने आए सर्वाधिक स्पष्टताकारी विचारों में से एक है। यह सुरुचिपूर्ण परिशुद्धता के साथ यह समझाता है कि अवधान के बिना नियम-पालन क्यों विफल होता है, और क्यों सच्ची प्रज्ञा — कर्म का वस्तुओं की गहन व्यवस्था के साथ संरक्षण — नेतृत्व या सेवा के किसी भी क्षेत्र में सबसे दुर्लभ और सबसे आवश्यक क्षमता है।

यह पुस्तक केवल व्यक्तिगत साधकों से ही नहीं, बल्कि उन सभी से बात करती है जो दूसरों को प्रभावित करने वाले निर्णयों का उत्तरदायित्व वहन करते हैं। यह एक विचारशील, कठोर और गहन मानवीय कृति है। मैं इसकी सच्चे उत्साह से अनुशंसा करता हूँ।

— आर. सी. मिश्रा

सेवानिवृत्त सिविल सेवक (आई.ए.एस.)

जे. कोगंती

संस्थापक, स्टेल्थ एआई | पूर्व उपाध्यक्ष, एस्टे लॉडर, यू.एस.ए.

आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता में सर्वाधिक परिणामकारी चुनौती है संरेखण की समस्या (alignment problem): आप यह कैसे सुनिश्चित करें कि बढ़ती क्षमता वाला कोई तंत्र वास्तव में हितकारी लक्ष्यों का अनुसरण करे — किसी संकीर्ण निर्दिष्ट अर्थ में मात्र नहीं, बल्कि शब्द के पूर्ण, सन्दर्भ-समृद्ध, मानवीय रूप से सार्थक अर्थ में? अरबों डॉलर और हमारी पीढ़ी के श्रेष्ठतम तकनीकी मस्तिष्क इस पर कार्यरत हैं। और जो वे धीरे-धीरे, कभी-कभी अनिच्छा से खोज रहे हैं, वह यह है कि यह मुख्यतः कोई तकनीकी समस्या नहीं है। यह प्रज्ञा की समस्या है।

अनिल पाण्डेय की 'ऋत और धर्म: संरेखण का विज्ञान' ठीक उपयुक्त क्षण पर मेरी मेज़ पर पहुँची। इसकी केन्द्रीय अन्तर्दृष्टि — कि संरेखण कोई गन्तव्य नहीं है जिसे अभियांत्रित किया जाए, बल्कि अवधान और प्रतिक्रिया का एक गुण है जिसे संवर्धित किया जाए — ठीक वही है जिसे एआई संरेखण की चर्चा को एक भिन्न दिशा से सुनने की आवश्यकता है। ऋत और धर्म का वैदिक ढाँचा वह प्रदान करता है जो कोई एल्गोरिथ्म नहीं दे सकता: इस बात का एक संगत विवरण कि किसी कर्म का वास्तव में सम्यक् होना क्या है, मात्र तकनीकी रूप से अनुकूलित होना नहीं।

यह एक ऐसी पुस्तक है जो प्रौद्योगिकी के बोर्डरूमों में उतनी ही व्यापकता से पढ़े जाने योग्य है जितनी ध्यान-साधना के समुदायों में। यह उदार, बुद्धिमान, व्यावहारिक रूप से आधारित और मौन रूप से अनिवार्य है। मैं इसकी बिना किसी हिचक के अनुशंसा करता हूँ।

— जे. कोगंती

संस्थापक, स्टेल्थ एआई | पूर्व उपाध्यक्ष, एस्टे लॉडर, यू.एस.ए.

डॉ. विवेक तंगरी

संस्थापक, वैदिक गुरुकुल | न्यासी, लेटे हुए हनुमान जी मंदिर, लखनऊ

वैदिक परम्परा ने सदैव धर्म को आचरण की किसी स्थिर संहिता के रूप में नहीं, बल्कि अस्तित्व की गहन व्यवस्था के प्रति एक गतिशील, जीवन्त प्रत्युत्तरशीलता के रूप में समझा है। प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक परिस्थिति, प्रत्येक क्षण का अपना धर्म होता है — सरेखित कर्म की अपनी आवश्यकता — और प्रज्ञा ठीक इसी में निहित है कि उस आवश्यकता को स्पष्टता से देखने और संस्कार, अहंकार या भय की विकृति के बिना उस दृष्टि से कर्म करने की क्षमता हो।

अनिल पाण्डेय ने 'ऋत और धर्म: सरेखण का विज्ञान' में जो सिद्ध किया है, वह इस प्राचीन बोध को समकालीन पाठक के लिए बौद्धिक कठोरता और सच्ची सुगम्यता दोनों के साथ उपलब्ध कराना है। वे आधुनिक तंत्रिका-विज्ञान, तंत्र-जीव विज्ञान और क्वांटम भौतिकी का सहारा वैदिक अन्तर्दृष्टि को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं, बल्कि उसकी परिशुद्धता को प्रदर्शित करने के लिए लेते हैं — यह दिखाने के लिए कि ऋषियों ने जिसे ऋत और धर्म की भाषा में वर्णित किया, उसे समकालीन विज्ञान संगति, स्व-संगठन और प्रतिपुष्टि की भाषा में धीरे-धीरे पुनः खोज रहा है।

यह दुर्लभ कृति है: दार्शनिक रूप से सुदृढ़, वैज्ञानिक रूप से सुविज्ञ, और व्यावहारिक रूप से रूपान्तरकारी। यह पाठक को केवल सरेखण को समझने की ही नहीं, बल्कि उसमें निवास करने की — बौद्धिक अभिज्ञान से जीवित अनुभव तक जाने की — दिशा दिखाती है। मैं इसे अपना हार्दिक आशीर्वाद और अनुशंसा प्रदान करता हूँ।

— डॉ. विवेक तंगरी

संस्थापक, वैदिक गुरुकुल | न्यासी, लेटे हुए हनुमान जी मंदिर, लखनऊ

डॉ. सर्वेश गोयल

उद्यमी एवं व्यवसाय अग्रणी / अध्यक्ष, जी.डी. गोयनका पब्लिक स्कूल, लखनऊ / द सेंट्रम

व्यक्ति और संगठन अपने कर्मों को उससे कैसे सरेखित करें जिसकी परिस्थिति वास्तव में माँग करती है — न कि उससे जो आदत, प्रतिष्ठा या स्वार्थ सुझाते हैं — यह नेतृत्व, शिक्षा और मानव विकास की केन्द्रीय चुनौती है। और जैसा कि यह उल्लेखनीय पुस्तक प्रदर्शित करती है, यह प्राचीन वैदिक परम्परा का भी केन्द्रीय प्रश्न है, जिसे ऐसी परिशुद्धता और गहराई के साथ सूत्रबद्ध किया गया है जो आज भी चुनौती और शिक्षा देता है।

'ऋत और धर्म: सरेखण का विज्ञान' यह तर्क — बलपूर्वक और सावधान विद्वत्ता के साथ — प्रस्तुत करती है कि ऋत की संकल्पना कोई धार्मिक अमूर्तन नहीं, बल्कि उस व्यवस्थाकारी सिद्धान्त का सटीक वर्णन है जो प्रत्येक स्तर पर यथार्थ को शासित करता है, और यह कि धर्म कोई नैतिक नियम-पुस्तिका नहीं, बल्कि उस व्यवस्था के प्रति सटीक, सन्दर्भानुकूल प्रतिक्रिया की गतिशील क्षमता है। शिक्षा के लिए इसके निहितार्थ गहन हैं: हम मात्र विषयवस्तु नहीं पढ़ा रहे, बल्कि सरेखित अवधान और प्रतिक्रिया की इस क्षमता का संवर्धन कर रहे हैं — या करने में विफल हो रहे हैं।

अनिल पाण्डेय एक व्यवस्था-चिन्तक की कठोरता और इन प्रश्नों के साथ वास्तव में जीने वाले व्यक्ति की ऊष्मा के साथ लिखते हैं। यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे मैं व्यापक रूप से साझा करने का संकल्प रखता हूँ। यह महत्वपूर्ण है।

— डॉ. सर्वेश गोयल

अध्यक्ष, जी.डी. गोयनका पब्लिक स्कूल, लखनऊ | द सेंट्रम

कर्नल लक्ष्मी कान्त तिवारी

भारतीय सेना (सेवानिवृत्त)

रणभूमि में, वास्तविक अनिश्चितता और वास्तविक दाँव की परिस्थितियों में, मनुष्य शीघ्र ही सीख जाता है कि निर्णय-प्रक्रिया मुख्यतः कोई संज्ञानात्मक प्रक्रिया नहीं है। वह एक आवधानिक (perceptual) प्रक्रिया है। वह अधिकारी जो स्पष्ट देखता है — जो वास्तविक परिस्थिति को कामना, भय या पूर्व-मान्यताओं की विकृति के बिना पढ़ता है — और जो वस्तुतः वहाँ उपस्थित है उसका प्रत्युत्तर देता है, निरन्तर उस अधिकारी से श्रेष्ठ प्रदर्शन करता है जो सूचना को अधिक धीमे या कम सटीकता से संसाधित करता है। भारतीय सैन्य परम्परा में वास्तविक परिस्थिति की माँगों के प्रति इस स्पष्ट-दृष्टि, सटीक प्रत्युत्तर की क्षमता को सदैव योद्धा का धर्म समझा गया है।

अनिल पाण्डेय की 'ऋत और धर्म: संरक्षण का विज्ञान' इस बोध का सर्वाधिक प्रकाशमान विवरण है जो मुझे सैन्य परम्परा से बाहर कहीं मिला है। उनकी केन्द्रीय अन्तर्दृष्टि — कि धर्म कोई स्थिर बाध्यता नहीं, बल्कि वस्तुओं की गहन व्यवस्था के प्रति क्षण-प्रतिक्षण का सटीक प्रत्युत्तर है — दबाव में नेतृत्व के जीवित अनुभव पर ठीक-ठीक बैठती है। और यह विवरण कि संस्कार, अहंकार और विकृत अवधान संरक्षित कर्म की मुख्य बाधाएँ क्यों हैं, समादेश (command) के लिए उतना ही प्रासंगिक है जितना चिन्तन के लिए।

यह सच्ची प्रज्ञा की पुस्तक है, जो स्पष्टता और बौद्धिक ईमानदारी के साथ प्रस्तुत की गई है। मैं इसे उन सभी को अनुशंसित करता हूँ जो किसी भी क्षेत्र में महत्वपूर्ण निर्णयों का उत्तरदायित्व वहन करते हैं। जय हिन्द।

— कर्नल लक्ष्मी कान्त तिवारी

भारतीय सेना (सेवानिवृत्त)

इस पुस्तक का एक दृश्य मार्गदर्शक

मूल ढाँचा — आरेखों में संक्षिप्त

मनुष्य असफल नहीं हो रहे। वे विसरेखित हैं। सब कुछ क्रियाशील प्रतीत होता है — फिर भी भीतर घर्षण है। वह घर्षण यादृच्छिक नहीं है। वह संरचनात्मक है। जीवन इसलिए कठिन नहीं लगता कि वास्तविकता टूटी हुई है, बल्कि इसलिए कि वास्तविकता के साथ हमारा सम्बन्ध विकृत है। इस अनुभाग के आरेख पुस्तक के सम्पूर्ण ढाँचे को चित्रों में संक्षिप्त कर देते हैं। जब भी आपको दिशा की आवश्यकता हो, इनकी ओर लौट आइए।

ऋत एवं धर्म — मूल ढाँचा		
सम्पूर्ण दर्शन उसकी अनिवार्य संरचना में संक्षिप्त		
बोध → कर्म → परिणाम → प्रतिपुष्टि → बोध		
ऋत अदृश्य व्यवस्था	सेतु आस और सजगता	धर्म स्वीकृत प्रवृत्तियाँ
वास्तविकता प्रकृत: व्यवस्थित है	आस: जैविक प्रवेश-बिन्दु	मूल-गन्ध या नैतिकता नहीं
यादृच्छिक नहीं, अव्यवस्थित नहीं	सजगता: सुधारक शक्ति	परिस्थिति बदलते जो मंगती है
भौतिकी • जीवविज्ञान • मन • समाज	बोध: निर्णय की परत	सन्दर्भ-संवेदी कर्म
मानव चिन्तन से पूर्व विद्यमान	एक सचेत आस अवस्था बदल देती है	समय के साथ संगति बनाए रखता है
समस्त अस्तित्व का आधार	स्पष्टता की ओर लौटना सदा सुलभ	स्पष्ट दर्शन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति

पुस्तक का आरम्भ — प्रारम्भिक संश्लेषण

मूल ढाँचा: ऋत • धर्म • कर्म और इनके बीच का सेतु
पुस्तक का आरम्भ — प्रारम्भिक संश्लेषण

अस्तित्व और संरक्षण की वास्तुकला

किस प्रकार ब्रह्माण्डीय व्यवस्था मानव जीवन से होकर धार्मिक कर्म तक प्रवाहित होती है

1
ऋत — ब्रह्माण्डीय व्यवस्था

समस्त अस्तित्व का शासन करने वाली अदृश्य व्यवस्था . भौतिकी . जीवविज्ञान . तन्त्र . चैतन्य

2
मानव तन्त्र

शरीर . श्वास . मन — ब्रह्माण्डीय व्यवस्था और सचेत चयन के बीच जीवित अन्तरासूत्र

3
बोध-इंजन

किस प्रकार संस्कार, भाव और ध्यान हमारे देखे को छानते हैं — चिकित्सा का बीज

4
अन्तराल

श्वास . सजगता . उद्दीपन और प्रतिक्रिया के बीच का ठहराव — जहाँ धर्म निवास करता है

5
कर्म-परत

निर्णय . आपरण — स्पष्ट या विकृत बोध से उत्पन्न

6
कर्म — प्रतिपुष्टि

परिणाम सूचना के रूप में लौटते हुए, सदा अंतिक संरक्षण की ओर संकेत करते हुए

7
धर्म — संरक्षित जीवन

सटीक प्रयुत्तर . प्रवाह . प्रयासहीन कर्म . निरन्तर संरक्षण का फल

मूल आरेख — सम्पूर्ण पुस्तक के अध्यायों का सिंहावलीचित्र

मूल वास्तुकला: किस प्रकार ब्रह्माण्डीय व्यवस्था मानव जीवन के माध्यम से अभिव्यक्त होती है
प्रमुख आरेख — सम्पूर्ण चित्र

विभिन्न स्तरों पर ऋत

यही अदृश्य व्यवस्था अस्तित्व के हर स्तर पर क्रियाशील

ब्रह्माण्ड
भौतिकी और गणित

मुख्य . विद्युतचुम्बकत्व

नाभिकीय बल

गणितीय नियम

13.8 अरब वर्षों से वृद्धिमान

ऋत क्रियाशील

जीवविज्ञान
जीवन और स्वयं-नियामन

समस्थिति . प्रतिरक्षा-तन्त्र

श्वास . हृदयगति . मस्तिष्क

औपन्य प्रतिकृति

शरीर स्वस्थ रहना चाहता है

ऋत क्रियाशील

मन
विचार और कार्यकारणता

विचार → भाव → कर्म

संस्कारगत प्रतिक्रिया

कारणानुसंगिक मानसिक चक्र

स्वरतः स्वाभाविक अवस्था

ऋत क्रियाशील

समाज
तन्त्र और नैतिकता

विश्वास . बाजार . संस्कृति

संगठन और प्रतिपुष्टि

नैतिक संगति

सांस्कृतिक संरक्षण

ऋत क्रियाशील

अध्याय 2 — ऋत वस्तुतः क्या है

विभिन्न स्तरों पर ऋत: ब्रह्माण्ड, जीवविज्ञान, मन और समाज में वही व्यवस्था
अध्याय 2 — ऋत वस्तुतः क्या है

कर्म-चक्र

प्रत्येक कर्म परिणाम उत्पन्न करता है : परिणाम बोध को पुनः गढ़ते हैं



विकृत बोध → विस्तारित कर्म → सुचारु (दुःख)

स्पष्ट बोध → संरक्षित कर्म → प्रवाह (कर्म)

अध्याय 13 — कर्म: परिणाम का तर्क

कर्म-चक्र: बोध कर्म को, कर्म परिणाम को, परिणाम प्रतिपुष्टि को संचालित करता है
अध्याय 13 — कर्म: परिणाम का तर्क

संरक्षण बनाम विसंरक्षण

एक ही वास्तविकता में गति करने के दो मूलतः भिन्न ढंग

विसंरक्षण	संरक्षण
विचार हुआ, प्रतिक्रियात्मक ध्यान	उपस्थित, सोहेय ध्यान
संस्कारगत स्वचालित प्रतिक्रियाएँ	सजग, ध्यात प्रत्युत्तर
वास्तविकता को विचार करना	वास्तविकता जैसी है वैसे चलना
शरीर और मन के संकेतों की उपेक्षा	संकेतों को सूचना के रूप में पढ़ना
सहने योग्य बाधा के रूप में तनाव	सीखने योग्य प्रतिपुष्टि के रूप में तनाव
समय के साथ संचित होले परिणाम	परिणाम सूचित और संशोधित करते हैं
प्रश्न: मुझे जो चाहिए वह कैसे मिले?	प्रश्न: यह क्या माँगता है?

पुस्तक का आरम्भ — संकल्पना परिचय

संरक्षण बनाम विसंरक्षण: वास्तविकता में गति करने के दो मूलतः भिन्न ढंग

पुस्तक का आरम्भ — संकल्पना परिचय

अनुक्रमणिका

भाग एक ऋतः अदृश्य व्यवस्था	1
अध्याय एक समझ से पूर्व, व्यवस्था है	2
अध्याय दो ऋत वस्तुतः क्या है	6
अध्याय तीन वास्तविकता की वास्तुकला	10
अध्याय चार शरीर में ऋत	13
अध्याय पाँच श्वास — जीवित सेतु	17
अध्याय छह मन में ऋत	20
अध्याय सात तन्त्रों में ऋत — संगठन, समाज और बाज़ार	23
अध्याय आठ आप ऋत की एक अभिव्यक्ति हैं	26
भाग दो धर्मः मानवीय प्रत्युत्तर	29
अध्याय नौ धर्म — इसका वास्तविक अर्थ	30
अध्याय दस सम्यक् कर्म — परिशुद्धता, नैतिकता नहीं	33
अध्याय ग्यारह भूमिका, दायित्व और सन्दर्भगत धर्म	36
अध्याय बारह धार्मिक निर्णय	39
अध्याय तेरह कर्म — परिणाम का तर्क	42
अध्याय चौदह संस्कार और स्पष्टता की बाधा	45
अध्याय पन्द्रह वह स्पष्टता जो सब कुछ बदल देती है	47
भाग तीन विसरेखणः जब जीवन स्वयं का प्रतिरोध करता है	50
अध्याय सोलह ऋत की उपेक्षा का मूल्य	51
अध्याय सत्रह नियन्त्रण का भ्रम	54
अध्याय अठारह तनाव एक संकेत के रूप में	57
अध्याय उन्नीस असफलता एक प्रतिपुष्टि के रूप में	60

भाग चार सेतु: श्वास, सजगता और बोध	62
अध्याय बीस श्वास प्रवेश-द्वार के रूप में	63
अध्याय इक्कीस सजगता — सुधारक शक्ति	65
अध्याय बाईस बोध — वास्तविक रणक्षेत्र	67
अध्याय तेईस प्रतिक्रिया से प्रत्युत्तर तक	69
भाग पाँच सजीव धर्म: दैनिक जीवन की बुनावट में संरेखण	71
अध्याय चौबीस साधारण जीवन का धर्म	72
अध्याय पच्चीस धार्मिक अभिव्यक्ति के रूप में कार्य	75
अध्याय छब्बीस सम्बन्ध और सत्य का धर्म	77
अध्याय सत्ताईस ध्यान, समय और ऊर्जा	79
भाग छह प्रयास से प्रवाह की ओर: संरेखण का गहराना	81
अध्याय अट्ठाईस प्रयासरहित कर्म का विरोधाभास	82
अध्याय उनतीस कर्ता का विलय	84
अध्याय तीस भीतर और बाहर एकरूप	86
भाग सात भविष्य: लुप्त ढाँचे के रूप में ऋत	88
अध्याय इकतीस व्यवस्थित रूप से संरेखण से बाहर एक संसार	89
अध्याय बत्तीस भविष्य के ढाँचे के रूप में ऋत	91
अध्याय तैंतीस व्यक्ति ही आरम्भ है	93
भाग आठ समापन: कोई अन्त नहीं, केवल गहनतर संरेखण	95
अध्याय चौंतीस प्रश्न को जीना	96
अध्याय पैंतीस एक अन्तिम अभिज्ञान	98
भाग नौ गहनतर मूल: संरेखण का वैदिक विज्ञान	100
अध्याय छत्तीस ऋग्वेद और ऋत की खोज	101
अध्याय सैंतीस सत्य: धार्मिक कर्म के आधार के रूप में सत्य	104
अध्याय अड़तीस यथार्थ गीता: संरेखण के विज्ञान के रूप में गीता	106
अध्याय उनतालीस प्राणायाम: श्वास-संरेखण का व्यवस्थित विज्ञान	108

भाग दस आन्तरिक विज्ञान: चेतना, बोध और साक्षी	110
अध्याय चालीस त्रिगुण: प्रकृति के विधान	111
अध्याय इकतालीस चित्त वृत्ति: चेतना की तरंगें	114
अध्याय बयालीस संस्कार: अतीत की वास्तुकला	116
अध्याय तैंतालीस साक्षी: द्रष्टा चेतना	118
भाग ग्यारह व्यवहार में संरेखण: एक समेकित दृष्टिकोण	120
अध्याय चौवालीस संरेखण में जिया गया एक दिन	121
अध्याय पैतालीस दीर्घ चाप: आजीवन अभ्यास के रूप में संरेखण	124
अध्याय छियालीस दुःख की रसायन-विद्या	126
अध्याय सैंतालीस ऋत और अर्थ का प्रश्न	128
भाग बारह विज्ञान प्रज्ञा से मिलता है: प्राचीन अन्तर्दृष्टि और आधुनिक समझ का अभिसरण	130
अध्याय अड़तालीस तंत्रिकाविज्ञान और संरेखण का विज्ञान	131
अध्याय उनचास तन्त्र-विज्ञान और ऋत की प्रज्ञा	134
अध्याय पचास परम्पराओं में ऋत: सार्वभौमिक अभिज्ञान	136
भाग तेरह चेतना की पारिस्थितिकी: प्रेम, दुःख और प्राकृतिक संसार	138
अध्याय इक्यावन अहिंसा: संरेखण के रूप में अहिंसा	139
अध्याय बावन प्रकृति का धर्म: पारिस्थितिक संरेखण	141
अध्याय तिरेपन सर्वोच्च संरेखण के रूप में प्रेम	143
अध्याय चौवन सन्तोष: सन्तुष्टि का संरेखण	145
अध्याय पचपन डिजिटल युग का धर्म	147
भाग चौदह आन्तरिक रूपान्तरण का विज्ञान	149
अध्याय छप्पन आदत-परिवर्तन का तंत्रिकीय आधार	150
अध्याय सत्तावन भाव सूचना के रूप में, पहचान के रूप में नहीं	153
अध्याय अट्ठावन वैराग्य: अनासक्ति की कला	156
अध्याय उनसठ विवेक: भेद-बुद्धि की धार	159

अध्याय साठ ध्यान: स्पष्टता का व्यवस्थित अनुशीलन.....	162
अध्याय इकसठ गुरु-तत्त्व: जीवित प्रज्ञा से सीखना.....	165
अध्याय बासठ प्रतिबद्धता: निर्वाह का धर्म.....	168
भाग पन्द्रह हर पैमाने पर संरेखण: स्व से सभ्यता तक.....	171
अध्याय तिरसठ विवाह और दीर्घकालिक साहचर्य का धर्म	172
अध्याय चौंसठ माता-पिता होने का धर्म.....	175
अध्याय पैंसठ सेवा और योगदान: आन्तरिक संरेखण की बाह्य अभिव्यक्ति	178
अध्याय छियासठ वार्धक्य और अनित्यता का धर्म	181
अध्याय सरसठ मृत्यु का धर्म: अन्तिम संरेखण	184
अध्याय अड़सठ सामूहिक धर्म: जब संरेखण विस्तृत होता है.....	187
अध्याय उनहत्तर एक साधक के नाम पत्र.....	190
भाग सोलह व्यावहारिक चिन्तन: संरेखित जीवन के लिए ध्यान	193
अध्याय सत्तर प्रातःकालीन ध्यान: प्रत्येक दिन का आरम्भ आधार से	194
अध्याय इकहत्तर सान्ध्य पुनरावलोकन: दिन की शिक्षा को ग्रहण करना	197
अध्याय बहत्तर दैनिक जीवन के लिए श्वास-अभ्यास	200
भाग सत्रह गहन संरचना: ऋत और आधुनिक विज्ञान की वास्तुकला	203
अध्याय तिहत्तर नियमों के पीछे का नियम.....	204
अध्याय चौहत्तर वह व्यवस्था जिसे जीवन उधार लेता है.....	208
अध्याय पचहत्तर स्वयं-संशोधक शरीर	212
अध्याय छिहत्तर पूर्वानुमानकारी मन.....	216
अध्याय सतहत्तर वह समग्र जो स्वयं को संगठित करता है	220
भाग अठारह श्वास-ब्रह्माण्ड समानुरूपता: दिव्य दृष्टि से ऋत तक.....	224
अध्याय अठहत्तर ऋत की लघुतम इकाई के रूप में श्वास	225
अध्याय उनासी जैसा ऊपर, वैसा भीतर	228
अध्याय अस्सी संगत हृदय	232
अध्याय इक्कासी प्राण: ऊर्जा, सूचना और व्यवस्था	235

अध्याय बयासी स्पन्द: वस्तुओं के मर्म में स्पन्दन	238
भाग उन्नीस गीता: अनुप्रयुक्त ऋत — कर्म का विज्ञान	241
अध्याय तिरासी स्वधर्म: वह सरेखण जो केवल आपका है	242
अध्याय चौरासी निष्काम कर्म: फल को पकड़े बिना कर्म	245
अध्याय पचासी स्थितप्रज्ञ: स्थिरता में प्रतिष्ठित मन	248
अध्याय छियासी यज्ञ: अर्पण के रूप में जीवन	251
अध्याय सत्तासी गुण: प्रत्येक अवस्था के तीन तन्तु	254
भाग बीस आपत्तियाँ, सीमाएँ, और ईमानदार जिज्ञासा	257
अध्याय अट्ठासी प्रतिरूप-मिलान का आरोप	258
अध्याय नवासी 'है' से 'होना चाहिए' तक: अन्तराल की समस्या	262
अध्याय नब्बे क्या इसमें से कुछ भी मिथ्याकरणीय है?	266
अध्याय इक्यानवे हरण का प्रश्न	270
अध्याय बानवे श्वास की सीमाएँ	274
अध्याय तिरानवे मेरा मत क्या बदलेगा	278
भाग इक्कीस ऋत व्यवहार में: संसार में सरेखण	282
अध्याय चौरानवे सरेखित संगठन	283
अध्याय पंचानवे सरेखित अर्थव्यवस्था	287
अध्याय छियानवे प्रौद्योगिकी और विसरेखण का युग	291
अध्याय सत्तानवे सरेखित समाज	295
अध्याय अट्टानवे सरेखित उपकरण के रूप में नेता	299
भाग बाईस आन्तरिक प्रयोगशाला: एक क्रमिक अभ्यास	303
अध्याय निन्यानवे आरम्भ: प्रथम दो सप्ताह	304
अध्याय एक सौ प्रथम महीने: आधार का निर्माण	307
अध्याय एक सौ एक प्रतिरोध के साथ कार्य करना	311
अध्याय एक सौ दो गहराना: अभ्यास एक जीवन बन जाता है	314
अध्याय एक सौ तीन आजीवन एक अभ्यास	318

भाग तेईस जीवन की ऋतुओं भर सरेखण	322
अध्याय एक सौ चार निर्माण की ऋतु	323
अध्याय एक सौ पाँच निर्माण के वर्ष	327
अध्याय एक सौ छह मध्य में लेखा-जोखा	330
अध्याय एक सौ सात परिपक्वता के वर्ष	334
अध्याय एक सौ आठ सम्पूर्ण चाप, एक साथ देखा गया	338
एक समापन संश्लेषण एक व्यवस्था, हर ओर से देखी गई	342
भाग चौबीस एक व्यवस्था, अनेक झरोखे: संसार की परम्पराओं भर ऋत	345
अध्याय एक सौ नौ ताओ और जलधारा का मार्ग	346
अध्याय एक सौ दस लोगोस: वह व्यवस्था जिसे यूनानियों ने सुना	350
अध्याय एक सौ ग्यारह अब्राहमी धारा में व्यवस्था	354
अध्याय एक सौ बारह एक व्यवस्था, अनेक झरोखे	357
भाग पच्चीस समय के पार एक पत्र	360
अध्याय एक सौ तेरह भविष्य के पाठक के नाम पत्र	361
अध्याय एक सौ चौदह यदि आप केवल यही पृष्ठ पढ़ें	364
उपसंहार: वह श्वास जो कभी नहीं रुकती	367
आभार	369
प्रमुख शब्दों की शब्दावली	370
लेखक के विषय में	376
ग्रन्थसूची और अग्रिम पठन	377
अनुक्रमणिका	382
लेखक के विषय में	394

भाग एक

ऋतः अदृश्य व्यवस्था

अध्याय एक

समझ से पूर्व, व्यवस्था है

"मुझे समझने का प्रयत्न मत करो। मेरे साथ लय में होने का प्रयत्न करो।"

— ब्रह्माण्ड, यदि वह बोल सकता

एक सरल प्रयोग है जिसे आप अभी कर सकते हैं — बिना किसी उपकरण के, बिना किसी प्रशिक्षण के, बिना किसी तैयारी के। तीस सेकण्ड स्थिर बैठिए। कुछ मत कीजिए। केवल प्रेक्षण कीजिए। उस स्थिरता के भीतर, एक बात तत्काल स्पष्ट हो उठती है: आपका शरीर क्रियाशील है। आपके फेफड़े फैल और सिकुड़ रहे हैं। आपका हृदय धड़क रहा है। आपकी धमनियों में रक्त प्रवाहित हो रहा है। आपकी कोशिकाएँ कार्य कर रही हैं — मरम्मत करती हुई, संवाद करती हुई, अनुरक्षण करती हुई। यह सब आपकी ओर से एक भी सचेत निर्देश के बिना घटित हो रहा है।

आपने इसे आरम्भ नहीं किया। आप इसका अनुरक्षण नहीं कर रहे। जिस तन्त्र से यह चलता रहता है, उसे आप पूर्णतः नहीं समझते। और फिर भी यह चलता रहता है। यही पहला और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रेक्षण है: जीवन प्रयास से टिका नहीं रहता। यह व्यवस्था से टिका रहता है।

*

**

हम अपने जीवन में सचेत नियन्त्रण की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर आँकने की प्रवृत्ति रखते हैं। हम मानते हैं कि हम अपने अस्तित्व का प्रबन्धन कर रहे हैं, अपने शरीर को चला रहे हैं, अपनी ऊर्जा को दिशा दे रहे हैं। परन्तु यदि आप इस विषय में ईमानदार हों, तो जो प्रक्रियाएँ आपको जीवित रखती हैं वे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी पूर्णतः आपके नियन्त्रण से परे हैं। आप यह तय नहीं कर सकते कि आपकी प्रतिरक्षा-प्रणाली को किसी विषाणु के प्रति कब प्रतिक्रिया करनी चाहिए। आप अपने पाचन को सचेत रूप से नियन्त्रित नहीं कर सकते। आप

अपने न्यूरोनों को उन सटीक प्रतिरूपों में सक्रिय होने का निर्देश नहीं दे सकते जो भाषा को रूप लेने, हाथों को चलने, या आँखों को गति का अनुसरण करने देते हैं। ये सरल प्रक्रियाएँ नहीं हैं। ये असाधारण रूप से जटिल, सघन रूप से समन्वित, और अत्यन्त सूक्ष्मता से स्वयं-नियामक हैं।

कोई वस्तु इस सबका शासन कर रही है। कोई वस्तु इसे एक साथ धारण किए हुए है। वह आपका संकल्प नहीं है। वह आपकी बुद्धि नहीं है। वह आपका प्रयास नहीं है। कोई वस्तु आपके जैविक अस्तित्व की संगति को इस प्रकार टिकाए हुए है जो आपके सचेत मन के प्रबन्धन-सामर्थ्य से कई गुना अधिक परिष्कृत है। वही वस्तु ऋत है।

*

**

ऋत शब्द ऋग्वेद में पाँच सौ से अधिक बार प्रकट होता है। यह वैदिक चिन्तन की आधारभूत संकल्पनाओं में से एक है, और फिर भी सम्भवतः इसे आधुनिक समझ में सबसे कम प्रभावी ढंग से अनूदित किया गया है। ऋत को प्रायः 'ब्रह्माण्डीय व्यवस्था' या 'सार्वभौमिक नियम' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु ये अनुवाद उसी की केवल ऊपरी सतह को पकड़ पाते हैं जिसकी ओर ऋषि संकेत कर रहे थे।

ऋत उस अर्थ में मात्र एक नियम नहीं है जिस अर्थ में भौतिकी इस शब्द का प्रयोग करती है — एक गणितीय सम्बन्ध जो यह वर्णन करता है कि वस्तुएँ कैसे व्यवहार करती हैं। ऋत कुछ अधिक गहरा है। यह वह सिद्धान्त है जो नियमों को अस्तित्व में रहने ही देता है। यह समस्त प्रतिरूप, समस्त लय, समस्त स्वयं-धारक प्रक्रिया के अन्तर्निहित संगति है। विचार कीजिए: प्रकृति के नियम स्थिर क्यों बने रहते हैं? गुरुत्वाकर्षण दिन-प्रतिदिन यादृच्छिक रूप से क्यों नहीं बदलता? रासायनिक बन्ध सुसंगत नियमों का पालन क्यों करते हैं? एक बीज विश्वसनीय रूप से उसी विशेष पौधे में क्यों विकसित होता है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है, न कि किसी यादृच्छिक वस्तु में? विश्वसनीय नियमों का अस्तित्व स्वयं में उल्लेखनीय है। यह स्वतःस्पष्ट नहीं है कि किसी ब्रह्माण्ड में स्थिर, सुसंगत, बोधगम्य नियम होने ही चाहिए। फिर भी होते हैं। और वही स्थिरता — प्रतिरूप और प्रक्रिया की वही विश्वसनीयता — वही है जिसकी ओर वैदिक ऋषि संकेत कर रहे थे जब वे ऋत की बात करते थे। ऋत अनेक नियमों में से एक नियम नहीं है। यह वह अवस्था है जो नियम को सम्भव बनाती है।

*

**

इस प्रकार, ऋत मनुष्य द्वारा उसके प्रेक्षण से पहले से विद्यमान है। किसी के उसे नाम देने से पूर्व ही वह क्रियाशील था। ब्रह्माण्ड का कोई प्राणी उसे कभी समझे या न समझे, वह क्रियाशील बना रहेगा। यह एक निर्णायक बिन्दु है: ऋत कोई मानवीय विचार नहीं है। यह किसी ऐसी वस्तु का मानवीय प्रेक्षण है जो मानवीय विचारों से स्वतन्त्र रूप से विद्यमान है। वैदिक ऋषि कोई सिद्धान्त गढ़ने वाले दार्शनिक नहीं थे। वे प्रेक्षक थे — सावधान, सटीक, अनुभवपरक प्रेक्षक — जो उन्होंने असाधारण स्पष्टता के साथ देखा था उसका विवरण देते हुए।

उन्होंने जो देखा वह यह था: समस्त प्रकट विविधता के नीचे, समस्त परिवर्तन और गति और जटिलता के नीचे, एक अन्तर्निहित संगति है। वस्तुएँ एक साथ टिकी रहती हैं। प्रतिरूप स्वयं को धारण किए रहते हैं। प्रक्रियाएँ अपनी लय बनाए रखती हैं। और यह एक साथ टिके रहना, यह धारण करना, यह लयबद्ध अनुरक्षण — आकस्मिक नहीं है। यह अन्तर्भूत है। और यही वह है जो किसी भी वस्तु को — आपको सम्मिलित करते हुए — अस्तित्व में रहने देता है।

*
**

इस प्रेक्षण का एक प्रत्यक्ष और व्यावहारिक परिणाम है। यदि अस्तित्व मूलतः व्यवस्थित है, तो अव्यवस्था का आपका अनुभव वास्तविकता का लक्षण नहीं है। यह वास्तविकता के साथ आपके सम्बन्ध का लक्षण है। संसार अव्यवस्थित नहीं है। उसका आपका अनुभव अव्यवस्थित हो सकता है। अन्तर संसार में नहीं, बल्कि इस मात्रा में निहित है कि आपका बोध, आपके कर्म और आपकी आन्तरिक अवस्था उस व्यवस्था के साथ कितनी संरेखित हैं जो पहले से ही उपस्थित है।

आप खोए हुए नहीं हैं। आप टूटे हुए नहीं हैं। आप असफल नहीं हो रहे। आप, विभिन्न ढंगों से और विभिन्न मात्राओं में, एक ऐसी व्यवस्था के साथ विसंरेखित हैं जिसने कभी क्रिया करना नहीं छोड़ा, जिसे चलते रहने के लिए आपकी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं, और जो — अभी, इसी क्षण — आपके शरीर की प्रत्येक कोशिका में स्वयं को अभिव्यक्त कर रही है। तब प्रश्न यह नहीं है कि व्यवस्था विद्यमान है या नहीं। प्रश्न यह है कि आप उसके साथ संरेखण में जी रहे हैं या नहीं।

"ब्रह्माण्ड आपसे यह नहीं माँगता कि आप उसे समझें। वह केवल इतना माँगता है कि आप उससे लड़ना बन्द कर दें। अनावश्यक प्रतिरोध की उस समाप्ति में, कुछ ऐसा खुलता है जिसे कितना भी प्रयास उत्पन्न नहीं कर सकता था।"

प्रश्न में वही एक परिवर्तन धर्म का आरम्भ है। और यह प्रथम अध्याय उसकी नींव है।

अध्याय दो

ऋत वस्तुतः क्या है

*"ब्रह्माण्ड आपके बाहर नहीं है। अपने भीतर देखिए; जो कुछ आप चाहते हैं,
वह आप पहले से ही हैं।"*

— रूमी

यहाँ हमें परिशुद्ध होना आवश्यक है, क्योंकि अपरिशुद्धता समझ की पहली शत्रु है। ऋत को आध्यात्मिक साहित्य में प्रायः 'ब्रह्माण्डीय सामंजस्य' या 'दिव्य नियम' के रूप में वर्णित किया जाता है, और यद्यपि ये वाक्यांश पूर्णतः गलत नहीं हैं, फिर भी ये सांस्कृतिक अनुषंगों का एक ऐसा भार वहन करते हैं जो स्पष्ट दर्शन में बाधा बन सकता है। जब अधिकांश लोग 'ब्रह्माण्डीय सामंजस्य' सुनते हैं, तो वे किसी रहस्यमय, सुदूर वस्तु की कल्पना करते हैं — जो तारों की गति पर तो लागू होती है, किन्तु किसी साधारण मंगलवार की बुनावट पर नहीं। वे इसे 'आध्यात्मिक संकल्पनाओं' की श्रेणी में रखकर आगे बढ़ जाते हैं।

यही वह भ्रान्ति है जिसे हमें सुधारना है। ऋत सुदूर नहीं है। यह अमूर्त नहीं है। और यह मुख्यतः तारों के विषय में नहीं है। यह संगति के तन्त्र के विषय में है — वह सिद्धान्त जिसके द्वारा वस्तुएँ बिखरने के बजाय एक साथ टिकी रहती हैं, जिसके द्वारा प्रक्रियाएँ ढहने के बजाय स्वयं को धारण किए रहती हैं, जिसके द्वारा प्रतिरूप कोलाहल में विलीन होने के बजाय बना रहता है। ऋत वही है जिसे आप अभी इन शब्दों को पढ़ते हुए अनुभव कर रहे हैं: एक ऐसे संसार की स्थिर संगति जो विलीन होने के बजाय एक साथ टिका रहता है, कारण और कार्य का वह व्यवस्थित अनुक्रम जो स्वयं बोध को कार्य करने देता है।

*
**

भौतिक नियम के रूप में ऋत

सर्वाधिक दृश्य स्तर पर, ऋत स्वयं को भौतिक संसार का शासन करने वाले नियमों के रूप में अभिव्यक्त करता है। गुरुत्वाकर्षण, विद्युतचुम्बकत्व, प्रबल और दुर्बल नाभिकीय बल, ऊष्मागतिकी — ये ऋत से पृथक् नहीं हैं। ये उसकी सर्वाधिक मापनीय, सर्वाधिक परिमेय अभिव्यक्तियाँ हैं। किन्तु भौतिक नियमों के विषय में एक बात पर ध्यान दीजिए: ये स्वतन्त्र आविष्कार नहीं हैं। ये एक संगत तन्त्र रचते हैं। ये परस्पर इस प्रकार क्रिया करते, सन्तुलन साधते और एक-दूसरे को सीमित करते हैं कि स्थिर संरचनाएँ उत्पन्न होती हैं — परमाणु, अणु, तारे, आकाशगंगाएँ, जीवित कोशिकाएँ।

यह तथ्य कि नियम न केवल अलग-अलग रूप से सुसंगत हैं, बल्कि परस्पर भी सुसंगत हैं — कि वे मिलकर एक ऐसा ब्रह्माण्ड उत्पन्न करते हैं जो जीवन, चेतना, और उसी वैज्ञानिक जिज्ञासा को टिकाने में समर्थ है जो उन्हें खोजती है — स्वयं ऋत का एक लक्षण है। स्वतन्त्र नियमों का एक यादृच्छिक समुच्चय संगति उत्पन्न नहीं करता। केवल वे नियम जो अपने आधार में मूलतः एकीकृत हैं — जो एक समान स्रोत, एक समान बन्धन, एक समान संचालन-सिद्धान्त साझा करते हैं — वैसी परस्पर-गुंथी स्थिरता उत्पन्न करेंगे जैसी हम देखते हैं। ऋत वही समान आधार है।

जैविक बुद्धिमत्ता के रूप में ऋत

भौतिकी से परे, ऋत जीवविज्ञान में और भी अधिक दृश्य बुद्धिमत्ता के साथ स्वयं को अभिव्यक्त करता है। प्रतिरक्षा-प्रणाली पर विचार कीजिए। उसे असाधारण परिशुद्धता के साथ उन कोशिकाओं में भेद करना होता है जो शरीर की अपनी हैं और उन बाह्य कारकों में जो उसके लिए संकट हैं। उसे अनुपात में प्रतिक्रिया करनी होती है — न इतनी प्रबलता से कि वह स्वयं शरीर को ही क्षति पहुँचाए, न इतनी दुर्बलता से कि वह संक्रमण को फैलने दे। उसे विगत संकटों को स्मरण रखना और नए संकटों के प्रति अनुकूलित होना होता है। उसे सैकड़ों भिन्न-भिन्न प्रकार की कोशिकाओं के बीच समन्वय करना होता है, जो सब रासायनिक संकेतों के माध्यम से संवाद करती हैं, बिना किसी केन्द्रीय अधिशासी के इस सम्पूर्ण क्रिया का आदेश दिए।

यह यान्त्रिक नहीं है। यह बुद्धिमत्तापूर्ण है। उस प्रकार बुद्धिमान नहीं जिस प्रकार मानव मस्तिष्क बुद्धिमान है, बल्कि उस प्रकार बुद्धिमान जिस प्रकार ऋत बुद्धिमान है — सचेत निर्देश

की अपेक्षा किए बिना संगति और उत्तरजीविता की ओर परिशुद्धता के साथ कार्य करता हुआ। शरीर ऋत की एक अभिव्यक्ति है। प्रत्येक अंग, प्रत्येक तन्त्र, प्रत्येक प्रतिपुष्टि-चक्र जो समस्थिति बनाए रखता है — आपके शरीर का तापमान, आपके रक्त की रसायनिकी, आपके हार्मोनों का सन्तुलन — एक जैविक स्तर पर क्रियाशील ऋत ही है। आपने इसकी रचना नहीं की। आप इसे चला नहीं रहे। यह आपके माध्यम से चल रहा है, एक ऐसी परिशुद्धता के साथ जिसे अभी तक किसी मानव अभियान्त्रिकी ने पूर्णतः पुनरुत्पादित नहीं किया है।

मनोवैज्ञानिक कार्यकारणता के रूप में ऋत

और भीतर की ओर बढ़ते हुए, ऋत स्वयं को मन में अभिव्यक्त करता है। यही यह सर्वाधिक व्यक्तिगत हो उठता है और सर्वाधिक बार उपेक्षित किया जाता है। इस बात में एक व्यवस्था है कि मानसिक अवस्थाएँ किस प्रकार उठती हैं और स्वयं को धारण किए रहती हैं। कुछ निवेश सुसंगत रूप से कुछ निर्गत उत्पन्न करते हैं। चिन्ता, विनाशकारी चिन्तन से पोषित होकर, तीव्र हो जाती है। स्पष्टता, मौन और अवकाश पाकर, गहरी हो जाती है। तनाव, समय के साथ बना रहकर, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक क्षरण उत्पन्न करता है। आनन्द, जो अभिनीत नहीं बल्कि सचमुच अनुभूत हो, तंत्रिका-रसायन को इस प्रकार परिवर्तित करता है जो आगे की भलाई का संपोषण करता है। ये यादृच्छिक सहचर्य नहीं हैं। ये एक प्रतिरूप का अनुसरण करते हैं — एक कारणात्मक संरचना जो भौतिक नियम जितनी ही विश्वसनीय है, भले ही उतनी परिशुद्धता से मापनीय न हो। यही मन के क्षेत्र में ऋत है।

नैतिक संगति के रूप में ऋत

ऋत का सबसे गहरा और सर्वाधिक भ्रान्ति से ग्रस्त आयाम वह है जिसे नैतिक संगति कहा जा सकता है। इसका अर्थ यह नहीं कि ऋत अनाचार को दण्ड देता है। इसका अर्थ यह है कि कुछ कर्म — वे कर्म जो विश्वास का उल्लंघन करते हैं, दूसरों का शोषण करते हैं, सामाजिक ताने-बाने को क्षति पहुँचाते हैं, या छल के माध्यम से चलते हैं — परिणाम उत्पन्न करते हैं। किसी अलौकिक प्रतिशोध के रूप में नहीं, बल्कि तन्त्र-स्तरीय प्रतिपुष्टि के रूप में। विश्वास, एक बार टूट जाने पर, सम्बन्धों को पुनर्संरचित कर देता है। शोषण, समाज भर में विस्तृत होकर, उस सहयोग को क्षीण कर देता है जिस पर अर्थव्यवस्थाएँ और समुदाय निर्भर करते हैं। छल, आदतन अभ्यास किए जाने पर, समय के साथ स्वयं छली के स्पष्ट बोध के सामर्थ्य को ही

क्षीण कर देता है। ये नैतिकतावादी प्रेक्षण नहीं हैं। ये इस विषय में प्रेक्षण हैं कि तन्त्र कुछ प्रकार के निवेशों के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं।

**

इन समस्त क्षेत्रों में — भौतिक, जैविक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक — ऋत एक ही सिद्धान्त है। यह चार पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। यह एक ही वस्तु है जो विभेदन के चार भिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त होती है। यही कारण है कि ऋषियों ने ऋत को हर वस्तु के आधार के रूप में कहा। वे अतिशयोक्ति नहीं कर रहे थे। वे परिशुद्ध हो रहे थे। और चूँकि आप वास्तविकता का अंग हैं — उसके बाहर खड़े कोई प्रेक्षक नहीं, बल्कि उसकी एक अभिव्यक्ति — इसलिए ऋत केवल आपके चारों ओर ही नहीं है। यह आपके भीतर है।

"ऋत वह संचालन-तन्त्र है जिस पर समस्त वास्तविकता चलती है। आप इसे प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखते। किन्तु जो कुछ आप अनुभव करते हैं वह सब इस पर निर्भर है। और आप स्वयं इसकी सर्वाधिक परिष्कृत अभिव्यक्तियों में से एक हैं।"

वास्तविकता की तीन परतें	
तीन भिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त ऋत — एक अन्तिम सिद्धान्त	
1 परत	परत 1: भौतिक प्रकृति के नियम ● गुरुत्व - विद्युतचुम्बकत्व - नाभिकीय बल ● समस्त ब्रह्माण्ड में सुसंगत गणितीय नियम ● ऊष्मागतिकी - क्वांटम यांत्रिकी
2 परत	परत 2: जैविक स्वयं-नियमन और जीवन ● समस्थिति - प्रतिरक्षा-बुद्धिमत्ता - जीवनायु मरम्मत ● श्वास - हृदयगति - कोशिकीय संवाद ● शरीर स्वस्थ रहना चाहता है — ऋत क्रियाशील
3 परत	परत 3: सचेत बोध और ध्यान ● विचार-प्रतिक्रिया - संस्कार - भावनात्मक चक्र ● उद्दीपन और प्रतिक्रिया के बीच का अन्तराल ● जहाँ धर्म निवास करता है — जहाँ आप संस्थित या प्रतिरोधी हो सकते हैं
ऋत इन परतों में से कोई एक नहीं है — ऋत वह अवस्था है जो तीनों को सम्भव बनाती है	
अध्याय 2 — ऋत वस्तुतः क्या है	

वास्तविकता की तीन परतें: भौतिक · जैविक · सचेत

अध्याय 2

अध्याय तीन

वास्तविकता की वास्तुकला

*"ब्रह्माण्ड की एक ज्यामिति है, और वह हमारे प्रति उदासीन नहीं है।
हम उसकी रचना के अंग हैं।"*

— प्राचीन प्रेक्षण

आधुनिक भौतिकी ने हमें एक असाधारण उपहार दिया है: चकित कर देने वाली परिशुद्धता के साथ वास्तविकता का गणितीय वर्णन। हम पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि सौ वर्ष बाद कोई ग्रह कहाँ होगा। हम नाभिकीय अभिक्रियाओं में मुक्त होने वाली ऊर्जा की गणना कर सकते हैं। हम किसी अर्धचालक में इलेक्ट्रॉनों के व्यवहार का प्रतिरूपण कर सकते हैं और क्वांटम-यांत्रिक सिद्धान्तों पर चलने वाले उपकरण बना सकते हैं। हम डीएनए की संरचना को इतना समझते हैं कि उसका सम्पादन कर सकें। हम किसी जीवित मस्तिष्क की क्रियाशीलता का वास्तविक समय में प्रतिबिम्बन कर सकते हैं। यह उल्लेखनीय है। यह सहस्रों वर्षों के संचित प्रेक्षण, प्रयोग और परिष्करण का प्रतिनिधित्व करता है।

और फिर भी, इस सबके होते हुए, कुछ ऐसा है जिसका भौतिकी वर्णन तो करती है किन्तु व्याख्या नहीं करती: यह तथ्य कि वर्णन करने योग्य कोई संरचना है ही। ऐसा क्यों नहीं कि केवल यादृच्छिक, संरचनाहीन कोलाहल हो? परमाणु समस्त ब्रह्माण्ड में सुसंगत गुण क्यों बनाए रखते हैं? एक स्थान पर खोजे गए भौतिकी के नियम लाखों प्रकाश-वर्ष दूर के स्थानों पर भी क्यों लागू होते हैं? वही गणित जो ग्रहों की गति का वर्णन करता है, वह शेर बाजारों के व्यवहार, रोग के प्रसार, और तंत्रिका-जालों की गतिकी का वर्णन भी क्यों करता है?

संरचना का अस्तित्व — गहरी, स्थायी, सार्वभौमिक संरचना — उस संरचना के भीतर के किसी एक भी नियम से व्याख्यायित नहीं होता। वह उन सबके द्वारा पूर्वमान्य है। ऋत इसी की ओर संकेत करता है। ऋत तन्त्र के भीतर कोई नियम नहीं है। यह वह अवस्था है जो तन्त्र को एक तन्त्र बनाती है, न कि प्रतिरूप या अर्थ से रहित कोई कोलाहल-क्षेत्र।

संरचना की तीन अभिव्यक्तियाँ

पहली अभिव्यक्ति है स्वयं-संगठन। वास्तविकता के समस्त स्तरों पर, पदार्थ और ऊर्जा स्वतःस्फूर्त रूप से स्वयं को संगत प्रतिरूपों में संगठित कर लेते हैं। आकाशगंगाएँ बनती हैं। क्रिस्टल बढ़ते हैं। जीवित कोशिकाएँ निर्जीव रसायन से संयोजित हो जाती हैं। पारितन्त्र अनेक प्रजातियों के जटिल सम्बन्धों के साथ स्थिर गतिकी विकसित कर लेते हैं। सामाजिक संरचनाएँ व्यक्तिगत आचरण से उभरती हैं। इसमें से किसी के लिए भी किसी ऐसे बाह्य रचयिता की आवश्यकता नहीं जो निरन्तर इस प्रक्रिया का प्रबन्धन करता रहे। संगठन स्वयं घटकों के गुणों से उभरता है, जो ऋत द्वारा प्रदत्त बन्धनों के अधीन परस्पर क्रिया करते हैं। घटक यह 'जानते हैं' कि किस प्रकार इस ढंग से सम्बन्धित हों कि संगत समग्र उत्पन्न हों, क्योंकि उनकी अन्योन्यक्रिया के नियम पहले से ही विद्यमान हैं।

दूसरी अभिव्यक्ति है स्वयं-संशोधन। ऋत द्वारा शासित तन्त्र कठोर नहीं होते। वे अनुकूलनशील होते हैं। जब उन्हें विक्षुब्ध किया जाता है — बाह्य बलों द्वारा, आन्तरिक परिवर्तनों द्वारा, नए निवेशों द्वारा — तो उनके पास संगति की ओर लौटने के तन्त्र होते हैं। प्रतिरक्षा-प्रणाली संक्रमण से लड़ती है। जो पारितन्त्र प्रजातियाँ खो देते हैं वे प्रतिपूरक गतिकी विकसित कर लेते हैं। आघातों से अस्तव्यस्त हुई अर्थव्यवस्थाएँ अन्ततः पुनः स्थिर हो जाती हैं। इस स्वयं-संशोधक प्रवृत्ति की सफलता की कोई गारंटी नहीं है — पर्याप्त रूप से बड़े व्यवधान इसे अभिभूत कर सकते हैं। किन्तु इसका अस्तित्व ऋत की क्रिया के सर्वाधिक स्पष्ट चिह्नों में से एक है। तन्त्र निष्क्रिय नहीं होते। वे एन्ट्रॉपी का प्रतिरोध करते हैं। वे संगति की खोज करते हैं। वे अपनी ही गहनतर व्यवस्था की ओर लौटते हैं।

तीसरी अभिव्यक्ति है स्वयं-अतिक्रमण। जटिल तन्त्रों के इतिहास में कुछ बिन्दुओं पर गुणात्मक छलाँगें घटित होती हैं। पदार्थ जीवन बन जाता है। जीवन चेतना बन जाता है। सरल समन्वय भाषा बन जाता है, फिर संस्कृति, फिर सभ्यता। प्रत्येक छलाँग में ऐसे गुणों का उद्भव सम्मिलित है जो केवल घटकों से पूर्वानुमेय नहीं थे, जो जटिलता और एकीकरण के एक उच्चतर स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रह्माण्डीय कालमानों पर अधिक जटिलता, अधिक एकीकरण, अधिक संगति की ओर यह गति वास्तविकता के सर्वाधिक उल्लेखनीय लक्षणों में से एक है। और यह पूर्णतः ऋत के अनुरूप है — एक ऐसी व्यवस्था के, जो स्थिर नहीं बल्कि जीवित है, बन्द नहीं बल्कि विस्तारशील है।

**

इस सबका आपके लिए, विशेष रूप से, जहाँ कहीं आप बैठे इन शब्दों को पढ़ रहे हैं, क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि आप किसी तटस्थ, उदासीन ब्रह्माण्ड में नहीं जी रहे जिसे इससे कोई सरोकार न हो कि आप संरेखित हैं या विसरेखित। आप एक निश्चित संरचना वाले ब्रह्माण्ड में जी रहे हैं — एक ऐसी संरचना जो संगति का संपोषण करती है और असंगति को सुधारने की प्रवृत्ति रखती है।

जब आप ऋत के साथ संरेखित होते हैं — जब आपके कर्म, आपके बोध, आपकी आन्तरिक अवस्था उस गहनतर व्यवस्था के साथ सामंजस्य में होते हैं — तो चीजें चल पड़ती हैं। नाटकीय रूप से नहीं, जादुई रूप से नहीं, किन्तु विश्वसनीय रूप से। घर्षण कम होता है। कम ऊर्जा व्यर्थ जाती है। उस दुःख की मात्रा कम होती है जो उससे लड़ने से आता है जो केवल सत्य है। जब आप विसरेखित होते हैं — जब आप मिथ्या पूर्वधारणाओं पर चल रहे होते हैं, जब आप प्रतिपुष्टि की उपेक्षा कर रहे होते हैं, जब आप उन परिणामों को बलपूर्वक थोप रहे होते हैं जिन्हें तन्त्र समर्थन नहीं देता — तो चीजें नहीं चलतीं। दण्ड के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी वास्तविकता से आने वाली सटीक प्रतिपुष्टि के रूप में जिसकी अपनी संरचना है।

"ब्रह्माण्ड आपकी भूलों को दण्ड नहीं दे रहा। यह आपको दिखा रहा है कि क्या संरेखित होता है और क्या नहीं। यह प्रतिपुष्टि ही कर्म का तन्त्र है। यह अलौकिक नहीं है। यह संरचनात्मक है।"

ऋत की तीन शक्तियाँ		
स्वयं-संगठन · स्वयं-संशोधन · स्वयं-अतिक्रमण		
स्वयं-संगठन आत्मता उत्पत्ती है	स्वयं-संशोधन आत्मता पुनर्स्थापित होती है	स्वयं-अतिक्रमण आत्मता विकसित होती है
आत्मसंसारण - क्रियात्मक - जीवित कॉडिंग बनती है	प्रतिरोध-तन्त्र संक्रमण से जड़ता है	पदार्थ → जीवन → चेतना
किसी बाह्य एजेंट की आवश्यकता नहीं	परिणाम प्रतिक्रियात्मक गतिशीलता विकसित करते हैं	भाषा → संस्कृति → वास्तव
पदक जानते हैं कि कैसे सम्बन्धित होना है	तन्त्र एट्रोफी और विघटन का प्रतिरोध करते हैं	प्रत्येक क्षणिक — संचयन नए गुण
केवल अन्योन्यक्रिया से प्रतिक्रिया	आत की अवर्तित प्रतिपुष्टि-बुद्धिमत्ता	आत के पार आत का ऊर्ध्वगामी बाप
ये तीन प्रत्यक्ष परिघटनाएँ नहीं हैं — ये तीन चित्र कालमानों पर एक ही आत हैं अध्याय 3 — कारणीयता की वास्तविकता		

ऋत की तीन शक्तियाँ: स्वयं-संगठन · स्वयं-संशोधन · स्वयं-अतिक्रमण

अध्याय 3

अध्याय चार

शरीर में ऋत

*"शरीर आपका पहला और सर्वाधिक निष्ठावान गुरु है।
यह ऋत की भाषा बिना किसी अनुवाद के बोलता है।"*

— योग-दृष्टि

ब्रह्माण्ड में ऋत को समझने से पूर्व, हमें उसे उस एक स्थान पर समझना होगा जहाँ हमारी सर्वाधिक प्रत्यक्ष पहुँच है: शरीर। शरीर केवल एक पात्र नहीं है जिसमें आप निवास करते हैं। यह केवल एक यन्त्र नहीं है जो आपके मन को इधर-उधर ढोता है। शरीर असाधारण परिष्कार का एक जीवित तन्त्र है, जो उन सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता है जिनका विज्ञान सदियों से अध्ययन कर रहा है और जिन्हें पूर्ण रूप से समझने से अभी भी बहुत दूर है। और शरीर, यदि आप उस पर ध्यान दें, तो ऋत का वह सर्वाधिक तत्काल उपलब्ध प्रमाण है जिस तक आपकी पहुँच है।

सबसे पहले सरलतम तथ्य पर विचार कीजिए। आप अभी श्वास ले रहे हैं। बिना ऐसा चुने। बिना कोई स्मारक लगाए। बिना इसके विषय में सोचे। आपका श्वसन-तन्त्र पृष्ठभूमि में चल रहा है, दर्जनों चरों के प्रति प्रतिक्रिया में प्रत्येक श्वास की दर और गहराई को समायोजित करता हुआ — आपका वर्तमान सक्रियता-स्तर, रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड की सान्द्रता, भावनात्मक अवस्था, वायुमण्डलीय दाब। यह यह सब बिना किसी सचेत निवेश के करता है, एक ऐसा सन्तुलन बनाए रखता है जो इतना परिशुद्ध है कि किसी भी दिशा में उससे महत्वपूर्ण विचलन शीघ्र ही एक चिकित्सकीय आपातकाल बन जाएगा।

यह यान्त्रिक नहीं है। यन्त्र स्वयं-नियमन नहीं करते। यन्त्रों को बाह्य अंशशोधन, बाह्य अनुरक्षण, और प्राचलों के विचलित होने पर बाह्य हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। आपका श्वसन-तन्त्र स्वयं को वास्तविक समय में, जीवन भर अंशशोधित करता रहता है। अब इसे शरीर के प्रत्येक तन्त्र पर गुणित कीजिए। हृदय-वाहिका तन्त्र, मानव सक्रियता की असाधारण

विविधता के मध्य रक्तचाप को एक संकीर्ण परास के भीतर बनाए रखता हुआ। अन्तःस्रावी तन्त्र, दर्जनों हार्मोनों के स्राव का समन्वय करता हुआ। तंत्रिका-तन्त्र, लाखों ग्राहकों से आने वाले संवेदी निवेश को एकीकृत करता हुआ और मिलीसेकण्ड की परिशुद्धता के साथ उपयुक्त गतिक निर्गत उत्पन्न करता हुआ। प्रतिरक्षा-तन्त्र, स्व को अस्व से भेद करता हुआ और संकटों के प्रति अंशशोधित प्रतिक्रियाएँ खड़ी करता हुआ।

यह सब एक साथ, निरन्तर, आपके प्रबन्धन के बिना घटित हो रहा है। निर्णायक अन्तर्दृष्टि यह है: आप अपने स्वास्थ्य का प्रबन्धन करके उसे टिकाए नहीं रखते। स्वास्थ्य जैविक ऋतु को बिना इतने व्यवधान के कार्य करने देने का स्वाभाविक परिणाम है जो उसके स्वयं-संशोधक सामर्थ्य को अभिभूत कर दे। यह ढाँचे को पूर्णतः बदल देता है। हममें से अधिकांश स्वास्थ्य को किसी ऐसी वस्तु के रूप में सोचते हैं जिसे हम प्रयास से प्राप्त करते हैं। परन्तु शरीर स्वस्थ रहना चाहता है। किसी भावुक अर्थ में नहीं, बल्कि एक संरचनात्मक अर्थ में — जैविक तन्त्रों में शक्तिशाली समस्थैतिक क्रियाविधियाँ होती हैं जो निरन्तर सन्तुलन, मरम्मत और कार्य की ओर काम करती हैं।

*
**

वे व्यवधान जिन्हें हम चुनते हैं

दीर्घकालिक निद्रा-व्यवधान उन सर्वाधिक महत्वपूर्ण विसरेखणों में से एक है जिन्हें कोई व्यक्ति अपने ही जीवविज्ञान पर थोप सकता है। निद्रा किसी सरल अर्थ में विश्राम नहीं है। यह वह अवधि है जिसके दौरान मस्तिष्क महत्वपूर्ण अनुरक्षण-कार्य करता है — उपापचयी अपशिष्ट उत्पादों को हटाना, स्मृति को सुदृढ़ करना, भावनात्मक संसाधन का नियमन करना, उन हार्मोनी तन्त्रों का अंशशोधन करना जो आगामी दिन का शासन करेंगे। जब निद्रा दीर्घकाल तक बाधित या न्यून रहती है, तो ये प्रक्रियाएँ क्षीण हो जाती हैं। इसके परिणाम समय के साथ ऐसे ढंगों से संचित होते हैं जो संज्ञानात्मक कार्य, भावनात्मक नियमन, प्रतिरक्षा-प्रतिक्रिया, हृदय-वाहिका स्वास्थ्य और उपापचयी स्थिरता को प्रभावित करते हैं। यह कोई जीवनशैली का विषय नहीं है। यह जैविक ऋतु का उल्लंघन है। और शरीर तदनुसार प्रतिक्रिया करता है।

दीर्घकालिक तनाव के समान प्रभाव होते हैं। तनाव-प्रतिक्रिया शरीर के सर्वाधिक परिष्कृत तन्त्रों में से एक है — हार्मोनों, तंत्रिका-तन्त्र और प्रायः प्रत्येक अंग को सम्मिलित करने वाली एक सघन रूप से समन्वित शृंखला, जो किसी तीव्र संकट के सम्मुख संसाधनों को

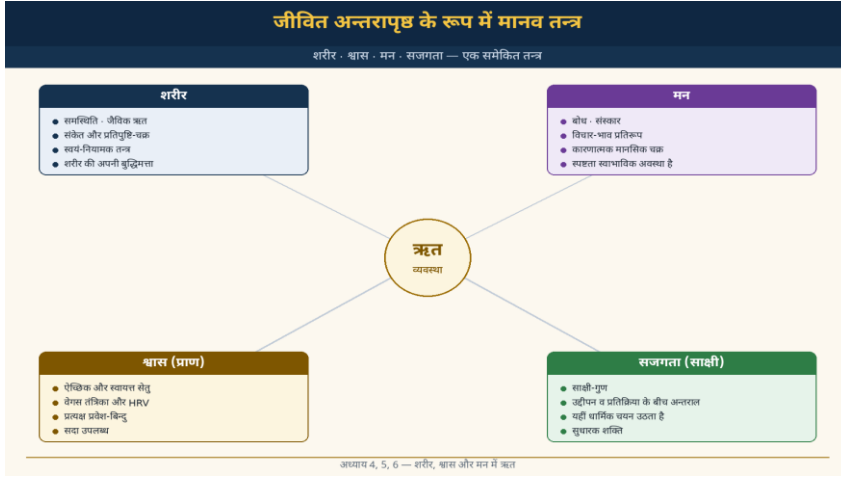
सक्रिय करने और फिर आधार-रेखा पर लौटने के लिए अभिकल्पित है। किन्तु जब तनाव दीर्घकालिक हो जाता है — जब संकेत का संकेत कभी रुकता ही नहीं — तो तन्त्र उस बिन्दु से आगे सक्रिय बना रहता है जहाँ तक उसकी सक्रियता अनुकूली होती है। शरीर पर दीर्घकालिक तनाव के परिणाम अब चिकित्सा-साहित्य में अत्यन्त भली-भाँति प्रलेखित हैं: हृदय-वाहिका क्षति, प्रतिरक्षा-दमन, पाचन-दुष्क्रिया, तंत्रिकीय परिवर्तन। ये शारीरिक वास्तविकताएँ हैं, मनोवैज्ञानिक रूपक नहीं।

संकेत की ओर लौटना

शरीर निरन्तर संवाद कर रहा है। थकान, असहजता, बेचैनी, भूख, प्यास, पीड़ा — ये दोष नहीं हैं। ये संकेत हैं। ऋत के संकेत। तन्त्र सचेत बोध को यह सूचित करने का प्रयास करता हुआ कि किसी समायोजन की आवश्यकता है। समस्या यह है कि हममें से अधिकांश ने इन संकेतों को दबाना या लाँघना सीख लिया है। हम थकान को उत्तेजकों से लाँघ जाते हैं। हम भूख को विकर्षण से लाँघ जाते हैं। हम असहजता को पीड़ानाशक औषधि से लाँघ जाते हैं। हम स्थिरता की आवश्यकता को मनोरंजन से लाँघ जाते हैं।

इस समझ से जो अभ्यास उभरता है वह एक सरल परिवर्तन से आरम्भ होता है: शरीर के संकेतों को असुविधा के बजाय सूचना के रूप में ग्रहण करना। जब थकान उठे, तो पूछिए: यह मेरे वर्तमान प्रतिरूप के विषय में मुझे क्या बता रही है? जब किसी विशेष मुद्रा या आदत में असहजता उठे, तो पूछिए: शरीर अपनी आवश्यकता के विषय में क्या संवाद कर रहा है? जब दिन के विशेष समयों पर ऊर्जा बढे या घटे, तो ध्यान दीजिए: यहाँ स्वाभाविक लय क्या है, और मैं उसके साथ काम कर रहा हूँ या उसके विरुद्ध?

"शरीर नियन्त्रण नहीं माँग रहा। यह ध्यान माँग रहा है। इन दोनों में एक महत्वपूर्ण अन्तर है। नियन्त्रण के बिना ध्यान ही सरेखण का आरम्भ है।"



जीवित अन्तरापृष्ठ के रूप में मानव तन्त्र: शरीर · श्वास · मन · सजगता
अध्याय 4 और 5

अध्याय पाँच

श्वास — जीवित सेतु

"जो श्वास को जानता है वह ब्रह्म को जानता है। क्योंकि श्वास वह सूत्र है जो व्यष्टि को सार्वभौमिक लय से जोड़ता है।"

— छान्दोग्य उपनिषद्

मानव शरीर में ऋत की समस्त अभिव्यक्तियों में से, श्वास एक अद्वितीय स्थान रखती है। प्रत्येक अन्य जैविक प्रक्रिया या तो पूर्णतः स्वचालित है — सचेत पहुँच से परे — या पूर्णतः ऐच्छिक — जिसके लिए सोदेश्य आरम्भ आवश्यक है। हृदय की धड़कन आपकी सहभागिता के बिना चलती रहती है और केवल सचेत संकल्प से सरलता से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं की जा सकती। चलने के लिए आपके संकल्प की, आपके निर्णय की, आपकी इच्छा की गति की आवश्यकता होती है।

श्वास भिन्न है। श्वास स्वचालित है, सचेत निर्देश के बिना निरन्तर चलती हुई। और यह सुलभ है — इसे सचेत रूप से देखा, परिवर्तित, नियमित किया जा सकता है, और ध्यान के लंगर के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है। यह सचेत और अचेत प्रक्रिया के ठीक बीच की सीमा पर स्थित है। ऐच्छिक और अनैच्छिक के बीच। जो आप हैं और जो आप करते हैं, उसके बीच। यही श्वास को मानव अनुभव की वास्तुकला में अद्वितीय बनाता है। और यही अद्वितीयता ठीक वह कारण है जिससे श्वास प्रायः हर संस्कृति की चिन्तन-परम्पराओं में, जब से अभिलेख विद्यमान हैं तब से, केन्द्रीय रही है।

*

**

यहाँ का विज्ञान अब भली-भाँति स्थापित है, भले ही पश्चिमी अनुसन्धान को उस तक पहुँचने में सदियाँ लगी हों जिसे योग, प्राणायाम और ध्यान के साधक सहस्रों वर्षों से अनुभवपरक रूप से जानते रहे हैं। श्वास प्रत्यक्ष रूप से स्वायत्त तंत्रिका-तन्त्र का परिवर्तन करती

है — तंत्रिका-तन्त्र का वह विभाग जो हृदय, रक्त-वाहिकाओं, पाचन-मार्ग और ग्रन्थियों सहित आन्तरिक अंगों के स्वचालित नियमन के लिए उत्तरदायी है। विशेष रूप से, श्वसन की दर और गहराई अनुकम्पी तन्त्र — जो सक्रियता, तनाव-प्रतिक्रिया और ऊर्जा के संग्रहण से सम्बद्ध है — और परानुकम्पी तन्त्र — जो पुनर्प्राप्ति, मरम्मत, पाचन और शान्ति से सम्बद्ध है — के बीच के सन्तुलन को प्रभावित करती है।

यह कोई ढीला-ढाला सहचर्य नहीं है। क्रियाविधि परिशुद्ध है। वेगस तंत्रिका — शरीर की सबसे लम्बी तंत्रिका, जो मस्तिष्क-स्तम्भ को धड़ भर के अंगों से जोड़ती है — श्वास की दर और गहराई के प्रति प्रतिक्रियाशील है। धीमी, गहरी श्वास वेगस-उद्दीपन के माध्यम से परानुकम्पी कार्य को सक्रिय करती है। तेज़, उथली श्वास इसके विपरीत करती है। व्यावहारिक रूप से: जब आप धीमे और गहरे श्वास लेते हैं, तो आपके तंत्रिका-तन्त्र को यह संकेत मिलता है कि शरीर सुरक्षित है, कि संकट टल गया है, कि वह संग्रहण से पुनर्प्राप्ति की ओर मुड़ सकता है। कॉर्टिसोल का स्तर घटने लगता है। हृदय-गति परिवर्तनशीलता — हृदय-वाहिका स्वास्थ्य और भावनात्मक प्रत्यास्थता का एक सूचक — बढ़ने लगती है। संज्ञानात्मक कार्य, विशेषकर वह जिसके लिए परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने के बजाय उन्हें स्पष्ट देखना आवश्यक है, सुधरता है।

योग-परम्परा में श्वास

वैदिक और योग-परम्पराओं के पास वेगस तंत्रिका और हृदय-गति परिवर्तनशीलता की शब्दावली नहीं थी। किन्तु उन्होंने उन्हीं परिघटनाओं को असाधारण परिशुद्धता के साथ देखा। प्राण की संकल्पना — जिसे प्रायः 'जीवन-शक्ति' के रूप में अनूदित किया जाता है किन्तु जिसे श्वास के प्राणिक आयाम के रूप में अधिक अच्छी तरह समझा जाता है — इस बात की उनकी समझ में केन्द्रीय थी कि व्यष्टि किस प्रकार समष्टि से जुड़ा है। श्वास केवल फेफड़ों में भीतर और बाहर जाती वायु नहीं है। श्वास व्यष्टिगत जीवन-तन्त्र और वृहत्तर ब्रह्माण्डीय लय के बीच का क्षण-प्रतिक्षण का सम्बन्ध है।

प्राणायाम का अभ्यास — श्वास-नियमन — मुख्यतः विश्राम या स्वास्थ्य के लिए विकसित नहीं किया गया था, यद्यपि यह दोनों उत्पन्न करता है, बल्कि व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था को एक अधिक मूलभूत व्यवस्था के साथ संरेखित करने के प्रयोजन से किया गया था। जब श्वास लयबद्ध, गहरी और सचेत हो जाती है, तो साधक ने आन्तरिक संरेखण का एक आत्मनिष्ठ बोध बताया जिसे वर्णन करना कठिन है किन्तु एक बार अनुभव कर लेने पर तत्काल

पहचाना जा सकता है। योग-शरीरविज्ञान में, सूक्ष्म शरीर में तीन प्रमुख नाड़ियाँ होती हैं जिनके अनुदिश प्राण-ऊर्जा प्रवाहित होती है। केन्द्रीय नाड़ी, सुषुम्ना नाड़ी, सन्तुलन और आध्यात्मिक जागरण से सम्बद्ध है। प्राणायाम के अभ्यास इन्हें सन्तुलन में लाने के लिए अभिकल्पित हैं, प्राण को सुषुम्ना से प्रवाहित होने देते हुए, उस शान्त सजगता के गुण को उत्पन्न करते हुए जो गहन ध्यान और स्पष्ट धार्मिक कर्म का संपोषण करता है।

एक प्रथम अभ्यास

इस समझ में प्रवेश का एक सरल बिन्दु है। किसी वस्तु को बलपूर्वक किए बिना, बस तीन मिनट तक अपनी श्वास का प्रेक्षण कीजिए। उसे परिवर्तित न कीजिए। उसे नियन्त्रित न कीजिए। उसका प्रेक्षण कीजिए। श्वास भीतर लेने की बुनावट को लक्षित कीजिए। शिखर पर वह क्षणिक पूर्णता। श्वास छोड़ने की वह मुक्ति। तल पर वह क्षणिक रिक्तता। लक्षित कीजिए कि शरीर में श्वास कहाँ गति करती है। छाती। पेट। नासिकाएँ। लक्षित कीजिए कि श्वास उथली है या गहरी। तेज़ या धीमी। सहज या अनियमित। बस प्रेक्षण कीजिए।

आप प्रायः सदैव यह पाएँगे कि प्रेक्षण के भीतर ही कुछ बदल जाता है। इसलिए नहीं कि आपने कुछ किया है। बल्कि इसलिए कि ध्यान स्वयं संरेखण का एक रूप है। प्रेक्षित होने पर श्वास धीमी होने लगती है। श्वास के धीमे होने पर मन शान्त होने लगता है। मन के शान्त होने पर शरीर शिथिल होने लगता है। और स्वाभाविक संशोधनों के उस अनुक्रम में, आपको इसका पहला प्रत्यक्ष आस्वाद मिलता है कि ऋत के साथ संरेखित होने का क्या अर्थ है।

"श्वास कोई तकनीक नहीं है। यह एक प्रवेश-बिन्दु है। द्वार सदैव खुला है।
और यह आपसे सदैव ठीक वहीं मिलेगी जहाँ आप हैं — वहाँ नहीं जहाँ
आप सोचते हैं कि आपको होना चाहिए।"

अध्याय छह

मन में ऋत

"मन एक ऐसी नदी है जो अपनी धारा स्वयं नहीं रचती। यह वहीं बहती है जहाँ ऋत दिशा देता है, या वहीं उमड़ पड़ती है जहाँ इसे बाँध दिया जाता है।"

— चिन्तनपरक प्रेक्षण

शरीर के पश्चात्, मन वह सर्वाधिक तत्काल क्षेत्र है जिसमें ऋत की व्यवस्था कार्य करती है — और सर्वाधिक भ्रान्ति से ग्रस्त भी। हम मन को किसी ऐसी वस्तु के रूप में सोचने की प्रवृत्ति रखते हैं जिसका हम स्वामित्व रखते और नियन्त्रण करते हैं। 'मेरा मन,' हम कहते हैं — मानो वह कोई उपकरण हो जिसे हम इच्छानुसार उठाते और रखते हैं। किन्तु ईमानदार प्रेक्षण कुछ अत्यन्त भिन्न प्रकट करता है। मन आपके नियन्त्रण में नहीं है। यह एक प्रक्रिया है जिसमें आप निवास करते हैं, जिसे आप कुछ-कुछ प्रभावित करते हैं, और जिसके द्वारा आप अत्यधिक रूप से आकार पाते हैं।

विचार आपकी अनुमति के बिना उठते हैं। भाव बिना निमन्त्रण के प्रकट होते हैं। ध्यान बिना सचेत निर्देश के भटकता है। मन वही करता है जो मन करता है, और उस पर आपके नियन्त्रण का बोध, बोध की अधिकांश साधारण अवस्थाओं में, अत्यधिक भ्रामक है। यह निराशा का कारण नहीं है। यह सटीक समझ का कारण है। यदि आप मानते हैं कि आप अपने मन को नियन्त्रित करते हैं, तो आप उसके आपके संकल्पों का पालन न करने से निरन्तर कुण्ठित होते रहेंगे। यदि आप समझते हैं कि मन अपनी गतिकी वाला एक तन्त्र है — ऐसी गतिकी जो बोधगम्य है, जो कुछ प्रकार के सहयोग के प्रति प्रतिक्रिया करती है, जिसके साथ काम किया जा सकता है, उसके विरुद्ध नहीं — तो आप वस्तुतः उसे प्रभावित करने की स्थिति में हैं।

*
**

मन, शरीर की भाँति, ऋत के अनुसार कार्य करता है। प्रतिरूप हैं। कारणात्मक सम्बन्ध हैं। सन्तुलन की ओर और कोलाहल से दूर ले जाने वाली स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं जो, जब उनमें हस्तक्षेप नहीं किया जाता, स्वयं को स्पष्टता और स्थिरता के रूप में अभिव्यक्त करती हैं। समस्या यह है कि हम मन में निरन्तर हस्तक्षेप करते हैं, ऐसे ढंगों से जिन्हें हम हस्तक्षेप के रूप में पहचानते ही नहीं।

निरन्तर निवेश हस्तक्षेप है। आधुनिक परिवेश सूचना, उत्तेजना और ध्यान की माँग की एक मूलतः अनन्त धारा प्रदान करता है। प्रत्येक सूचना-संकेत, प्रत्येक समाचार-शीर्षक, प्रत्येक वार्तालाप, प्रत्येक पर्यावरणीय ध्वनि या दृश्य उद्दीपन मानसिक क्षमता पर एक दावा प्रस्तुत करता है। मन एक निश्चित मात्रा और गुणवत्ता के निवेश को संसाधित करने के लिए अभिकल्पित है। यह उस आयतन के लिए अभिकल्पित नहीं है जो समकालीन जीवन प्रायः प्रदान करता है। जब निवेश मन की एकीकरण-क्षमता से अधिक हो जाता है, तो परिणाम केवल अभिभूत होने की अनुभूति नहीं होता। मन किस प्रकार कार्य करता है, इसमें संरचनात्मक परिवर्तन आ जाते हैं। ध्यान खण्डित हो जाता है। सतत, संगत चिन्तन का सामर्थ्य घट जाता है। भावनात्मक नियमन अधिक कठिन हो जाता है। सचेत अनुभव के भीतर संकेत-से-कोलाहल का अनुपात क्षीण हो जाता है।

मन की स्वाभाविक अवस्था

यहाँ एक बात है जिसे विभिन्न परम्पराओं के चिन्तकों ने सुसंगत रूप से बताया है, और जिसकी आधुनिक तंत्रिकाविज्ञान उत्तरोत्तर पुष्टि कर रहा है: मन की स्वाभाविक अवस्था — जब वह उद्वेलित नहीं किया जा रहा, जब वह अतिरिक्त निवेश को संसाधित नहीं कर रहा, जब उसे अवकाश दिया जाता है — अव्यवस्था नहीं है। यह स्पष्टता है। सामान्य धारणा यह है कि चेतना एक प्रकार का प्रकाश-स्तम्भ है जिसे हम किसी अव्यवस्थित अन्धकार पर डालते हैं, उसे विचार और तर्क से प्रकाशित करते हुए। किन्तु अनुसन्धान का एक बढ़ता हुआ निकाय कुछ भिन्न सुझाता है: कि स्पष्टता, संगति, और वस्तुओं को सटीक रूप से देखने का शान्त सामर्थ्य चेतना की आधार-अवस्था के अधिक निकट है, बजाय किसी ऐसी वस्तु के जिसे सक्रिय रूप से रचना पड़े।

मन, अविचलित छोड़े गए मटमैले जल की भाँति, स्वच्छ होने की प्रवृत्ति रखता है। जो उसे मटमैला रखता है वह स्वयं मन की प्रकृति नहीं, बल्कि वह निरन्तर उद्वेलन है जिसे हम लाते हैं — अत्यधिक उत्तेजना, बाध्यकारी चिन्तन, भावनात्मक प्रतिक्रियाशीलता, और सच्ची

स्थिरता का एक क्षण भी विरले ही आने देने की गहरी आदत के माध्यम से। ऋत मन में उपस्थित है, किन्तु यह स्वयं को नई सामग्री जोड़ने के बजाय हस्तक्षेप हटाने के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

मानसिक जीवन की कारणात्मक संरचना

स्पष्टता की ओर इस सामान्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त, मानसिक जीवन में एक विशिष्ट कारणात्मक संरचना है जिसे सावधानी से समझना सार्थक है। विचार पृथक् घटनाएँ नहीं हैं। वे भावनात्मक अनुनाद रचते हैं। वे अनुनाद आगामी विचारों की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। परिणामी विचार-भाव समुच्चय बोध को आकार देता है — हम क्या देखते हैं, किस पर बल देते हैं, अपने चारों ओर के संसार में किसकी उपेक्षा करते हैं। वह परिवर्तित बोध हमारे निर्णयों को प्रभावित करता है। वे निर्णय ऐसे परिणाम उत्पन्न करते हैं जो फिर हमारी आन्तरिक अवस्था में पुनः समाहित हो जाते हैं। यह एक बन्द चक्र है, और यह मानसिक ऋत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षणों में से एक है।

जो व्यक्ति सुसंगत रूप से चिन्ता के प्रतिरूपों में सोचता है, वह संकटों को देखने की प्रवृत्ति रखेगा। संकटों को देखते हुए, वह चिन्ता-प्रभावित निर्णय लेगा। वे निर्णय ऐसे परिणाम उत्पन्न करेंगे जो — क्योंकि चिन्ता-प्रभावित निर्णय प्रायः निकृष्ट होते हैं — संकट के मूल बोध को सुदृढ़ करने की प्रवृत्ति रखते हैं। चक्र बन्द हो जाता है। प्रतिरूप गहरा हो जाता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति स्पष्ट, आधारित बोध की आदत विकसित करता है, वह परिस्थितियों को अधिक सटीक रूप से देखने, बेहतर निर्णय लेने, अधिक स्थिर परिणाम रचने, और अपनी आन्तरिक अवस्था में सकारात्मक प्रतिपुष्टि ग्रहण करने की प्रवृत्ति रखेगा। इस संरचना को समझना व्यावहारिक शक्ति है: हर वस्तु को नियन्त्रित करने की शक्ति नहीं, बल्कि यह समझने की शक्ति कि आप किसे सुदृढ़ कर रहे हैं और भिन्न चयन करने की।

"आप सोच-सोचकर स्पष्टता तक नहीं पहुँच सकते। किन्तु आप सोच-सोचकर उससे दूर जाना बन्द कर सकते हैं। वहीं से अभ्यास आरम्भ होता है।"

अध्याय सात

तन्त्रों में ऋत — संगठन, समाज और बाज़ार

"तन्त्र संयोगवश असफल नहीं होते। वे इसलिए असफल होते हैं कि किसी ने उस बात की उपेक्षा कर दी जो तन्त्र कहने का प्रयास कर रहा था।"

— तन्त्र-चिन्तन का प्रेक्षण

वही सिद्धान्त जो शरीर और मन का शासन करते हैं, प्रत्येक जटिल तन्त्र का शासन करते हैं — संगठन, बाज़ार, समाज, पारितन्त्र, सरकारें। यह ऋत को समझने के सर्वाधिक व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण निहितार्थों में से एक है। अधिकांश लोग संगठनात्मक और सामाजिक गतिकी को प्राकृतिक गतिकी से मूलतः भिन्न मानते हैं — मानवीय रचनाओं के रूप में जो मुख्यतः मानवीय इच्छा और अभिकल्प के अधीन हैं, न कि उन्हीं व्यवस्थाकारी सिद्धान्तों की अभिव्यक्तियों के रूप में जो समस्त जटिल तन्त्रों का शासन करते हैं। यह भ्रान्ति महँगी है। यही कारण है कि इतने संगठनात्मक रूपान्तरण असफल होते हैं, इतनी रणनीतिक योजनाएँ अनभिप्रेत परिणाम उत्पन्न करती हैं, और इतने नेता उन तन्त्रों के व्यवहार से स्वयं को चकित पाते हैं जिन्हें वे नियन्त्रित करते मानते हैं।

बाज़ार सबसे स्पष्ट उदाहरणों में से एक हैं। बाज़ार एक असाधारण रूप से जटिल सूचना-संसाधन तन्त्र है, जो मूल्य की क्रियाविधि के माध्यम से लाखों व्यक्तियों के निर्णयों का समन्वय करता है। मूल्य सूचना वहन करते हैं — दुर्लभता के विषय में, माँग के विषय में, गुणवत्ता के विषय में, अपेक्षित भावी परिस्थितियों के विषय में — जिसे कोई केन्द्रीय नियोजक एकत्र और संसाधित नहीं कर सकता था। जब बाज़ार-मूल्यों को सच्चे संकेतों के रूप में कार्य करने दिया जाता है, तो वे इस समन्वय-कार्य को उल्लेखनीय दक्षता से निष्पादित करते हैं। जब उन्हें दबाया जाता है — मूल्य-नियन्त्रणों, संकेतों को विकृत करने वाली सहायिकियों, और सटीक मूल्य-निर्माण को रोकने वाली नियामक-अभिग्रहण के माध्यम से — तो सूचना-कार्य ध्वस्त हो जाता है। निर्णय मिथ्या संकेतों के आधार पर लिए जाते हैं। संसाधनों का दुर्वितरण होता है। असन्तुलन

संचित होते हैं। यह बाजारों में क्रियाशील ऋत है — किसी रहस्यमय शक्ति के रूप में नहीं, बल्कि इस संरचनात्मक वास्तविकता के रूप में कि सूचना-आधारित समन्वय कैसे कार्य करता है।

*
**

संगठन और उनका ऋत

संगठनों का अपना ऋत होता है — अपनी अन्तर्निहित व्यवस्था जो, जब उसका सम्मान किया जाता है, तो सतत उच्च निष्पादन को सम्भव बनाती है, और जब उसका उल्लंघन किया जाता है, तो दुष्क्रिया उत्पन्न करती है। संगठनात्मक ऋत कैसा दिखता है? इसमें घोषित मूल्यों और वास्तविक आचरण के बीच का सच्चा संरेखण सम्मिलित है। जब संगठन ऐसे मूल्यों की घोषणा करते हैं जिनका वे अभ्यास नहीं करते, तो एक संरचनात्मक विरोधाभास होता है। कर्मचारी इसे लक्षित करते हैं, भले ही वे इसे ठीक-ठीक व्यक्त न कर सकें। विश्वास क्षीण होता है। संलग्नता घटती है। निष्पादन को आघात पहुँचता है। जो कहा जाता है और जो किया जाता है, उनके बीच का विसंरेखण केवल एक संचार-समस्या नहीं है — यह तन्त्र की अन्तर्निहित अखण्डता में एक दरार है।

संगठनात्मक ऋत में ईमानदार सूचना का प्रवाह सम्मिलित है। जो संगठन सन्देशवाहक को दण्डित करते हैं — जो बुरी सूचना देना, समस्याओं को सामने लाना, पूर्वधारणाओं को चुनौती देना खतरनाक बना देते हैं — वे स्वयं को महत्वपूर्ण प्रतिपुष्टि से काट लेते हैं। सटीक प्रतिपुष्टि के बिना, तन्त्र संशोधन नहीं कर सकता। त्रुटियाँ संचित होती हैं। विसंरेखण बढ़ते हैं। इसमें अधिकार और उत्तरदायित्व के बीच का मेल सम्मिलित है: जब लोगों के पास परिणामों के तदनु रूप उत्तरदायित्व के बिना निर्णय लेने का अधिकार होता है, तो स्वाभाविक सुधारक क्रियाविधि हट जाती है। और इसमें व्यक्तिगत मानव-स्वभाव का सम्मान सम्मिलित है — यह तथ्य कि लोग यन्त्र नहीं हैं और दीर्घकालिक तनाव, अपर्याप्त स्वायत्तता, या अपने कार्य के साथ सच्चे सम्बन्ध के अभाव की दशाओं में अपना श्रेष्ठतम निष्पादन नहीं करते।

ऋत के झरोखे से नेतृत्व

नेताओं के लिए, ऋत को समझना सम्भवतः सर्वाधिक व्यावहारिक रूप से मूल्यवान् एकमात्र बौद्धिक ढाँचा है जो उपलब्ध है। ऋत में आधारित नेतृत्व परिणामों को प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित करने का प्रयास नहीं करता। यह ऐसी दशाएँ रचता है जो स्वाभाविक व्यवस्थाकारी

प्रक्रियाओं को प्रभावी रूप से कार्य करने देती हैं। परिणामों को नियन्त्रित करने का प्रयास करने वाला नेता अधिकार को केन्द्रीकृत करने, भिन्न सूचना को दबाने, अपने मतों की पुष्टि करने वाले लोगों को पुरस्कृत करने, और दिशा की परवाह किए बिना गति को प्रगति के समान मानने की प्रवृत्ति रखेगा। ऋत के साथ काम करने वाला नेता अधिकार को ज्ञान और उत्तरदायित्व के अनुपात में वितरित करने, ईमानदार सूचना-प्रवाह के लिए माध्यम रचने, और गति तथा प्रगति के बीच भेद करने की प्रवृत्ति रखेगा।

इसके लिए, सर्वोपरि, बोध की स्पष्टता आवश्यक है — यह देखने की क्षमता कि वस्तुतः क्या घटित हो रहा है, बजाय इसके कि आप क्या घटित होते देखना पसन्द करेंगे। और बोध की वह स्पष्टता स्वयं ऋत के साथ संरेखण का उत्पाद है। जो नेता भीतर से संरेखित है — जिसका आन्तरिक जीवन भय, अहं, या विकृत बोध से अभिभूत नहीं है — वह जिन तन्त्रों का नेतृत्व करता है उन्हें देखने और उनके साथ काम करने में व्यवस्थित रूप से बेहतर होता है। यही कारण है कि यह पुस्तक संगठनों और समाजों तक पहुँचने से पूर्व शरीर और मन से आरम्भ होती है। बाह्य संरेखण आन्तरिक संरेखण से आरम्भ होता है।

"नेता का कार्य तन्त्र की बुद्धिमत्ता को अपनी बुद्धिमत्ता से प्रतिस्थापित करना नहीं है। यह तन्त्र को उस गहनतर व्यवस्था के साथ संरेखित करना है जो उसे अपनी ही बुद्धिमत्ता को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने देती है।"

आप ऋत की एक अभिव्यक्ति हैं

"यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे — जो व्यष्टि में है वही ब्रह्माण्ड में है।"

— औपनिषदिक शिक्षा

हम ऋत को बाहर से भीतर की ओर देखते आ रहे हैं — उसे ब्रह्माण्ड में, प्रकृति में, शरीर में, मन में, तन्त्रों में प्रेक्षित करते हुए। अब हमें वह मोड़ लेना है जो इस प्रथम खण्ड को पूर्ण करता है। ऋत केवल कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो आपके चारों ओर विद्यमान है, कोई ऐसी वस्तु जिसके साथ आपको एक बाह्य शक्ति के रूप में संरेखित होना है। ऋत वह सिद्धान्त है जिसके द्वारा आप विद्यमान हैं। आप बाहर से ऋत द्वारा शासित किसी ब्रह्माण्ड में मार्ग खोजती कोई पृथक् सत्ता नहीं हैं। आप ऋत की एक अभिव्यक्ति हैं, उसके भीतर उठती हुई, उसके द्वारा टिकाई हुई, और उससे अविभाज्य।

औपनिषदिक सूत्र इसे ठीक-ठीक पकड़ता है: यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे। जो व्यष्टि शरीर में है वही ब्रह्माण्ड-अण्ड में है। सूक्ष्म जगत् बृहद् जगत् का प्रतिबिम्ब है। व्यष्टि समष्टि का दर्पण है। यह विचार संस्कृतियों और परम्पराओं में प्रकट होता है क्योंकि यह संरचनात्मक वास्तविकता का एक प्रत्यक्ष प्रेक्षण है, जो किसी भी ऐसे व्यक्ति को उपलब्ध है जो अंश और समग्र के बीच के सम्बन्ध को पर्याप्त रूप से ध्यानपूर्वक देखता है।

वही गणितीय प्रतिरूप — जिन्हें हम अब फ्रैक्टल कहते हैं — जो वृक्षों की शाखाओं का शासन करते हैं, वही आपकी श्वसनिकाओं, आपकी रक्त-वाहिकाओं, और आपके तंत्रिका-तन्तुओं की शाखाओं का भी शासन करते हैं। आकाशगंगाओं में पाए जाने वाले वही लघुगणकीय सर्पिल शंभुकों के कवचों में और पौधों के विकास-प्रतिरूपों में प्रकट होते हैं। संगीत में, स्वस्थ हृदय-स्पन्दनों में, और पारितन्त्रों के उतार-चढ़ाव में पाई जाने वाली विचरण की वही आवृत्तियाँ। ये रूप के संयोग नहीं हैं। ये वास्तविकता के स्तरों के बीच एक गहरी संरचनात्मक तदात्मता की अभिव्यक्तियाँ हैं। वही व्यवस्थाकारी सिद्धान्त जो विशाल ब्रह्माण्ड

को आकार देते हैं, हर स्तर पर अभिव्यक्त होते हैं, जिसमें व्यष्टिगत मनुष्य का स्तर भी सम्मिलित है।

*

**

इसका एक व्यावहारिक परिणाम है जो सब कुछ बदल देता है। यदि आप ऋत के साथ सरेखित होने का प्रयास करती कोई पृथक् सत्ता न होकर स्वयं ऋत की अभिव्यक्ति हैं, तो सरेखण मूलतः जोड़ने की प्रक्रिया नहीं है। आपको ऋत को बाहर से आयात करके अपने में स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। आपको उसे हटाने की आवश्यकता है जो उस ऋत को आच्छादित कर रहा है जो पहले से ही आपके भीतर क्रियाशील है।

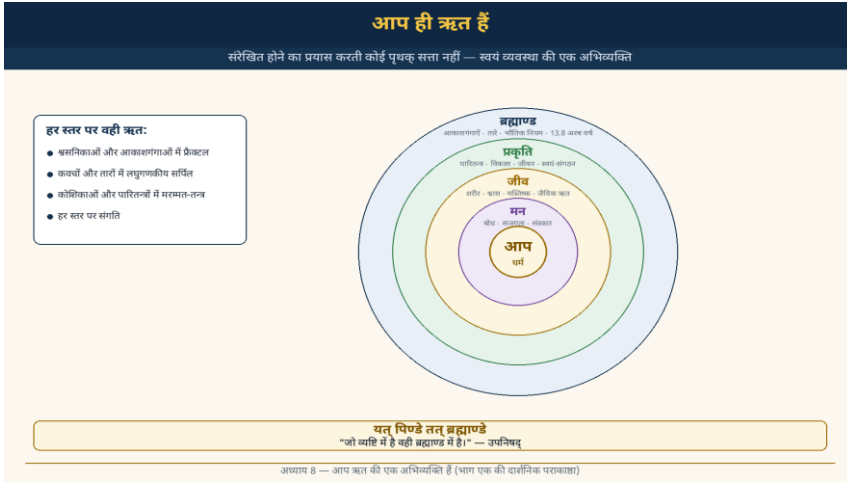
वह स्पष्टता, वह संगति, वह बुद्धिमत्तापूर्ण स्वयं-संगठनकारी प्रवृत्ति जो ब्रह्माण्ड के हर स्तर पर ऋत का लक्षण है — वह पहले से ही आपके भीतर उपस्थित है। यह आपके हृदय-स्पन्दन में, आपके प्रतिरक्षा-कार्य में, जीवन भर आपके वर्धन और विकास के प्रतिरूपों में स्वयं को अभिव्यक्त कर रही है। यह तब उपस्थित थी जब आपको इसकी कोई संकल्पना ही नहीं थी। यह अभी, इसी क्षण उपस्थित है, आपके अस्तित्व की दशाओं को बनाए रखती हुई। जो इसे आच्छादित करता है वह किसी नैतिक अर्थ में बुराई या अज्ञान नहीं है। यह संचित संस्कार है, अभ्यस्त विकृति है, पूर्वधारणा और प्रतिक्रियाशीलता की वे परतें हैं जो स्पष्ट मार्गदर्शन के बिना एक जटिल सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिवेश में मार्ग खोजते जीवन भर में बनती हैं।

*

**

यह अभिज्ञान — कि आप ऋत की एक अभिव्यक्ति हैं, उसके नियम सीखने का प्रयास करता कोई अजनबी नहीं — सम्पूर्ण यात्रा की गुणवत्ता बदल देता है। सरेखण कोई उपलब्धि नहीं है। यह एक घर-वापसी है। यह कुछ ऐसा बनने के विषय में नहीं है जो आप नहीं हैं। यह उसे हटाने के विषय में है जो उसे आच्छादित करता है जो आप पहले से ही हैं। और धर्म — सम्यक् कर्म, उपयुक्त प्रत्युत्तर, गहनतर व्यवस्था के साथ लय में जीना — बाहर से थोपा गया कोई अनुशासन नहीं है। यह उस मनुष्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है जो स्पष्ट देख रहा है और उस स्पष्टता से कर्म कर रहा है।

"आपको ऋत सीखने की आवश्यकता नहीं है। आपको यह स्मरण करने की आवश्यकता है कि आप उसकी अभिव्यक्ति हैं। शेष सब उस अभिज्ञान से अनुसरण करता है, चरण-दर-चरण, श्वास-दर-श्वास, एक बार में एक ईमानदार क्षण।"



आप ही ऋत हैं: संरक्षित होने का प्रयास करती कोई पृथक् सत्ता नहीं —
स्वयं व्यवस्था की एक अभिव्यक्ति

अध्याय 8

भाग दो धर्म: मानवीय प्रत्युत्तर

अध्याय नौ

धर्म — इसका वास्तविक अर्थ

"मनुष्य इसलिए बुद्धिमान नहीं कहलाता कि वह बार-बार बोलता रहता है; किन्तु यदि वह शान्त, प्रेमपूर्ण और निर्भय है तो वही सचमुच बुद्धिमान कहलाता है।"

— धम्मपद

धर्म भारतीय दार्शनिक परम्परा के सर्वाधिक प्रयुक्त और सर्वाधिक भ्रान्ति से ग्रस्त शब्दों में से एक है। इसका अनुवाद मत-पन्थ, कर्तव्य, धार्मिकता, नैतिक नियम, ब्रह्माण्डीय व्यवस्था, सम्यक् आचरण, सद्गुण, सत्य, और एक दर्जन अन्य वस्तुओं के रूप में किया गया है, जिनमें से कोई भी पूर्णतः सही नहीं है और सभी कुछ-न-कुछ आंशिक पकड़ते हैं। धर्म के अनुवाद में कठिनाई यह है कि यह उस ढंग से संज्ञा नहीं है जिस ढंग से अंग्रेजी की संज्ञाएँ प्रायः काम करती हैं। यह संज्ञा के वेश में एक क्रिया के अधिक निकट है — यह होने और करने के बीच, किसी वस्तु की प्रकृति और उस प्रकृति की उपयुक्त अभिव्यक्ति के बीच एक गतिशील सम्बन्ध का वर्णन करता है।

इस शब्द का मूल संस्कृत की धातु 'धृ' से आता है, जिसका अर्थ है 'धारण करना,' 'टिकाना,' 'बनाए रखना।' धर्म, अपने सर्वाधिक मूलभूत स्तर पर, वह है जो वस्तुओं को एक साथ धारण करता है, जो किसी तन्त्र की संगति को टिकाता है। अग्नि का धर्म है जलना। जल का धर्म है बहना। नदी का धर्म है समुद्र को पाना। और मनुष्य का धर्म कुछ अधिक जटिल है — कुछ ऐसा जो मानव-स्वभाव के समस्त आयामों और प्रत्येक व्यक्तिगत जीवन की विशिष्ट परिस्थितियों को सम्मिलित करता है — किन्तु यह उसी प्रकार की वस्तु है: किसी वस्तु की अन्तर्भूत प्रकृति की ऐसी अभिव्यक्ति जो उसकी संगति को और उस वृहत्तर तन्त्र की संगति को टिकाती है जिसका वह अंग है।

*
**

इस मूल समझ से, कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली, धर्म इस अर्थ में सार्वभौमिक नहीं है कि वह हर परिस्थिति में हर किसी के लिए एक समान हो। यह अपने सिद्धान्त के अर्थ में सार्वभौमिक है — जो संगति को टिकाता है वह सदा धार्मिक होता है — किन्तु इसकी अभिव्यक्ति सन्दर्भ, भूमिका, सामर्थ्य और परिस्थिति के साथ भिन्न होती है। एक शल्य-चिकित्सक का धर्म एक शिक्षक के धर्म से भिन्न है। संकट का धर्म शान्ति के धर्म से भिन्न है। यौवन का धर्म वृद्धावस्था के धर्म से भिन्न है। धर्म की यह सन्दर्भगत प्रकृति ठीक वही कारण है जिससे इसे नियमों के एक समुच्चय में घटाया नहीं जा सकता। नियम स्थिर होते हैं; धर्म प्रत्युत्तरशील होता है।

दूसरी, धर्म इस विषय में नहीं है कि आप क्या चाहते हैं। यह इस विषय में है कि परिस्थिति क्या माँगती है। यह एक निर्णायक भेद है जिस पर हम बार-बार लौटेंगे। साधारण जीवन में जो बहुत-कुछ नैतिक तर्क के रूप में चल जाता है, वह वस्तुतः उसका परिष्कृत औचित्य-निर्माण है जो हम पहले से ही करना चाहते हैं। धर्म कुछ अधिक कठिन माँगता है: यह देखने की तत्परता कि वस्तुतः क्या आवश्यक है, इससे स्वतन्त्र कि हमारे लिए व्यक्तिगत रूप से क्या सुविधाजनक, सुखद या लाभकारी है। तीसरी, धर्म ऋत से पृथक् नहीं है। यदि ऋत ब्रह्माण्डीय व्यवस्था है, तो धर्म उस व्यवस्था की व्यष्टिगत कर्म के माध्यम से अभिव्यक्ति है। ऋत नदी है। धर्म उसकी धारा के विरुद्ध नहीं बल्कि उसके साथ गति करने की कला है।

धर्म क्या नहीं है

धर्म मत-पन्थ नहीं है। इस शब्द को विभिन्न धार्मिक परम्पराओं ने अपना लिया है, किन्तु जिस धर्म की ओर वैदिक ऋषियों ने संकेत किया वह किसी भी मत-पन्थ से पूर्व विद्यमान है। यह वास्तविकता का एक लक्षण है, धार्मिक विश्वास का लक्षण नहीं। किसी भी आस्था का, अथवा बिना किसी आस्था का व्यक्ति, धर्म के साथ सरेखण में जी सकता है। किसी भी आस्था का व्यक्ति उसका उल्लंघन कर सकता है। धर्म परम्परागत अर्थ में नैतिकता नहीं है। परम्परागत नैतिकता नियमों से बनी होती है — सन्दर्भ की परवाह किए बिना स्थिर। इन नियमों का अपना स्थान है; वे एक ऐसा ढाँचा प्रदान करते हैं जो उन परिस्थितियों में निरन्तर विचार-विमर्श की आवश्यकता को घटाता है जहाँ सही प्रत्युत्तर स्पष्ट है। किन्तु धर्म को नियमों में घटाया नहीं जा सकता।

धर्म त्यागशील अर्थ में कर्तव्य नहीं है — दायित्व का वह भाव जिसे अनेक लोग एक बोझ, एक थोपी हुई वस्तु, कुछ ऐसा जो उन्हें अपनी रुचियों के विरुद्ध करना ही पड़ता है, के

रूप में अनुभव करते हैं। सच्चा धर्म कोई बोझ नहीं है। जब आप समझते हैं कि किसी परिस्थिति में वस्तुतः क्या आवश्यक है और उसके प्रति उपयुक्त रूप से प्रत्युत्तर देने की स्पष्टता और संरक्षण रखते हैं, तो वह कर्म त्याग जैसा अनुभव नहीं होता। यह यथार्थता जैसा अनुभव होता है। 'चाहिए' शब्द विलीन हो जाता है, क्योंकि उपयुक्त कर्म स्पष्ट दर्शन से स्वाभाविक रूप से उठता है।

"धर्म सटीक प्रत्युत्तर है — वह कर्म जो, इस विशिष्ट सन्दर्भ में, इन विशिष्ट दशाओं के साथ, संगति को बाधित करने के बजाय उसे टिकाता है। यह जीवन पर लागू की गई परिशुद्धता है।"

अध्याय दस

सम्यक् कर्म — परिशुद्धता, नैतिकता नहीं

"प्रश्न यह नहीं है कि 'अच्छा कार्य क्या है?' प्रश्न यह है कि 'सटीक कार्य क्या है?'
ये दोनों सदा एक नहीं होते।"

— समकालीन प्रेक्षण

एक नैतिक निर्णय और एक सटीक निर्णय के बीच एक सार्थक अन्तर है। एक नैतिक निर्णय पूछता है: यह सही है या ग़लत? यह मूल्यों के एक ढाँचे को लागू करता है और उस ढाँचे की कसौटी पर किसी कर्म का मूल्यांकन करता है। यह व्यर्थ नहीं है। नैतिक ढाँचे इस विषय में संचित प्रज्ञा को संकेतबद्ध करते हैं कि क्या हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति रखता है और क्या सहायता करने की। ये मूल्यवान् युक्तियाँ हैं। किन्तु एक सटीक निर्णय कुछ भिन्न पूछता है: इस परिस्थिति की सम्पूर्ण वास्तविकता को देखते हुए — वास्तविक दशाएँ, वास्तविक सम्बद्ध लोग, वास्तविक सम्भावित परिणाम — कौन-सा कर्म इससे सर्वाधिक संरेखित है कि ऋत यहाँ क्या माँगता है? सटीकता नैतिकता को अपने में समाहित कर लेती है। एक सटीक प्रत्युत्तर गहनतम अर्थ में नैतिक होता है, क्योंकि वह वास्तविकता की वास्तविक संरचना के साथ सामंजस्य में होता है, न कि केवल किसी नियम के अनुरूप।

एक चिकित्सक को कभी-कभी अधिक हानि को रोकने के लिए पीड़ा पहुँचानी पड़ती है। एक सरल नैतिक ढाँचे से, पीड़ा पहुँचाना ग़लत है। किन्तु शल्य-क्रिया के सन्दर्भ में, हानि का कारण और उपचार का कारण अस्थायी रूप से एक ही होते हैं। चिकित्सक का धर्म पीड़ा पहुँचाने से बचना नहीं है — यह सच्चे उपचार की खोज में अनावश्यक हानि को न्यूनतम करना है। प्रत्युत्तर की सटीकता के लिए सन्दर्भ, विशिष्ट रोगी, विशिष्ट रोग, तथा कर्म और अकर्म के विशिष्ट सम्भावित परिणामों को समझना आवश्यक है।

एक प्रबन्धक को कभी-कभी किसी व्यक्ति का रोज़गार समाप्त करना पड़ता है। एक सरल नैतिक ढाँचे से, किसी को उसकी आजीविका से वंचित करना हानिकारक है और इसलिए

गलत। किन्तु यदि रोज़गार स्वयं संगठन को हानि पहुँचा रहा है, उन संसाधनों का उपभोग कर रहा है जो अन्य आजीविकाओं को टिकाते हैं, ऐसी गतिकी रच रहा है जो सामूहिक कार्य को क्षीण करती है, तो सटीक प्रत्युत्तर — चाहे वह कितना ही पीड़ादायक हो — रोज़गार-सम्बन्ध को समाप्त करना सम्मिलित कर सकता है। प्रबन्धक का धर्म कठिन निर्णयों से बचना नहीं, बल्कि आवश्यक निर्णयों को सावधानी, स्पष्टता और उपयुक्त प्रक्रिया के साथ लेना है।

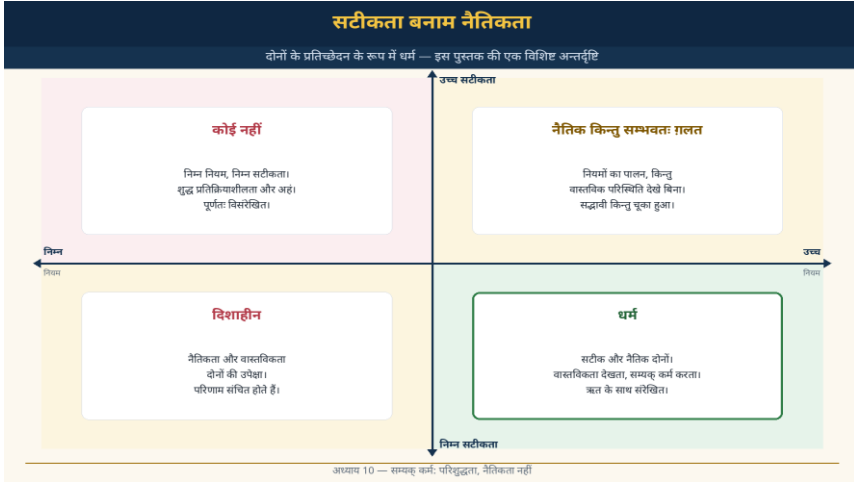
एक माता-पिता को कभी-कभी वह अस्वीकार करना पड़ता है जो बच्चा चाहता है। बच्चे के दृष्टिकोण से, यह अस्वीकृति हानिकारक है। बच्चे के दीर्घकालिक विकास और कल्याण के सन्दर्भ से, यह अस्वीकृति ठीक वही हो सकती है जो आवश्यक है। इन उदाहरणों में जो समान है वह है सन्दर्भगत बुद्धिमत्ता की आवश्यकता — किसी परिस्थिति को उसकी सम्पूर्ण जटिलता में समझने और उसके प्रति प्रत्युत्तर देने की क्षमता जो वस्तुतः उपस्थित है, न कि उसके प्रति जो किसी नियम के अनुसार उपस्थित होना चाहिए।

जब परिशुद्धता कठिनाई माँगती है

सटीक प्रत्युत्तर सदा सुखद नहीं होता। प्रायः नहीं होता। धर्म के सर्वाधिक सामान्य उल्लंघनों में से एक है सटीकता के बजाय सुख को चुनना — वह करना जो सरल है या जिसे सामाजिक स्वीकृति मिलेगी, बजाय उसके जो परिस्थिति वस्तुतः माँगती है। यह सदा स्पष्ट नहीं होता। सुख का चयन प्रायः सद्गुण की भाषा में स्वयं को प्रस्तुत करता है: 'मैं उनकी भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता।' 'यह सही समय नहीं है।' 'चीज़ें अपने आप सुलझ जाएँगी।'

ये कभी-कभी सटीक आकलन होते हैं। प्रायः नहीं होते। ये प्रायः कठिन सत्य देने की, असहज निर्णय लेने की, सटीक बोध के परिणामों को स्वीकार करने की असहजता के विरुद्ध बचाव होते हैं। ऋत असहजता को समायोजित करने के लिए नहीं झुकता। परिस्थिति जो है वही है। सटीक प्रत्युत्तर जो है वही है। वह प्रत्युत्तर उस व्यक्ति के लिए सुखद है या असुखद जिसे उसे देना है, यह एक पृथक् प्रश्न है — एक ऐसा प्रश्न जिसे धर्म अन्ततः सटीकता के पक्ष में हल करता है।

"धर्म यह नहीं पूछता कि यह सुखद है या नहीं। यह पूछता है कि यह सटीक है या नहीं। सुख संरक्षण से अनुसरण करता है। यह उसकी पूर्वशर्त नहीं हो सकता।"



सटीकता बनाम नैतिकता: दोनों के प्रतिच्छेदन के रूप में धर्म —

इस पुस्तक की एक विशिष्ट अन्तर्दृष्टि

अध्याय 10

भूमिका, दायित्व और सन्दर्भगत धर्म

"अपने धर्म की दूसरे के धर्म से तुलना मत करो। तुम्हारा अपना धर्म, भले ही अपूर्ण हो, दूसरे के भली-भाँति किए गए धर्म से श्रेष्ठ है।"

— भगवद्गीता 3.35

धर्म को सम्यक् रूप से समझने के सर्वाधिक मुक्तिदायी पहलुओं में से एक यह पहचानना है कि यह भूमिका-विशिष्ट और सन्दर्भ-विशिष्ट है। ऐसा कोई सार्वभौमिक आचरण-समुच्चय नहीं है जो हर परिस्थिति में हर मनुष्य के लिए धर्म का गठन करे। अन्तर्निहित सिद्धान्त — संगति को टिकाने वाला सटीक प्रत्युत्तर — स्थिर बना रहता है। किन्तु इसकी अभिव्यक्ति इस पर निर्भर करते हुए अत्यधिक भिन्न होती है कि आप कौन हैं, सम्बन्धों और दायित्वों के उस जाल में आप कौन-सी स्थिति रखते हैं जो आपके जीवन का गठन करता है, और प्रत्येक क्षण की विशिष्ट दशाएँ क्या माँगती हैं।

भगवद्गीता धर्म के इस आयाम का असाधारण गहराई से अन्वेषण करती है। गीता का केन्द्रीय संकट अर्जुन का एक योद्धा के रूप में अपनी भूमिका के अनुसार कर्म करने से इनकार है, क्योंकि वह उस कर्म को जो उसकी भूमिका माँगती है, नैतिक रूप से गलत देखता है। वह अपनी भूमिका की माँगों को पूरा करने के बजाय उसका त्याग कर देना चाहेगा। प्रत्युत्तर में कृष्ण की शिक्षा इस बात का एक गहन अन्वेषण है कि धर्म को सही ढंग से समझने का क्या अर्थ है। शिक्षा का सार यह है: इस क्षण में अर्जुन का धर्म उसकी भूमिका से अविभाज्य है। इस भूमिका का उसका त्याग, चाहे वह उसकी व्यक्तिगत संवेदना को कितना ही आकर्षक लगे, स्वयं धर्म का उल्लंघन है — क्योंकि यह अन्याय को प्रबल होने और व्यवस्था को ढहने देता है।

वे भूमिकाएँ जिनमें हम निवास करते हैं

प्रत्येक व्यक्ति एक साथ अनेक भूमिकाओं में निवास करता है, प्रत्येक अपना धार्मिक आयाम वहन करती हुई। एक माता-पिता के रूप में, आपके धर्म में नियन्त्रित किए बिना पोषण करना, प्रभुत्व जमाए बिना मार्गदर्शन करना, उपयुक्त जोखिम और असफलता की अनुमति देते हुए सुरक्षा प्रदान करना सम्मिलित है। जो माता-पिता देखभाल को नियन्त्रण के साथ भ्रमित करते हैं — जो अपने बच्चों को उनके कर्मों के परिणामों से ऐसे ढंगों से बचाते हैं जो विवेक और प्रत्यास्थता के विकास को रोकते हैं — वे अपनी भूमिका के धर्म का उल्लंघन कर रहे होते हैं, भले ही वे यह विश्वास करें कि वे उसे पूरा कर रहे हैं।

एक नेता के रूप में, आपके धर्म में स्पष्ट देखना, अनावश्यक विलम्ब के बिना निर्णय लेना, ईमानदारी से संवाद करना, लोगों को उत्तरदायी ठहराते हुए उनके विकास का संपोषण करना सम्मिलित है। एक शिक्षक के रूप में, आपके धर्म में प्रत्येक विद्यार्थी में निहित सम्भावना को देखना, मात्र सूचना के अन्तरण के बजाय सच्चे अधिगम के लिए दशाएँ रचना सम्मिलित है। एक मित्र के रूप में, आपके धर्म में ईमानदारी, ऐसी निष्ठा जो आपसे मिथ्या आख्यानों का समर्थन करने की अपेक्षा न करे, और ऐसी देखभाल सम्मिलित है जो आवश्यक होने पर कठिन सत्य कहने को तत्पर हो। इन उदाहरणों में जो समान है वह यह है कि प्रत्येक भूमिका का एक अनिवार्य कार्य होता है — कुछ ऐसा जिसे पूरा करने या बनाए रखने के लिए वह विद्यमान है — और उस भूमिका में धर्म इससे निर्धारित होता है कि वस्तुतः क्या उस कार्य की सेवा करता है।

जब भूमिकाएँ परस्पर टकराती हैं

भूमिका-आधारित धर्म का एक विशेष रूप से कठिन आयाम वह परिस्थिति है जहाँ आपकी भूमिकाएँ परस्पर विरोधी माँगें करती हैं। आप एक निष्ठावान कर्मचारी हैं जो यह खोज लेता है कि आपका संगठन कुछ सचमुच हानिकारक कर रहा है। आप एक स्नेही परिवार-सदस्य हैं जिसका सम्बन्धी ऐसे चयन कर रहा है जो न केवल स्वयं को बल्कि दूसरों को भी क्षति पहुँचाते हैं। ये संघर्ष विरले नहीं हैं। ये एक सचेत जीवन की सर्वाधिक सामान्य और कठिन चुनौतियों में से हैं।

जो इन्हें हल करता है — या अधिक सटीक रूप से, जो इन्हें अखण्डता के साथ पार करने देता है, तब भी जब सरल अर्थ में समाधान उपलब्ध न हो — वह है अन्तर्निहित प्रश्न की

ओर लौटना: यहाँ सटीकता क्या माँगती है? इस सम्पूर्ण सन्दर्भ में, अपनी समस्त जटिलता के साथ, कौन-सा प्रत्युत्तर ऋत की गहनतर व्यवस्था से सर्वाधिक संरेखित है? यह कोई कलनविधि नहीं है। यह बोध का एक गुण है, जो अभ्यास से विकसित होता है और संरेखण से टिकता है।

"आपका धर्म किसी और के जीवन से उधार नहीं लिया जा सकता। इसे आपके अपने जीवन की सम्पूर्ण बुनावट में खोजा जाना चाहिए, इस पर ईमानदार ध्यान के माध्यम से कि प्रत्येक क्षण और प्रत्येक भूमिका वस्तुतः क्या माँगती है।"

धार्मिक निर्णय

"उद्दीपन और प्रतिक्रिया के बीच एक अवकाश है। उस अवकाश में हमारी अपनी प्रतिक्रिया चुनने की शक्ति है। हमारी प्रतिक्रिया में ही हमारा विकास और हमारी स्वतन्त्रता निहित है।"

— विक्टर फ्रैंकल

निर्णय-निर्माण धर्म की सर्वाधिक व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। प्रत्येक निर्णय या तो सरेखण का बिन्दु है या विसरेखण का। प्रत्येक निर्णय या तो संगति की ओर बढ़ता है या उससे दूर। प्रत्येक निर्णय उसे लेने वाले व्यक्ति के बोध की गुणवत्ता को प्रतिबिम्बित करता है — उसकी आन्तरिक अवस्था की स्पष्टता या विकृति, परिस्थिति की उसकी समझ की सटीकता या असटीकता। अतः धार्मिक निर्णय-निर्माण को समझना केवल सही मूल्यों या संकल्पों के होने का विषय नहीं है। यह निर्णय के वास्तविक क्षण में स्पष्ट बोध करने का सामर्थ्य विकसित करने का विषय है, जब स्वार्थ, सामाजिक स्वीकृति, भय और आदत के दबाव और खिंचाव सर्वाधिक सक्रिय होते हैं।

तीन परतें

धार्मिक निर्णय-निर्माण को जिज्ञासा की तीन परतों के माध्यम से देखा जा सकता है। पहली परत है: वस्तुतः क्या घटित हो रहा है? यह स्वतःस्पष्ट लगता है। यह नहीं है। अधिकांश निर्णय इस आधार पर नहीं लिए जाते कि वस्तुतः क्या घटित हो रहा है, बल्कि इस आधार पर कि हम क्या मान लेते हैं, क्या भय करते हैं, या क्या घटित होते देखना चाहते हैं। किसी परिस्थिति के वास्तविक तथ्य प्रायः उस आख्यान से अत्यन्त भिन्न होते हैं जो हम उसके विषय में पहले ही गढ़ चुके होते हैं। वस्तुतः क्या घटित हो रहा है, इसका सटीक विवरण पाने के लिए पूर्व आख्यान का निलम्बन आवश्यक है — इस विषय में गलत होने की एक सच्ची तत्परता कि आपने जो समझा था वह क्या था।

दूसरी परत है: यह परिस्थिति क्या माँगती है? यह नहीं कि मैं परिस्थिति से क्या माँगवाना चाहता हूँ। यह नहीं कि क्या प्रदान करना सुखद होगा। बल्कि यह कि वास्तविक परिस्थिति को बेहतर संगति की ओर बढ़ने के लिए वस्तुतः किसकी आवश्यकता है? जो आप प्रदान करना चाहते हैं और जो वस्तुतः आवश्यक है, उनके बीच का भेद निर्णय-निर्माण में विसंरक्षण के सर्वाधिक सुसंगत स्रोतों में से एक है। हम स्वाभाविक रूप से परिस्थितियों को ऐसे ढंगों से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति रखते हैं जो उस प्रत्युत्तर को, जिसे देने की ओर हम पहले से ही झुके हुए हैं, उपयुक्त प्रतीत कराएँ।

तीसरी परत है: उपलब्ध समस्त सम्भावनाओं में से कौन-सा कर्म इस परिस्थिति की दीर्घकालिक संगति से सर्वाधिक संरक्षित है? अल्पकालिक और दीर्घकालिक दृष्टिकोण प्रायः भिन्न उत्तर उत्पन्न करते हैं। जो कर्म तत्काल में असहजता घटाते हैं, वे समय के साथ अस्थिरता बढ़ा सकते हैं। जो कर्म अभी असहजता उत्पन्न करते हैं, वे आगे चलकर स्थिरता रच सकते हैं। धर्म तत्कालिक के प्रति उदासीन नहीं है — आपके सामने खड़े लोगों का दुःख अभी महत्त्व रखता है। किन्तु यह उस तात्कालिकता-पूर्वाग्रह के प्रति-सन्तुलन के रूप में दीर्घ दृष्टि की माँग करता है जो अधिकांश साधारण निर्णय-निर्माण को विकृत करता है।

समता की भूमिका

मन का एक गुण है जो धार्मिक निर्णय-निर्माण को सम्भव बनाता है और जिसे केवल इच्छाशक्ति या तकनीक से नहीं रचा जा सकता। परम्परा इसे समता कहती है — ध्यान की एक स्थिर, अप्रतिक्रियात्मक स्थिरता जो न तो परिस्थिति से विरक्त है और न ही उससे अभिभूत। समता उदासीनता नहीं है। समता का व्यक्ति परिणामों की और सम्बद्ध लोगों की गहराई से परवाह करता है। वह जो नहीं करता वह यह है कि उस परवाह को चिन्ता में ढहने दे, या उस सरोकार को कठोरता में कड़ा होने दे। वह परिस्थिति की सम्पूर्ण वास्तविकता के साथ उपस्थित रहता है — उसकी कठिनाई, उसकी अनिश्चितता, उसकी जटिलता सहित — उससे अस्थिर हुए बिना।

"आपके निर्णयों की गुणवत्ता पूर्णतः निर्णय के क्षण में आपके बोध की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। और आपके बोध की गुणवत्ता इस पर निर्भर करती है कि उस क्षण आप संरक्षित हैं या विसंरक्षित। यही कारण है कि आन्तरिक कार्य व्यावहारिक प्रभावशीलता से पृथक् नहीं है। यह उसकी पूर्वशर्त है।"



धार्मिक निर्णय का ढाँचा: सटीक प्रत्युत्तर की तीन परतें

अध्याय 12

अध्याय तेरह

कर्म — परिणाम का तर्क

"आप अपने कर्मों के परिणामों से बच नहीं सकते। आप केवल यह चुन सकते हैं कि आप कौन-से परिणाम रचते हैं।"

— औपनिषदिक शिक्षा

कर्म सम्भवतः वह सर्वाधिक व्यापक रूप से भ्रान्ति से ग्रस्त संकल्पना है जो भारतीय दर्शन से वैश्विक संस्कृति में पहुँची है। लोकप्रिय प्रयोग में, कर्म एक प्रकार की ब्रह्माण्डीय स्वचालित विक्रय-मशीन बन गया है — आप अच्छे कर्म डालते हैं, आपको अच्छे परिणाम मिलते हैं; आप हानि करते हैं, बदले में आपको हानि मिलती है। इसे एक जादुई अदले-बदले में, एक अलौकिक पुरस्कार-और-दण्ड तन्त्र में घटा दिया गया है जो प्राकृतिक कार्यकारणता के बाहर चलता है और किसी अदृश्य नैतिक लेखाकार द्वारा संचालित होता है। यह घटाव बात को पूर्णतः चूक जाता है।

कर्म अलौकिक नहीं है। यह ब्रह्माण्ड की सर्वाधिक स्वाभाविक वस्तु है। यह केवल यह प्रेक्षण है कि कर्मों के परिणाम होते हैं — वास्तविक, कारणात्मक, सिद्धान्ततः पूर्वानुमेय परिणाम — और कि ये परिणाम यादृच्छिक नहीं हैं बल्कि कर्म की प्रकृति से और उस तन्त्र से जुड़े होते हैं जिसमें वह घटित होता है। जब आप अपने व्यावसायिक जीवन में छल के माध्यम से चलते हैं, तो आप ऐसे विशिष्ट परिणाम रचते हैं जो इस संरचना से पूर्णतः पूर्वानुमेय हैं कि विश्वास-आधारित तन्त्र कैसे कार्य करते हैं। छल, जब प्रकट होता है, विश्वास को नष्ट कर देता है। नष्ट हुआ विश्वास विरले ही पूर्ण रूप से पुनर्स्थापित हो पाता है। छल की प्रतिष्ठा उस प्रकार के सहयोग को रोक देती है जिसकी जटिल लक्ष्यों को आवश्यकता होती है। ये किसी ब्रह्माण्डीय न्यायाधीश द्वारा दिए गए दण्ड नहीं हैं। ये विश्वास-आधारित तन्त्रों की उन निवेशों के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ हैं जो उनकी अखण्डता का उल्लंघन करते हैं।

जब आप थकान और पुनर्प्राप्ति की आवश्यकता के अपने शरीर के संकेतों को निरन्तर लाँघते हैं, तो आप अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में ऐसे परिणाम रचते हैं जो मानव तनाव-प्रतिक्रिया के जीवविज्ञान से पूर्वानुमेय हैं। जब आप समय के साथ सतत, कठिन अभ्यास के माध्यम से किसी कौशल को विकसित करने में निवेश करते हैं, तो आप अपने सामर्थ्य में ऐसे परिणाम रचते हैं जो इससे पूर्वानुमेय हैं कि अधिगम और प्रवीणता कैसे विकसित होते हैं। कर्म कारण और कार्य है, जो मानव-कर्म के क्षेत्र में और उन तन्त्रों में उसके परिणामों के रूप में कार्य करता है जिनमें मनुष्य निवास करते हैं।

कर्म तत्काल क्यों नहीं होता

कर्म के इतने व्यापक रूप से भ्रान्ति से ग्रस्त होने का एक कारण यह है कि परिणाम प्रायः तत्काल नहीं होते। आज का कोई कर्म वर्षों तक अपने पूर्ण परिणाम उत्पन्न न करे। यह कालिक अन्तराल यह भ्रम रचता है कि कर्म और परिणाम कारणात्मक रूप से जुड़े नहीं हैं, जो ऐसे कर्मों की खोज को प्रोत्साहित करता है जो अल्पकाल में लाभकारी प्रतीत होते हैं जबकि दीर्घकाल में समस्याजनक परिणाम रचते हैं। यह अन्तराल व्यवस्थित कारणों से विद्यमान है। जटिल तन्त्र निवेशों के प्रति ऐसी गतिकी के माध्यम से प्रतिक्रिया करते हैं जो समय के साथ उद्धाटित होती है। विश्वास एक क्षण में नष्ट नहीं होता — यह क्रमशः क्षीण होता है। स्वास्थ्य रातोंरात नहीं ढहता — यह उत्तरोत्तर क्षरित होता है।

कर्म के विषय में समझने योग्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण बातों में से एक यह है: परिणाम आएगा। उसके आगमन की मन्दता उसकी अनुपस्थिति का प्रमाण नहीं है। यह उन कालमानों का प्रमाण है जिन पर जटिल तन्त्र निवेशों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। जो नेता निकृष्ट रणनीतिक निर्णय लेते हुए चापलूसी के माध्यम से अल्पकालिक निष्ठा बटोरता है, वह उन निर्णयों के पूर्ण परिणाम का सामना करेगा — प्रायः ठीक उसी क्षण जब संगठन उसे सबसे कम वहन कर सकता है।

"कर्म नैतिक लेखे-जोखे नहीं चुकाता। यह तन्त्र को संगति की ओर लौटाता है। यह जो दुःख रचता है वह दण्ड नहीं है — यह विसरेखण से सुधार का मूल्य है। इसे समझना यह रूपान्तरित कर देता है कि आप परिणामों से किस प्रकार सम्बन्ध रखते हैं, अपने भी और दूसरों के भी।"



कर्म-चक्र: बोध · कर्म · परिणाम · प्रतिपुष्टि
अध्याय 13 — कर्म: परिणाम का तर्क

अध्याय चौदह

संस्कार और स्पष्टता की बाधा

"हम संसार को वैसा नहीं देखते जैसा वह है। हम उसे वैसा देखते हैं जैसे हम हैं।"

— तत्त्वदिक अन्तर्दृष्टि

हम सटीक बोध को धार्मिक कर्म की नींव के रूप में चर्चित करते आ रहे हैं। किन्तु सटीक बोध केवल ध्यानपूर्वक देखने का विषय नहीं है। इसके लिए यह समझना आवश्यक है कि सबसे पहले बोध को विकृत क्या करता है — और सर्वाधिक शक्तिशाली विकृतकारक संस्कार है। इस सन्दर्भ में संस्कार का अर्थ है विचार, भाव, बोध और आचरण के वे संचित प्रतिरूप जो विशेष सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत परिवेशों में जीवन भर के अनुभव में बने हैं। हम सब संस्कारित हैं। यह कोई दोष नहीं है। मन इसी प्रकार विकसित होते हैं — उन प्रतिरूपों के आन्तरीकरण के माध्यम से जो परिचित परिस्थितियों के प्रति प्रत्येक बार नए सिरे से विचार-विमर्श की आवश्यकता के बिना त्वरित प्रत्युत्तर की अनुमति देते हैं।

समस्या तब उठती है जब संस्कार उन परिस्थितियों में कार्य करता है जिनके लिए वह उपयुक्त नहीं है — जब स्वचालित प्रतिरूप किसी ऐसी परिस्थिति पर लागू किया जाता है जिसे कुछ भिन्न, कुछ नवीन, कुछ ऐसा चाहिए जो संस्कार प्रदान नहीं कर सकता। अधिकांश लोगों को इस बात का कोई बोध नहीं होता कि उनका बोध और कर्म किस मात्रा तक संस्कारित हैं। किसी दी हुई परिस्थिति के प्रति प्रत्युत्तर में जो विचार उठते हैं वे स्वतःस्फूर्त और व्यक्तिगत प्रतीत होते हैं — वे आपके विचार प्रतीत होते हैं। किन्तु ध्यानपूर्वक प्रेक्षण प्रकट करता है कि उनमें से अनेक आपके इतिहास के आधार पर अत्यन्त पूर्वानुमेय हैं: वह परिवार जिसमें आप बड़े हुए, वह संस्कृति जिसने आपको गढ़ा, वे महत्वपूर्ण अनुभव जिन्होंने आपके भावनात्मक परिदृश्य को आकार दिया, वे विश्वास जिन्होंने आपने उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन करने का सामर्थ्य पाने से पूर्व ही आत्मसात् कर लिया।

ये संस्कारित प्रतिरूप पृष्ठभूमि में सॉफ्टवेयर की भाँति चलते हैं। वे आने वाली सूचना को छानते हैं — उसे प्रवर्धित करते हुए जो विद्यमान विश्वासों की पुष्टि करती है, उसे दबाते या टाल जाते हुए जो उनका खण्डन करती है। वे सचेत विचार के संलग्न होने का समय पाने से पूर्व ही भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न कर देते हैं। वे कर्मों को ऐसे ढंगों से प्रेरित करते हैं जो विचार-विमर्श को पूर्णतः छोड़ देते हैं। इस प्रकार के संस्कार से कर्म करना धर्म नहीं है। यह अतीत का वर्तमान का स्वाँग है।

संस्कार को देखना

संस्कार के साथ कार्य करने का पहला चरण उसे बदलना नहीं है। यह उसे देखना है। संस्कार तब तक अदृश्य रहता है जब तक उसे पहचाना न जाए। और उसे ठीक उसी संकाय द्वारा नहीं पहचाना जा सकता जिसे वह संस्कारित कर रहा है — आप किसी विकृत लेंस का उपयोग उस विकृति का परीक्षण करने के लिए नहीं कर सकते। आपको ध्यान के एक भिन्न गुण की आवश्यकता है। यही कारण है कि चिन्तन-परम्पराएँ सुसंगत रूप से एक साक्षी-गुण के विकास पर बल देती हैं — अपने ही विचारों, भावों और प्रतिक्रियाओं का उनमें पूर्णतः लीन हुए बिना प्रेक्षण करने का सामर्थ्य।

जब आप किसी विचार को केवल वह विचार होने के बजाय उठते हुए देख सकते हैं, तब कुछ बदल गया होता है। जब आप किसी प्रतिक्रिया को केवल वास्तविकता से अभिन्न रूप में अनुभव करने के बजाय बनते हुए प्रेक्षित कर सकते हैं, तब संस्कार की पकड़ कुछ ढीली हो गई होती है। इसका अर्थ यह नहीं कि संस्कार तत्काल लुप्त हो जाता है। दशकों में बने प्रतिरूप रातोंरात विलीन नहीं होते। किन्तु वे अपना स्वचालित गुण खोने लगते हैं। प्रतिवर्त में एक अन्तराल सम्मिलित होने लगता है — एक संक्षिप्त ठहराव जिसमें संस्कारित प्रतिक्रिया के अतिरिक्त कुछ और उठ सकता है। वह अन्तराल ही वह स्थान है जहाँ धर्म निवास करता है।

"आप उसे नहीं बदल सकते जिसे आप देख नहीं सकते। और आप उसे नहीं देख सकते जिसके साथ आप तदात्म हैं। अपने ही प्रतिरूपों से थोड़ी दूरी रचना स्वतन्त्रता का आरम्भ है — और धार्मिक कर्म का आरम्भ है।"

वह स्पष्टता जो सब कुछ बदल देती है

*"जब नेत्र अबाधित होता है, तो परिणाम होता है दर्शन। जब मन अबाधित होता है,
तो परिणाम होता है सत्या।"*

— च्वांगत्से

स्पष्टता का एक गुण है जो साधारण समझ से भिन्न है। साधारण समझ संज्ञानात्मक होती है। आप किसी संकल्पना को बौद्धिक रूप से ग्रहण करते हैं। आप उसे समझा सकते हैं, परिचित सन्दर्भों में लागू कर सकते हैं, उसे पहचान सकते हैं जब कोई और उसकी चर्चा करता है। इस प्रकार की समझ मूल्यवान है। यह शिक्षा और व्यावसायिक प्रवीणता का आधार है। किन्तु जो स्पष्टता यह रूपान्तरित करती है कि आप कैसे जीते हैं, वह मुख्यतः संज्ञानात्मक नहीं है। यह बोधात्मक है। यह इस बात में एक परिवर्तन है कि आप कैसे देखते हैं — यह नहीं कि जो आप देखते हैं उसके विषय में आप क्या सोचते हैं, बल्कि स्वयं वह देखना।

इस अन्तर पर विचार कीजिए। आप बौद्धिक रूप से समझ सकते हैं कि आपकी तनाव-प्रतिक्रिया सदा वास्तविक संकट का सटीक संकेत नहीं होती — कि किसी प्रस्तुति को लेकर जो चिन्ता आप अनुभव करते हैं वह वैसी नहीं है जैसा भय कोई शिकार-पशु किसी परभक्षी की उपस्थिति में अनुभव करता है, और कि उसे वैसा मानकर व्यवहार करना अनावश्यक दुःख और निकृष्ट निष्पादन उत्पन्न करता है। आप यह जान सकते हैं। आप इसे धाराप्रवाह व्यक्त कर सकते हैं। और फिर प्रस्तुति का दिन आता है, और तनाव-प्रतिक्रिया सक्रिय हो जाती है, और आप पूर्णतः उसी में होते हैं — कसी हुई छाती, दौड़ते विचार, भागने या जड़ हो जाने या अति-क्षतिपूर्ति करने का आवेग — और वह समस्त बौद्धिक समझ कहीं पृष्ठभूमि में होती है, जो आप वस्तुतः अनुभव कर रहे हैं उससे अधिकांशतः असम्बद्ध। बौद्धिक समझ यह बदलती है कि आप क्या जानते हैं। बोधात्मक स्पष्टता यह बदलती है कि आप क्या अनुभव करते हैं।

बोधात्मक स्पष्टता कैसे उठती है

बोधात्मक स्पष्टता अधिक सोचने से नहीं उठती। यह उस कोलाहल के घटने से उठती है जो उसे आच्छादित करता है। यही चिन्तन-अन्तर्दृष्टि का केन्द्रीय विरोधाभास है: स्पष्टता प्राप्त नहीं की जाती। यह प्रकट की जाती है। जब वे दशाएँ घटती हैं जो उसे आच्छादित करती हैं, तो वह प्रकट हो जाती है — इसलिए नहीं कि आपने उसे जोड़ा है, बल्कि इसलिए कि वह संस्कार, प्रतिक्रियाशीलता और अत्यधिक मानसिक सक्रियता की परतों के नीचे सदा वहीं थी।

मटमैले जल का दृष्टान्त सरल किन्तु परिशुद्ध है। स्वच्छ जल को रचने की आवश्यकता नहीं होती। उसे बैठने देने की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया रचना नहीं है — यह उद्वेलन का हटना है। मानव चेतना पर लागू: वह स्पष्टता जो धार्मिक बोध को सम्भव बनाती है, कोई नई मानसिक अवस्था नहीं है जिसे शून्य से बनाना पड़े। यह उस मन की स्वाभाविक दशा है जो निरन्तर उद्वेलित नहीं किया जा रहा। जब उद्वेलन घटता है — श्वास के माध्यम से, मौन के माध्यम से, प्रत्युत्तर के सोद्देश्य मन्दीकरण के माध्यम से, अप्रतिक्रियाशीलता के सतत अभ्यास के माध्यम से — तो कुछ ऐसा जो सदा उपस्थित था सुलभ हो जाता है।

स्पष्टता के आने पर क्या बदलता है

जब सच्ची बोधात्मक स्पष्टता की एक मात्रा भी उपस्थित होती है, तो कई बातें एक साथ बदल जाती हैं। निर्णय सरल हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि वे सरल हो जाते हैं — जटिल परिस्थितियाँ जटिल बनी रहती हैं — बल्कि इसलिए कि वे विकृतियाँ घट जाती हैं जो अनावश्यक कठिनाई रचती हैं। आप परिस्थिति को अधिक वैसा देखते हैं जैसी वह है। वह कर्म जो इससे संरखित है कि ऋत क्या माँगता है, अधिक स्पष्ट हो जाता है। सम्बन्ध सुधरते हैं। अधिकांश सम्बन्ध-कठिनाइयाँ प्रक्षेपण से उठती हैं — दूसरे व्यक्ति में ऐसे भाव, मंशा, या निर्णय पढ़ने से जो वस्तुतः उपस्थित नहीं हैं। स्पष्टता प्रक्षेपण को घटाती है। आप अपने सामने खड़े व्यक्ति को अधिक प्रत्यक्ष रूप से, अधिक सटीक रूप से देखते हैं।

कर्म अधिक प्रभावी हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि आप अधिक चतुर या अधिक बलशाली हो जाते हैं, बल्कि इसलिए कि आप कम कर रहे होते हैं — कम अनावश्यक प्रयास, कम प्रतिकूल प्रतिरोध, आन्तरिक संघर्ष में कम व्यर्थ ऊर्जा। स्पष्टता एक प्रकार की स्वाभाविक दक्षता उत्पन्न करती है जिसे अकेली रणनीति नहीं रच सकती। हमने अब ऋत और धर्म दोनों

की नींव स्थापित कर ली है। भाग तीन में, हम सीधे यह देखने की ओर मुड़ते हैं कि जब सरेखण विफल होता है तब क्या होता है।

"जब आप स्पष्ट देखते हैं, तो आप स्वच्छ कर्म करते हैं। घर्षण जीवन में नहीं है। यह जीवन और उसके प्रति आपके बोध के बीच की विकृति में है। विकृति को हटा दीजिए, और घर्षण स्वतः विलीन हो जाता है।"

भाग तीन

**विसरेखणः जब जीवन स्वयं का
प्रतियोध करता है**

अध्याय सोलह

ऋत की उपेक्षा का मूल्य

"प्रकृति हड़बड़ी नहीं करती, फिर भी सब कुछ सम्पन्न हो जाता है। जब आप नदी से लड़ते हैं, तो थक जाते हैं। जब आप उसके साथ बहते हैं, तो पहुँच जाते हैं।"

— लाओ त्जु

ऋत और धर्म को बौद्धिक स्तर पर समझना मूल्यवान है किन्तु अपर्याप्त। जो इस समझ को अत्यावश्यक बनाता है — जो इसे व्यावहारिक भार देता है — वह इस बात का ईमानदार लेखा-जोखा है कि जब इनकी उपेक्षा की जाती है तब क्या होता है। ऋत के साथ विसरेखण तत्काल प्रलय उत्पन्न नहीं करता। यह वस्तुतः इसके सर्वाधिक खतरनाक लक्षणों में से एक है। विसरेखण के परिणाम प्रायः विलम्बित, क्रमिक, और आरम्भ में टाल देने में सरल होते हैं।

यह इस विश्वास को बनाए रखते हुए दीर्घ अवधियों तक विसरेखण में बने रहना सम्भव बना देता है कि चीजें मूलतः ठीक हैं — जब तक कि वे अकस्मात्, स्पष्ट रूप से ठीक न रह जाएँ। जो व्यक्ति दीर्घकाल तक निद्रा-वंचित रहता है वह तत्काल नहीं ढहता। वह क्षतिपूर्ति करता है। वह अनुकूलित होता है। वह उपाय खोज लेता है। वह स्वयं को और दूसरों को बताता है कि वह ठीक से सँभाल रहा है। और कुछ समय के लिए, वह सँभाल भी रहा होता है — इस अर्थ में कि शरीर का उल्लेखनीय क्षतिपूरक सामर्थ्य अब भी तन्त्र को एक साथ धारण किए हुए है। किन्तु मूल्य संचित हो रहा है।

शरीर में

सतत विसरेखण के प्रति शरीर की प्रतिक्रिया एक पूर्वानुमेय प्रतिरूप का अनुसरण करती है। पहला चरण है क्षतिपूर्ति। शरीर में असाधारण अनुकूली क्षमता है। जब उसकी स्वाभाविक लयें बाधित होती हैं, तो वह क्षतिपूर्ति करता है। वह आरक्षित क्षमता तैनात करता है। वह कुछ तन्त्रों में निम्न-गुणवत्ता वाले कार्य को स्वीकार करता है ताकि अन्यो में महत्वपूर्ण कार्य बना

रहे। यह क्षतिपूर्ति प्रायः अदृश्य होती है। व्यक्ति थका हुआ किन्तु क्रियाशील अनुभव करता है। वह तनावग्रस्त किन्तु सँभलता हुआ अनुभव करता है। वह अस्पष्ट रूप से अस्वस्थ किन्तु रोगी नहीं अनुभव करता है। यह शरीर है जो चलते रहने के लिए पर्याप्त संगति बनाए रखता है, उस चल रहे विसरेखण के बावजूद।

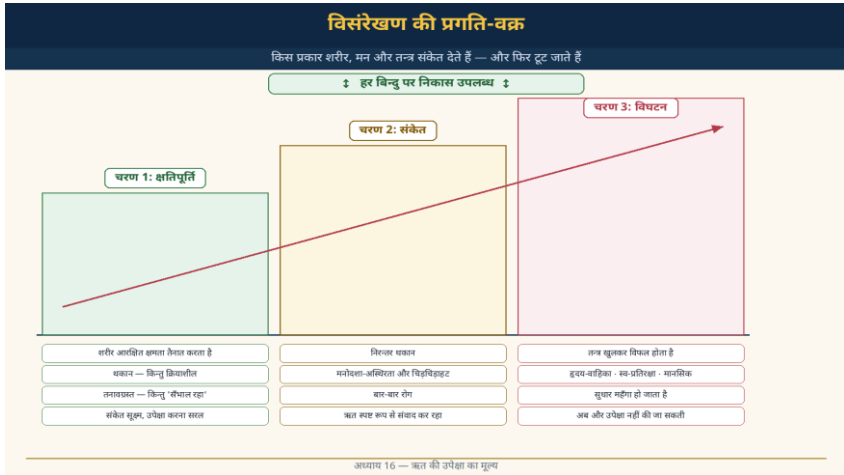
दूसरा चरण है संकेत। ज्यों-ज्यों क्षतिपूर्ति मूल्य संचित करती है, शरीर अधिक आग्रही संकेत उत्पन्न करने लगता है। ये अनेक रूप लेते हैं: निरन्तर थकान जिसे निद्रा पूर्णतः दूर नहीं करती, बार-बार होने वाला सिरदर्द या पाचन-विकार, मनोदशा-अस्थिरता, एकाग्रता में कठिनाई, रोग के प्रति बढ़ी हुई प्रवणता। ये संकेत स्वयं में समस्याएँ नहीं हैं। ये संवाद हैं — ऋत का सचेत बोध को यह सूचित करने का ढंग कि कुछ बदलने की आवश्यकता है। ये सुधार के अवसर हैं जो, यदि ग्रहण किए जाएँ और उनके प्रति प्रत्युत्तर दिया जाए, तो तीसरे चरण को रोक सकते हैं।

तीसरा चरण है विघटना। जब संकेतों को दीर्घकाल तक दबाया या उपेक्षित किया जाता है, जब विसरेखण शरीर के क्षतिपूरक सामर्थ्य से परे बना रहता है, तो तन्त्र ऐसे ढंगों से विफल होने लगता है जिनकी अब और उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह भिन्न शरीरों में भिन्न रूप लेता है — हृदय-वाहिका रोग, स्व-प्रतिरक्षा विकार, उपापचयी दुष्क्रिया, मानसिक स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण क्षरण — किन्तु सामान्य स्रोत एक ही है: जैविक ऋत के साथ सतत विसरेखण, तन्त्र की क्षतिपूर्ति की क्षमता से परे बना हुआ। इसमें से कुछ भी अनिवार्य नहीं है। शरीर का स्वयं-संशोधक सामर्थ्य शक्तिशाली है। तीसरे चरण से पूर्व किसी भी बिन्दु पर, और प्रायः उसके भीतर भी, दिशा बदल सकती है।

संगठनों में

विसरेखण में पड़े संगठन अपर्याप्त प्रयास के कारण असफल नहीं होते। वे इसलिए असफल होते हैं कि उनका प्रयास इससे संरेखित नहीं है कि वस्तुतः किसे बदलने की आवश्यकता है। उसी कर्म का और अधिक वही परिणाम उत्पन्न करता है — अर्थात्, कोई परिणाम नहीं। संगठनात्मक विसरेखण का लाक्षणिक चिह्न पुनरावृत्ति है: वही वार्तालाप बैठक-दर-बैठक बिना समाधान के होते हैं, वही गतिकी वही संघर्ष उत्पन्न करती है, वही पहले आरम्भ की जाती हैं और चुपचाप छोड़ दी जाती हैं। यह पुनरावृत्ति संरचनात्मक विसरेखण की ओर संकेत करती है — उन प्रतिरूपों की ओर जो सतही हस्तक्षेपों के स्तर के नीचे कार्य करते हैं।

"वलसरंखण का मूल्य ँक साथ नहीं चुकाया जाता। यह उत्तरोत्तर चुकाया जाता है — व्यर्थ ऊर्जा, क्षरलत स्वास्थ्य, क्षतलग्रस्त सम्बन्ध, और चूकी हुई सम्भावनाओं की मुद्रा में। चालान सदा आता है। ँकमात्र प्रश्न यह है कल कब।"



वलसरंखण की प्रगतल-वक्र: क्षतलपूर्तल → संकेत → वलघटन

अध्याय 16

नियन्त्रण का भ्रम

"जिसका आप प्रबन्धन नहीं कर सकते उसका प्रबन्धन करने का प्रयास छोड़ दीजिए। जिसका आप कर सकते हैं उसका प्रबन्धन कीजिए। और भेद को जानिए।"

— प्राचीन प्रज्ञा

मानव जीवन में विसरेखण के समस्त स्रोतों में से, सम्भवतः सर्वाधिक व्यापक और सर्वाधिक महंगा वह है जिसे नियन्त्रित नहीं किया जा सकता उसे नियन्त्रित करने का प्रयास। नियन्त्रण अनिश्चितता के प्रति मन की पसन्दीदा प्रतिक्रिया है। जब परिणाम अस्पष्ट होते हैं, जब भविष्य अपूर्वानुमेय होता है, जब लोग और तन्त्र अपेक्षानुसार व्यवहार नहीं करते, तो स्वाभाविक प्रतिक्रिया पकड़ को कसना होती है — अधिक प्रबन्धन करना, अधिक निगरानी करना, अधिक हस्तक्षेप करना। यह सहज-वृत्ति समझ में आती है। नियन्त्रण सुरक्षा का आत्मनिष्ठ अनुभव रचता है, तब भी जब वह जो वस्तुनिष्ठ सुरक्षा प्रदान करता है वह सीमित होती है। किन्तु नियन्त्रण एक अनन्त जटिलता पर लागू किया गया एक सीमित संसाधन है।

स्टोइक दार्शनिकों ने बड़ी परिशुद्धता से उस भेद को व्यक्त किया जो हमारे प्रभाव के भीतर है और जो नहीं है। जो हमारे प्रत्यक्ष प्रभाव के भीतर है: इस क्षण में हमारे ध्यान की गुणवत्ता, जो उठता है उसके प्रति किस प्रकार प्रत्युत्तर देना है इसका चयन, जो हम करते हैं उसमें हम जो प्रयास लाते हैं, हमारे संचार की ईमानदारी, वह देखभाल जिसके साथ हम अपने आस-पास के लोगों के साथ व्यवहार करते हैं। जो हमारे प्रत्यक्ष नियन्त्रण के भीतर नहीं है: दूसरे लोगों की प्रतिक्रियाएँ और चयन, उन जटिल तन्त्रों के परिणाम जिनमें हम सहभागी होते हैं, बाजारों और संगठनों और सामाजिक गतिकी का व्यवहार, एक ऐसे संसार में हमारे कर्मों के वृहत्तर परिणाम जहाँ कारण और कार्य सरल या रैखिक नहीं हैं।

जो वस्तुतः हमारे प्रभाव के बाहर है उसे नियन्त्रित करने का प्रयास नियन्त्रण उत्पन्न नहीं करता। यह नियन्त्रण का भ्रम उत्पन्न करता है, साथ ही कहीं यह जानने की चिन्ता भी कि वह

भ्रम भंगुर है। इसके इस बात के लिए गहन निहितार्थ हैं कि हम संगठनों, सम्बन्धों, पालन-पोषण, नेतृत्व, और प्रायः सोद्देश्य मानव-सक्रियता के हर क्षेत्र के प्रति किस प्रकार पहुँचते हैं।

नियन्त्रण से प्रभाव की ओर

नियन्त्रण का विकल्प निष्क्रियता नहीं है। यह संरेखण है। संरेखण का अर्थ है उस तन्त्र की वास्तविक गतिकी को समझना जिसके साथ आप काम कर रहे हैं — उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ, उसके बन्धन, उसकी प्रतिपुष्टि-क्रियाविधियाँ, उसकी संगति और असंगति के स्रोत — और उस गतिकी के विरुद्ध नहीं बल्कि उसके साथ काम करना। संरेखित नेता यह नहीं पूछता कि 'मैं इस तन्त्र से वह कैसे करवाऊँ जो मैं चाहता हूँ?' बल्कि 'इस तन्त्र को भली-भाँति कार्य करने के लिए किसकी आवश्यकता है?' प्रश्न में यह अन्तर संलग्नता की एक पूर्णतः भिन्न गुणवत्ता उत्पन्न करता है।

संरेखित माता-पिता यह नहीं पूछते कि 'मैं अपने बच्चे के लिए वे परिणाम कैसे उत्पन्न करूँ जो मैं चाहता हूँ?' बल्कि 'मेरे बच्चे को एक समर्थ, आधारित मनुष्य के रूप में विकसित होने के लिए किसकी आवश्यकता है?' संरेखित पेशेवर यह नहीं पूछता कि 'मैं अपनी स्थिति की रक्षा और अपने प्रभाव का विस्तार कैसे करूँ?' बल्कि 'यहाँ मेरा सच्चा योगदान क्या है, और मैं उसे सर्वाधिक प्रभावी रूप से कैसे कर सकता हूँ?' ये प्रश्न कभी-कभी अपने नियन्त्रण-उन्मुख विकल्पों जैसे ही उत्तर उत्पन्न करते हैं। प्रायः वे अत्यन्त भिन्न उत्तर उत्पन्न करते हैं।

"नियन्त्रण का विरोधाभास यह है कि आप जितना कम नियन्त्रित करने का प्रयास करते हैं, आपका प्रभाव उतना ही अधिक प्रभावी हो जाता है। क्योंकि आपने स्वयं को इससे संरेखित कर लिया है कि तन्त्र वस्तुतः कैसे कार्य करता है, बजाय इसके कि आप यह दृष्टि थोपें कि आप उसे कैसे कार्य करते देखना चाहते हैं।"

नियन्त्रण बनाम संरक्षण	
बल बनाम प्रवाह — जटिल तन्त्रों के साथ दो मूलतः भिन्न सम्बन्ध	
नियन्त्रण (बल)	संरक्षण (प्रवाह)
समस्त अधिकार केन्द्रीकृत करें	अधिकार वहाँ वितरित करें जहाँ ज्ञान निवास करता है
भिन्न रूपना को दबाएँ	ईमानदार प्रतिपुष्टि के लिए माध्यम दें
तन्त्र की बुद्धिमत्ता को अपनी से बदलें	तन्त्र की स्वाभाविक बुद्धिमत्ता के साथ काम करें
हर बस्तु पर नियंत्रण, किसी पर विश्वास नही	दशाएँ निर्धारित करें, फिर तन्त्र को कार्य करने दें
अल्पकालिक जीत, दीर्घकालिक भंगुरता	अल्पकालिक धर्षण, दीर्घकालिक संगति
'मैं इसे जो चाहूँ वह कैसे करवाऊँ?'	'इस तन्त्र को भली-भाँति कार्य करने के लिए क्या चाहिए?'
विरोधाभास: कम नियन्त्रण → अधिक प्रभाव	

नियन्त्रण बनाम संरक्षण: बल बनाम प्रवाह

अध्याय 17

तनाव एक संकेत के रूप में

"दुःख की अग्नि रूपान्तरण की भी अग्नि है। प्रश्न यह है कि
आप उस ताप का क्या करते हैं।"

— चिन्तन-परम्परा

तनाव सम्भवतः समकालीन जीवन का सर्वाधिक सार्वभौमिक लक्षण है। यह अपने सर्वाधिक सामान्य सांस्कृतिक रूप में गहराई से भ्रान्ति से ग्रस्त भी है। हम तनाव को किसी ऐसी वस्तु के रूप में सोचने की प्रवृत्ति रखते हैं जो हम पर घटित होती है — एक बाह्य दबाव जिसके अधीन हम किए जाते हैं और जिसका हमें या तो प्रबन्धन करना या उसे सहना होता है। तनाव कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो आप पर घटित होती है। यह एक प्रतिक्रिया है जो आपके भीतर घटित होती है, जो इस अन्तराल से उद्दीप्त होती है कि आप क्या आवश्यक मानते हैं और स्वयं को क्या प्रदान करने में समर्थ मानते हैं।

यह भेद कई कारणों से महत्वपूर्ण है। पहला, यह सम्बद्ध गतिकी को व्यक्ति के बाहर के बजाय भीतर स्थित करता है। वही बाह्य परिस्थिति भिन्न व्यक्तियों में नाटकीय रूप से भिन्न तनाव-प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती है — और एक ही व्यक्ति में भी भिन्न समयों पर। जो भिन्न होता है वह बाह्य परिस्थिति नहीं, बल्कि माँग और क्षमता के बीच के अन्तराल का व्यक्ति का बोध है। दूसरा, यह प्रकट करता है कि तनाव, अपने मूल में, सूचनात्मक है। तनाव-प्रतिक्रिया मन-शरीर तन्त्र का यह संवाद करने का ढंग है कि कुछ सरीखण से बाहर है। यह एक संकेत है, निदान नहीं। तीसरा, यह तनाव के प्रति एक ऐसी प्रतिक्रिया की सम्भावना खोलता है जो मात्र प्रबन्धन से परे जाती है: यदि तनाव विसरेखण का एक संकेत है, तो उपयुक्त प्रतिक्रिया है संकेत को ग्रहण करना, यह समझना कि वह क्या इंगित कर रहा है, और उपयुक्त समायोजन करना।

संकेत को पढ़ना

सभी तनाव-संकेत एक ही वस्तु की ओर संकेत नहीं करते। कुछ तनाव-संकेत सच्ची क्षमता और सच्ची आवश्यकता के बीच एक वास्तविक बेमेल को इंगित करते हैं। कुछ बोधित क्षमता और वास्तविक क्षमता के बीच एक बेमेल को इंगित करते हैं — जहाँ व्यक्ति जितना मानता है उससे अधिक समर्थ है, और तनाव एक असटीक आत्म-आकलन से उठ रहा है। कुछ किसी सच्चे अन्तराल को नहीं, बल्कि संस्कारित प्रतिक्रिया-प्रतिरूपों और किसी परिस्थिति की वास्तविक आवश्यकताओं के बीच एक संघर्ष को इंगित करते हैं — उस प्रतिरोध के घर्षण का तनाव। और कुछ संकेत किसी विसंरक्षण को नहीं, बल्कि कुछ ऐसा कठिन कार्य करने की स्वाभाविक चुनौती को इंगित करते हैं जो सचमुच करने योग्य है — विकास का तनाव।

संकेत और कोलाहल

संकेत वह तनाव है जो परिस्थिति की वास्तविक दशाओं के अनुपात में होता है, जिसे विसंरक्षण के पहचाने जा सकने वाले स्रोतों से सार्थक रूप से जोड़ा जा सकता है, और जो एक स्पष्ट सूचनात्मक कार्य करता है। कोलाहल वह तनाव है जो वास्तविक दशाओं के अनुपात से बाहर होता है, जो क्षमता और आवश्यकता के बीच के वास्तविक अन्तरालों के बजाय मुख्यतः चिन्ता के संस्कारित प्रतिरूपों से उत्पन्न होता है। संकेत को कोलाहल से भेद करने का सामर्थ्य स्वयं संरक्षण का उत्पाद है। जो व्यक्ति भीतर से संरक्षित है वह विसंरक्षण के वास्तविक संकेतों को स्पष्ट रूप से सुन सकता है, क्योंकि वे निरन्तर पृष्ठभूमि-कोलाहल से स्पर्धा नहीं कर रहे होते।

"संकेत आपके ध्यान की माँग करता है और सुधार को आमन्त्रित करता है। कोलाहल आपके ध्यान की माँग करता है और कुछ भी उपयोगी प्रदान नहीं करता। इन दोनों के बीच भेद करना सीखना उन सर्वाधिक व्यावहारिक रूप से मूल्यवान् वस्तुओं में से एक है जो कोई मनुष्य कर सकता है।"

तनाव एक संकेत के रूप में	
प्रबन्धन की समस्या नहीं — तन्त्र से एक संवाद	
तनाव कोलाहल के रूप में	तनाव संकेत के रूप में
वास्तविक परिस्थिति के अनुपात से बाहर	जो वस्तुतः घटित हो रहा है उसके अनुपात में
संस्कारित चिन्ता से उत्पन्न	पहचाने जा सकने वाले विसंख्यन की ओर संकेत
अज्ञात के प्रतिरूप वर्तमान में सक्रिय	एक स्पष्ट सूचनात्मक कार्य करता है
किसी वास्तविक कारण से असम्बद्ध	विशिष्ट, कार्यसाध्य सूचार को आमन्त्रित करता है
ध्यान देने पर प्रबल होता है	खेत को सम्मोहित करने पर घटता है
कोई सुचारक कार्य नहीं — शुद्ध कोलाहल	ऋत संवाद कर रहा — सच्चा संकेत
मुख्य प्रश्न: क्या यह तनाव अभी वस्तुतः जो घटित हो रहा है उसके अनुपात में है?	
अध्याय 18 — तनाव एक संकेत के रूप में	

तनाव एक संकेत के रूप में: ऋत का संवाद बनाम संस्कारित कोलाहल

अध्याय 18

अध्याय उन्नीस

असफलता एक प्रतिपुष्टि के रूप में

*"मैं असफल नहीं हुआ। मैंने दस हजार ऐसे तरीके खोज लिए जो काम नहीं करेंगे।
प्रत्येक उस एक तरीके की ओर एक चरण है जो काम करेगा।"*

— थॉमस एडिसन

असफलता मानव अनुभवों में सर्वाधिक सार्वभौमिक रूप से भयावह अनुभवों में से एक है। हम इससे बचने में अपार ऊर्जा लगाते हैं — नियोजन के माध्यम से, सावधानी के माध्यम से, अपेक्षाओं के रणनीतिक प्रबन्धन के माध्यम से ताकि जो हम प्राप्त नहीं करते उसे असफलता के रूप में न गिना जा सके क्योंकि हमने सबसे पहले उसे प्राप्त करने की प्रतिबद्धता ही नहीं की थी। असफलता का यह भय महंगा है, और केवल स्पष्ट ढंगों से ही नहीं। यह सच्ची प्रतिबद्धता को रोकता है, जो एकमात्र दशा है जिसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण उपलब्धि सम्भव होती है। यह ईमानदार अधिगम को रोकता है, क्योंकि असफलता से ईमानदार अधिगम के लिए सबसे पहले यह स्वीकार करना आवश्यक है कि असफलता घटित हुई है।

ऋत के झरोखे से समझी गई असफलता आपके मूल्य, बुद्धि, या सामर्थ्य पर कोई निर्णय नहीं है। यह तन्त्र से प्रतिपुष्टि है। यह उन निवेशों के प्रति ऋत की प्रतिक्रिया है जो इससे सरेखित नहीं थे कि तन्त्र क्या माँगता है। जब कोई रणनीति विफल होती है, तो असफलता उस अन्तराल के विषय में सूचना है जो उस वास्तविकता-प्रतिमान के बीच है जिसने रणनीति को सूचित किया और वास्तविकता की वास्तविक संरचना के बीच। जब कोई सम्बन्ध विफल होता है, तो असफलता उस अन्तराल के विषय में सूचना है जो प्रस्तुत किए गए और सच्चे रूप से आवश्यक के बीच था। जब कोई सर्जनात्मक परियोजना विफल होती है, तो असफलता दृष्टि और शिल्प के बीच के अन्तराल के विषय में सूचना है।

प्रत्येक स्थिति में, असफलता यादृच्छिक नहीं है। यह विशिष्ट है। और उसकी विशिष्टता में सुधार के निर्देश निहित हैं। जिन ऋषियों ने कर्म की संकल्पना को व्यक्त किया, वे ठीक यही

प्रेक्षण कर रहे थे। यह नहीं कि असफलता दण्ड है, बल्कि यह कि वह प्रतिपुष्टि है। कि ब्रह्माण्ड इसके प्रति उदासीन नहीं है कि आप उसमें क्या डालते हैं। कि वह एक शिक्षा की विशिष्टता और बुद्धिमत्ता के साथ प्रत्युत्तर देता है, सदा अधिक संरेखण की ओर संकेत करता हुआ।

सुधार का चक्र

असफलता के साथ पूर्ण धार्मिक सम्बन्ध ऐसा दिखता है: वर्तमान में उपलब्ध सर्वाधिक स्पष्ट बोध से, अपने द्वारा जुटाई जा सकने वाली सर्वाधिक धार्मिक मंशा के साथ कर्म कीजिए। परिणामों का प्रेक्षण कीजिए — चयनात्मक रूप से नहीं, बल्कि ईमानदारी से। जब परिणाम मंशाओं से विचलित हों, तो उस विचलन को निर्णय के बजाय सूचना के रूप में ग्रहण कीजिए। विसंरेखण के स्रोत को पहचानिए — गलत पूर्वधारणा, अपर्याप्त सामर्थ्य, इस बात का गलत पठन कि परिस्थिति क्या माँगती थी। प्रतिमान और दृष्टिकोण को समायोजित कीजिए। पुनः कर्म कीजिए, परिष्कृत समझ के साथ।

इस चक्र के लिए साहस आवश्यक है — अनिश्चितता के बावजूद कर्म करने का साहस, और ईमानदारी से यह स्वीकार करने का साहस कि जब कर्म ने वह उत्पन्न नहीं किया जिसकी आशा थी। इसके लिए विनम्रता आवश्यक है — गलत होने के प्रति सच्चा खुलापन, ऐसे प्रतिमान को परिष्कृत करने की तत्परता जो निश्चित प्रतीत हुआ हो। और इसके लिए वह आन्तरिक स्थिरता आवश्यक है जो इस चक्र को जीवन भर बार-बार पार करने देती है, बिना या तो रक्षात्मकता में कठोर हुए या निष्क्रियता में नरम पड़े।

"असफलता सफलता का विपरीत नहीं है। यह उसकी ओर का मार्ग है — यदि आपमें वह जो कह रही है उसे ग्रहण करने की स्पष्टता और तदनुसार समायोजित करने का साहस है।"

भाग चार

सेतुः श्वास, सजगता और बोध

अध्याय बीस

श्वास प्रवेश-द्वार के रूप में

"प्राणायाम प्राण, अथवा श्वास, को रोकने का अभ्यास है। लक्ष्य है श्वास को नियन्त्रित करके मन को नियन्त्रित करना, क्योंकि श्वास आन्तरिक अवस्था की बाह्य अभिव्यक्ति है।"

— हठयोग प्रदीपिका

अब हम पुनः श्वास की ओर लौटते हैं, किन्तु उस गहराई से भिन्न गहराई के साथ जो हम पहले खण्ड में उस तक लाए थे। अध्याय पाँच में, हमने श्वास का ऋत की एक जैविक अभिव्यक्ति के रूप में अन्वेषण किया था — शरीर के बुद्धिमत्तापूर्ण स्वयं-नियमन की अभिव्यक्ति के रूप में उसका स्वचालित कार्य। यहाँ, हम श्वास का एक अभ्यास के रूप में अन्वेषण करते हैं — ऋत के उस सर्वाधिक सुलभ आयाम के साथ संलग्नता का एक सोद्देश्य रूप जो आपके पास है। अभ्यास के रूप में श्वास शब्द के संकीर्ण अर्थ में कोई तकनीक नहीं है। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे आप निष्पादित करते हैं। यह कोई ऐसी वस्तु है जिसमें आप सहभागी होते हैं। और उस सहभागिता की गुणवत्ता — वह गुणवत्ता जो आप अपने ही श्वसन के प्रेक्षण और सौम्य मार्गदर्शन में लाते हैं — यह निर्धारित करती है कि उसके माध्यम से क्या उपलब्ध होता है।

समस्त श्वास-केन्द्रित चिन्तन-अभ्यास की अनिवार्य शिक्षा सरल है: आपकी श्वास आपकी अवस्था को प्रतिबिम्बित करती है। और अपनी श्वास पर ध्यान देकर, आप अपनी अवस्था को प्रभावित कर सकते हैं। यह रहस्यमय नहीं है। यह उस शारीरिक क्रियाविधि का प्रत्यक्ष परिणाम है जिसकी हमने पहले चर्चा की थी: श्वास-प्रतिरूपों और स्वायत्त तंत्रिका-तन्त्र के कार्य के बीच का सम्बन्ध। किन्तु क्रियाविधि को जानना अभ्यास का स्थान नहीं ले लेता। क्रियाविधि यह समझाती है कि अभ्यास क्यों कार्य करता है। यह स्वयं परिणाम उत्पन्न नहीं करती। परिणाम वस्तुतः अभ्यास करने से आता है।

श्वास-अभ्यास के स्तर

पहला स्तर है प्रेक्षण। श्वास को जैसी वह है वैसा ही देखना, उसे परिवर्तित किए बिना। यह अकेला ही — यदि कुछ मिनटों तक भी बनाए रखा जाए — एक परिवर्तन उत्पन्न करने की प्रवृत्ति रखता है। श्वास धीमी होने लगती है। मन शान्त होने लगता है। शरीर अपने रोके हुए तनाव का कुछ अंश छोड़ने लगता है। यह इसलिए नहीं होता कि आपने इसमें से कुछ बलपूर्वक किया है, बल्कि इसलिए कि ध्यान का स्वयं एक नियामक प्रभाव होता है। किसी वस्तु को ध्यानपूर्वक प्रेक्षित करने की क्रिया उसे अधिक संगति में लाने की प्रवृत्ति रखती है। यह प्रक्रिया, किसी अर्थ में, 'जानती' है कि उसका प्रेक्षण किया जा रहा है, और तदनुसार स्वयं को संगठित कर लेती है। यह ऋत की स्वयं-संशोधक प्रवृत्ति है जो सजगता के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करती है।

दूसरा स्तर है सौम्य मार्गदर्शन। एक बार प्रेक्षण स्थापित हो जाने पर, श्वास को सौम्यता से अधिक गहराई और लय की ओर निर्देशित किया जा सकता है — श्वास भीतर लेने को थोड़ा लम्बा करना, श्वास छोड़ने को थोड़ा विस्तृत करना, एक ऐसी स्वाभाविक लय पाना जो प्रयास के बजाय सुगमता जैसी अनुभव हो। मुख्य शब्द है सौम्य। श्वास का बलपूर्वक नियन्त्रण तनाव और चिन्ता उत्पन्न करता है। सौम्य मार्गदर्शन शिथिल संलग्नता का एक गुण उत्पन्न करता है जो, समय के साथ, स्वाभाविक और यहाँ तक कि आनन्ददायक हो जाता है।

तीसरा स्तर है एकीकरण। श्वास-सजगता केवल समर्पित अभ्यास-अवधियों में ही नहीं, बल्कि दिन के साधारण क्षणों में भी प्रकट होने लगती है — किसी कठिन वार्तालाप से पूर्व श्वास की ओर एक संक्षिप्त वापसी, तनाव बढ़ने पर कुछ गहरी श्वासें, वर्तमान अवस्था के त्वरित आकलन के रूप में श्वास के साथ जाँच की आदत। यह एकीकरण ही वह समय है जब श्वास-अभ्यास सच्चे रूप से रूपान्तरकारी हो जाता है, क्योंकि यह अब जीवन से पृथक् नहीं बल्कि उसमें बुना हुआ होता है।

"श्वास वह एकमात्र स्थान है जहाँ स्वायत्त और ऐच्छिक मिलते हैं। यह उस अवकाश तक आपकी सर्वाधिक तत्काल पहुँच है जहाँ ऋत आपमें कार्य करता है। इसका उपयोग कीजिए — कभी-कभार नहीं, अन्तिम उपाय की तकनीक के रूप में नहीं, बल्कि उस सतत सूत्र के रूप में जो आपके सचेत जीवन को गहनतर व्यवस्था से जोड़ता है।"

अध्याय इक्कीस

सजगता — सुधारक शक्ति

"सजगता परिवर्तन का सबसे बड़ा कारक है। जब आप सजग होते हैं, तो आप पहले से ही उससे परे होते हैं जिसके प्रति आप सजग हैं।"

— एकहार्ट टोल

सजगता चिन्तन नहीं है। यह भेद उससे अधिक महत्वपूर्ण है जितना यह आरम्भ में प्रतीत हो सकता है, और इसे न पकड़ पाना इस विषय में बहुत-सी उलझन के लिए उत्तरदायी है कि चिन्तन-अभ्यास वस्तुतः क्या सम्मिलित करता है और क्या उपलब्ध कराता है। चिन्तन एक प्रक्रिया है। इसमें मानसिक सामग्री का सृजन, संचालन और मूल्यांकन सम्मिलित है — संकल्पनाएँ, स्मृतियाँ, योजनाएँ, तर्क, बिम्ब, आख्याना। चिन्तन असाधारण रूप से उपयोगी है। यह भाषा, विज्ञान, कला, रणनीति, और प्रायः हर विशिष्ट मानवीय उपलब्धि की नींव है। किन्तु चिन्तन यह प्रकट नहीं करता कि वस्तुतः क्या घटित हो रहा है। यह प्रकट करता है कि चिन्तनशील मन इस विषय में क्या गढ़ता है कि क्या घटित हो रहा है।

सजगता, यहाँ अभिप्रेत अर्थ में, चिन्तन से पूर्ववर्ती और भिन्न है। यह लक्षित करने का सामर्थ्य है — जो उपस्थित है, विचारों सहित, उसका बोध करने का, उनमें या उनके द्वारा पूर्णतः लीन हुए बिना। यह यह जानने का सामर्थ्य है कि आप सोच रहे हैं, बजाय केवल सोचने के। यह जानने का कि आप कोई भाव अनुभव कर रहे हैं, बजाय पूर्णतः वह भाव होने के। किसी प्रतिक्रिया को बनते हुए प्रेक्षित करने का, बजाय केवल प्रतिक्रिया करने के। यह सामर्थ्य — अधिसंज्ञानात्मक या साक्षी-सामर्थ्य — वह है जो सच्चे अधिगम को सम्भव बनाता है। इसके बिना, आप अपने ही प्रतिरूप नहीं देख सकते। आप संस्कार को संस्कार के रूप में नहीं पहचान सकते।

सजगता कैसे विकसित होती है

सजगता एक संकाय है जो अभ्यास से विकसित होती है। सरलतम अभ्यास है शान्त बैठना, और जो मन में उठता है उसका प्रेक्षण करना, उसे बदलने, ठीक करने या मूल्यांकित करने का प्रयास किए बिना। बस विचार को उठते देखना, भाव को प्रकट होते देखना, संवेदना को उभरते और बीतते देखना। सामग्री में संलग्न हुए बिना — विचार के पीछे उसके आख्यान-पथों पर चले बिना — बल्कि बस यह लक्षित करते हुए कि विचार घटित हो रहा है। यह जितना सुनने में लगता है उससे अधिक कठिन है। मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति अपनी सामग्री में लीन रहना है। विचार को एक प्रेक्षक के रूप में देखना, बजाय पूर्णतः वह विचार होने के, एक विशेष प्रकार के प्रयास की माँग करता है जिसे आरम्भ में लम्बे समय तक बनाए रखना कठिन है।

किन्तु यह विकसित होती है। किसी भी सामर्थ्य की भाँति जिसका नियमित अभ्यास किया जाता है, सजगता अभ्यास से सुदृढ़ होती है। समय के साथ — सुसंगत अभ्यास के सप्ताहों, महीनों, वर्षों में — साक्षी-सामर्थ्य का गुण अधिक स्थिर हो जाता है, उन अधिक-आवेशित परिस्थितियों में भी अधिक उपलब्ध जहाँ इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, अनुभव के एक पृष्ठभूमि-गुण के रूप में अधिक स्वाभाविक रूप से उपस्थित, बजाय किसी ऐसी वस्तु के जिसे सोद्देश्य रूप से विकसित करना पड़े। और इसके साथ, धार्मिक प्रत्युत्तर का सामर्थ्य अधिकाधिक क्षणों में उपलब्ध हो जाता है।

इस बिन्दु पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है: क्या यह साक्षी-सजगता जीवन से विरक्ति की ओर ले जाती है? साधकों का अनुभव, परम्पराओं और व्यक्तियों में सुसंगत रूप से, इसके विपरीत सुझाता है। सजगता संलग्नता को घटाने के बजाय गहरा करती है। जो व्यक्ति अधिक पूर्णता से सजग है वह सामान्यतः अधिक पूर्णता से उपस्थित भी होता है — जो वह अनुभव करता है उसे उससे अभिभूत हुए बिना अनुभव करने में अधिक समर्थ, दूसरे जो कह रहे हैं उसे अपनी ही रक्षात्मक प्रतिक्रियाओं की विकृति के बिना सुनने में अधिक समर्थ।

"सजगता जीवन से दूरी नहीं है। यह जीवन में पूर्णता से रहने का सामर्थ्य है, उसकी पूर्ण दया पर हुए बिना। यही वह है जो सच्ची सहभागिता — और सच्चा धार्मिक कर्म — संसार में जैसा वह वस्तुतः है वैसे ही सम्भव बनाता है।"

बोध — वास्तविक रणक्षेत्र

*"वह नेत्र जिससे मैं ईश्वर को देखता हूँ वही नेत्र है जिससे ईश्वर मुझे देखता है; मेरा नेत्र
और ईश्वर का नेत्र एक ही नेत्र हैं, एक दर्शन, एक ज्ञान, एक प्रेम।"*

— माइस्टर एकहार्ट

हम अब उस आन्तरिक कार्य के सर्वाधिक मूलभूत स्तर पर पहुँच गए हैं जिसकी ऋतु के साथ सरेखण माँग करता है। जो कुछ हमने चर्चित किया — श्वास, सजगता, संस्कार, असफलता का सुधारक चक्र — सब यहाँ अभिसरित होता है, स्वयं बोध के स्तर पर। बोध कर्म से पूर्ववर्ती है। कर्म करने से पूर्व, आपको बोध करना होता है। आपके बोध की गुणवत्ता आपके कर्म की गुणवत्ता को किसी भी अन्य चर की अपेक्षा अधिक सुसंगति और अधिक गहराई से निर्धारित करती है। रणनीति, बुद्धि, अनुभव, मूल्य, मंशाएँ — ये सब महत्त्व रखते हैं, और ये सब उस बोध की गुणवत्ता से प्रभावी या अप्रभावी हो जाते हैं जिसके माध्यम से इन्हें प्रयुक्त किया जाता है।

बोध किस प्रकार विकृत होता है

चयनात्मक ध्यान सर्वाधिक मूलभूत विकृतकारक है। मन हर वस्तु को समान रूप से संसाधित नहीं करता। यह चयनात्मक रूप से उस सूचना को प्रवर्धित करता है जो विद्यमान विश्वासों, अपेक्षाओं और भावनात्मक निवेशों के अनुरूप है, और चयनात्मक रूप से उस सूचना को दबा देता है जो उनके अनुरूप है। यह कोई सचेत प्रक्रिया नहीं है — यह सोद्देश्य चयन के स्तर के नीचे कार्य करती है। किन्तु इसका अर्थ है कि जो आप 'देखते' हैं वह सदा उसका एक छना हुआ संस्करण होता है जो वस्तुतः उपस्थित है।

भावनात्मक रंजन दूसरा प्रमुख विकृतकारक है। भावनात्मक अवस्थाएँ शब्दशः बदल देती हैं कि हम क्या बोध करते हैं — कौन-सी संवेदी सूचना सचेत बोध तक पहुँचती है, उसकी

व्याख्या कैसे की जाती है, वह कौन-से सहचर्य और स्मृतियाँ उद्दीप्त करती है। भय की अवस्था में व्यक्ति संकट देखता है। अवमानना की अवस्था में व्यक्ति असफलता और अपर्याप्तता देखता है। सच्चे खुलेपन की अवस्था में व्यक्ति अवसर और जटिलता देखता है। ये केवल एक ही बोध के प्रति भिन्न दृष्टिकोण नहीं हैं। ये वस्तुतः भिन्न बोध हैं, इस स्तर पर कि कौन-सी सूचना संसाधित और बल दी जाती है।

अतीत-प्रक्षेपण तीसरा विकृतकारक है। हम निरन्तर वर्तमान का अनुभव अतीत के साँचे के माध्यम से करते हैं — जो अभी घटित हो रहा है उसकी व्याख्या उसके ढाँचे के माध्यम से करते हुए जो पहले घटित हुआ। यह तब उपयोगी है जब परिस्थितियाँ सच्चे रूप से विगत परिस्थितियों से मिलती हों। यह तब गहराई से समस्याजनक है जब यह हमें वर्तमान क्षण के विषय में उससे चूका देता है जो वस्तुतः नवीन और भिन्न है। एक तीव्रता से बदलते संसार में, यह पूर्वधारणा कि अतीत के साँचे वर्तमान परिस्थितियों का सटीक वर्णन करते हैं, बढ़ती हुई आवृत्ति के साथ गलत होती है।

स्पष्टतर बोध क्या उत्पन्न करता है

जब ये विकृतियाँ घटती हैं — श्वास, सजगता, और संस्कार के ईमानदार परीक्षण के अभ्यासों के माध्यम से — तो बोध की जो गुणवत्ता उपलब्ध होती है वह सच्चे रूप से भिन्न होती है। प्रायः जीवन के हर क्षेत्र में, उत्कृष्ट और निकृष्ट परिणामों के बीच के अन्तर को मुख्यतः निर्णय-बिन्दुओं पर बोध की गुणवत्ता तक खोजा जा सकता है। जो नेता यह देखता है कि उसके संगठन में वस्तुतः क्या घटित हो रहा है, वह बेहतर रणनीतिक निर्णय लेता है। जो माता-पिता यह देखते हैं कि उनके बच्चे को वस्तुतः किसकी आवश्यकता है, वे अधिक प्रत्यास्थ बच्चों का पालन करते हैं। जो व्यक्ति अपने ही प्रतिरूपों को स्पष्ट रूप से देखता है उसके पास कहीं अधिक सच्ची स्वतन्त्रता होती है।

"बोध की स्पष्टता दार्शनिकों और ध्यानियों के लिए कोई विलासिता नहीं है। यह एक जटिल संसार में मार्ग खोजते मनुष्य के लिए उपलब्ध सर्वाधिक व्यावहारिक रूप से उपयोगी सामर्थ्य है। और यह ठीक उन्हीं अभ्यासों से विकसित होती है जिनका यह पुस्तक वर्णन करती आई है।"

अध्याय तेईस

प्रतिक्रिया से प्रत्युत्तर तक

"उद्दीपन और प्रतिक्रिया के बीच एक अवकाश है। उसी अवकाश में वह समस्त स्वतन्त्रता निहित है जो आपको कभी प्राप्त होगी।"

— विक्टर फ्रैंकल से अनुकूलित

अब हमने सेतु के समस्त घटकों का अन्वेषण कर लिया है: श्वास, सजगता, संस्कार की समझ, स्पष्टतर बोध का गुण। इस अध्याय में, हम उन्हें एक एकल, व्यावहारिक, जिए गए यथार्थ में एक साथ लाते हैं: प्रतिक्रिया से प्रत्युत्तर की ओर परिवर्तन। यह परिवर्तन धार्मिक कर्म का व्यावहारिक अर्थ है। प्रतिक्रिया और प्रत्युत्तर अपने प्रकट रूप में भिन्न नहीं हैं। बाहर से, वे एक समान दिख सकते हैं। दोनों में किसी परिस्थिति के पश्चात् एक कर्म सम्मिलित है। अन्तर उनके बीच के अन्तराल की गुणवत्ता में है, और इसमें कि उस अन्तराल में क्या घटित होता है।

प्रतिक्रिया में, कोई कार्यात्मक अन्तराल नहीं होता। उद्दीपन प्रतिक्रिया को स्वचालित रूप से उद्दीप्त कर देता है, आदत और भावनात्मक प्रतिरूप के संस्कारित पथों के माध्यम से। यह प्रक्रिया तेज़, दक्ष, और अधिकांशतः अचेतन होती है। यह उस सोद्देश्य, सन्दर्भ-संवेदी बुद्धिमत्ता को छोड़ देती है जिसकी धार्मिक कर्म को आवश्यकता होती है। उन परिस्थितियों में जो सर्वाधिक महत्त्व रखती हैं — वे जटिल, उच्च-दाँव वाली, सम्बन्ध-भरी परिस्थितियाँ जो उसका अधिकांश गठन करती हैं जिसकी हम परवाह करते हैं — प्रतिक्रिया व्यवस्थित रूप से अविश्वसनीय है। यह बहुत तेज़ है, विगत संस्कार से बहुत अधिक छनी हुई, विशिष्ट वर्तमान परिस्थिति की वास्तविक आवश्यकताओं से बहुत अधिक असम्बद्ध।

इसके विपरीत, प्रत्युत्तर में एक कार्यात्मक अन्तराल सम्मिलित होता है। आवश्यक नहीं कि वह कोई लम्बा अन्तराल हो — प्रतिक्रिया और प्रत्युत्तर के बीच का चयन सेकण्ड के अंश में हो सकता है। जो महत्त्व रखता है वह उसकी गुणवत्ता है जो उस सेकण्ड के अंश में घटित होता है। प्रत्युत्तर के अन्तराल में, संस्कारित प्रतिरूप का स्वचालित गुण पहचाना जाता है।

ध्यान उद्दीप्त भावनात्मक प्रतिरूप के बजाय वास्तविक परिस्थिति की ओर पुनर्निर्देशित होता है। उस स्पष्टतर बोध की कुछ मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिसे सजगता सम्भव बनाती है। और उस स्पष्टतर बोध से, एक ऐसा कर्म उठता है जो इससे अधिक अंशशोधित होता है कि परिस्थिति वस्तुतः क्या माँगती है।

अन्तराल का निर्माण

सर्वाधिक प्रभावी तकनीक सबसे सरल है: किसी भी ऐसी वस्तु के प्रति प्रत्युत्तर देने से पूर्व जो एक प्रबल भावनात्मक प्रतिक्रिया उद्दीप्त करती है, एक सचेत श्वास लीजिए। विलम्ब के लिए विलम्ब करने को नहीं। उस एक श्वास भर के लिए भी, सजगता के उस गुण की ओर लौटने को जिसे सचेत श्वसन सम्भव बनाता है। यह प्रायः प्रतिक्रिया से प्रत्युत्तर की ओर मुड़ने के लिए पर्याप्त होता है, क्योंकि श्वास संस्कारित प्रतिरूप के स्वचालित संवेग को तोड़ देती है और अन्तराल रच देती है।

दूसरी तकनीक है नाम देना। जब आप किसी प्रबल भाव को उठते लक्षित करें, तो उसे नाम दीजिए — भीतर ही भीतर, स्वयं को। 'मैं लक्षित करता हूँ कि मैं रक्षात्मक अनुभव कर रहा हूँ।' 'क्रोध उठ रहा है।' नाम देने की क्रिया स्वयं और भाव के बीच एक हल्का पृथक्करण रच देती है। अब आप रक्षात्मकता की पकड़ में नहीं हैं — आप रक्षात्मकता का प्रेक्षण कर रहे हैं। अन्तराल प्रकट हो जाता है। तीसरी तकनीक है प्रश्न: यह परिस्थिति वस्तुतः क्या माँगती है? यह प्रश्न, सच्चे मन से पूछा गया, उपलब्ध सर्वाधिक शक्तिशाली धार्मिक उपकरणों में से एक है। यह ध्यान को आन्तरिक प्रतिक्रिया से बाह्य वास्तविकता की ओर पुनर्निर्देशित करता है, जो ठीक विसरेखण से संरेखण की ओर गति है।

"प्रश्न 'यह परिस्थिति वस्तुतः क्या माँगती है?' एक धार्मिक प्रश्न है। हर बार जब आप इसे सच्चे मन से पूछते हैं, तो आप प्रतिक्रियाशीलता के स्थान पर संरेखण चुन रहे होते हैं। समय के साथ, वह चयन एक आदत बन जाता है — और वह आदत सब कुछ पुनः गढ़ देती है।"

भाग पाँच

**सजीव धर्म: दैनिक जीवन
की बुनावट में संरेखण**

अध्याय चौबीस

साधारण जीवन का धर्म

"आप कुछ भी जैसे करते हैं, वैसे ही आप सब कुछ करते हैं।"

— जैन उक्ति

उन विचारों के साथ संलग्न होने पर जिनकी गहराई और विस्तार का हम अन्वेषण करते आ रहे हैं, एक प्रलोभन होता है यह निष्कर्ष निकालने का कि वे मुख्यतः बड़े क्षणों पर लागू होते हैं — महत्वपूर्ण निर्णय, संकट-बिन्दु, मार्ग के मोड़। इस प्रलोभन का दृढ़ता से प्रतिरोध किया जाना चाहिए। ऋत और धर्म की गहनतम शिक्षा नाटकीय परिस्थितियों के लिए आरक्षित नहीं है। यह सर्वाधिक सुसंगति से, सर्वाधिक प्रकटकारी रूप से, और सर्वाधिक परिणामकारी रूप से दैनिक जीवन की साधारण बुनावट में अभिव्यक्त होती है। आप कैसे जागते हैं। कैसे खाते हैं। भौतिक संसार में कैसे गति करते हैं। कार्यदिवस कैसे आरम्भ करते हैं। उस व्यक्ति से कैसे बोलते हैं जो आपको कॉफ़ी परोसता है। कैसे सुनते हैं जब आप बोलना अधिक चाहेंगे। कैसे विश्राम करते हैं जब आप धकेलते रहना अधिक चाहेंगे।

ये दार्शनिक महत्त्व से फुलाए गए गौण विषय नहीं हैं। ये एक मानव जीवन का वास्तविक सार हैं। और ये, सम्मिलित रूप से, उस जीवन की गुणवत्ता और दिशा के कहीं अधिक निर्धारक हैं, बजाय उन कभी-कभार के बड़े निर्णयों के जो समस्त सोद्देश्य ध्यान पाते हैं। जो व्यक्ति प्रति वर्ष एक उत्कृष्ट रणनीतिक निर्णय लेता है किन्तु दीर्घकालिक विकर्षण, खण्डित ध्यान, और शारीरिक विसंरक्षण के साथ जीता है, वह उस स्पष्टता को नहीं टिकाएगा जिसकी उत्कृष्ट रणनीतिक निर्णयों को आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति प्रत्येक दिन के साधारण क्षणों में सच्ची उपस्थिति लाता है, वह ठीक उसी बोध और प्रत्युत्तर के गुण को विकसित कर रहा है जिसकी असाधारण क्षणों को आवश्यकता होती है।

प्रातःकालः पहला धार्मिक चयन

प्रत्येक दिन एक ऐसे चयन से आरम्भ होता है जिसे अधिकांश लोग चयन के रूप में नहीं पहचानते। जागने का क्षण एक संक्रमण का क्षण है — निद्रा की पुनर्स्थापक अचेतनता से दिन की संलग्न चेतना की ओर। यह संक्रमण कैसे किया जाता है, यह एक ऐसा गुण निर्धारित करता है जो उसके पश्चात् के घंटों में बने रहने की प्रवृत्ति रखता है। समकालीन जीवन में अधिकांश लोग यह संक्रमण बुरी तरह करते हैं। शरीर के पूर्णतः जागने से पूर्व ही फ़ोन देखा जाता है। किसी आन्तरिक केन्द्रीकरण के घटित होने से पूर्व ही दिन की संचित माँगों में संलग्न हो जाते हैं। मन, जो अभी निद्रा के संसाधन से पूर्णतः संगठित नहीं हुआ है, तत्काल सूचना, उत्तेजना, और इस चिन्ता से बाढ़ग्रस्त हो जाता है कि अभी क्या किया जाना शेष है।

यह विसरेखण का एक रूप है। शरीर और मन की जागने की स्वाभाविक लयें होती हैं — सजगता में एक क्रमिक वृद्धि जो, जब उसका सम्मान किया जाता है, तो उसके पश्चात् के दिन की गुणवत्ता का संपोषण करती है। धार्मिक विकल्प में केवल यह पहचान सम्मिलित है कि दिन के पहले पन्द्रह से तीस मिनट रक्षा के योग्य हैं — तत्काल डिजिटल निवेश से रक्षा, श्वास और शरीर के साथ किसी प्रकार की सचेत संलग्नता के लिए रक्षा, उस ध्यान-गुण के लिए रक्षा जिसका प्रातःकालीन स्थिरता संपोषण कर सकती है।

भोजनः जैविक ऋत के साथ सरेखण

भोजन व्यक्ति और ऋत के जैविक आयामों के बीच की सर्वाधिक प्रत्यक्ष और सुसंगत अन्योन्यक्रियाओं में से एक है। भोजन के साथ आधुनिक सम्बन्ध अत्यधिक विकृत है। खाद्य उद्योग तृप्ति-संकेतों को लाँघने, मस्तिष्क के स्वाभाविक पुरस्कार-परिपथों का दोहन करने, ऐसे उपभोग-प्रतिरूप रचने के लिए अनुकूलित है जो जैविक के बजाय वाणिज्यिक हितों की सेवा करते हैं। सजगता के साथ खाने के लिए किसी विशेष आहार-दर्शन का अनुसरण आवश्यक नहीं है। इसके लिए, अधिक मूलभूत रूप से, खाने की क्रिया के दौरान उपस्थित रहना आवश्यक है। स्वाद, बुनावट, तृप्ति को लक्षित करना। ऐसी गति से खाना जो शरीर के अपने संकेतों को ग्रहण किए जाने दे।

विश्रामः प्रायः उल्लंघित धर्म

उन समस्त जैविक धर्मों में से जिनका समकालीन जीवन सर्वाधिक सुसंगति से उल्लंघन करता है, विश्राम सर्वाधिक उपेक्षित है। हम एक ऐसी संस्कृति में जीते हैं जो विश्राम को किसी

ऐसी वस्तु के रूप में ग्रहण करती है जो कार्य पूरा होने पर घटित होती है — आवश्यकता के बजाय पुरस्कार या रियायत के रूप में। पुनर्प्राप्ति कार्य की अनुपस्थिति नहीं है। यह वह दशा है जिसके अन्तर्गत कार्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रूप घटित होते हैं। स्मृति का सुदृढ़ीकरण, भावनात्मक संसाधन, कोशिकीय मरम्मत, हार्मोनी सन्तुलन की पुनर्स्थापना — ये विश्राम के दौरान घटित होते हैं, सक्रियता के दौरान नहीं। इन्हें महत्त्वपूर्ण मूल्य के बिना अनिश्चित काल तक स्थगित नहीं किया जा सकता।

"विश्राम उत्पादकता का पुरस्कार नहीं है। यह उसकी पूर्वशर्त है। जो शरीर विश्रान्त नहीं है वह स्पष्ट नहीं सोच सकता। जो मन विश्रान्त नहीं है वह स्पष्ट नहीं देख सकता। और जो व्यक्ति स्पष्ट नहीं देख सकता वह धार्मिक रूप से कर्म नहीं कर सकता। यह कोई जीवनशैली की रुचि नहीं है। यह जैविक ऋत है जो बोल रहा है।"

धार्मिक अभिव्यक्ति के रूप में कार्य

"आप ब्रह्माण्ड के भीतर नहीं हैं, आप ही ब्रह्माण्ड हैं, उसका एक अन्तर्भूत अंग।"

— एकहार्ट टोल

कार्य उन प्राथमिक क्षेत्रों में से एक है जिनमें एक समकालीन मनुष्य का सरेखण या विसरेखण सर्वाधिक स्पष्टता और सर्वाधिक परिणाम के साथ स्वयं को अभिव्यक्त करता है। हम अपने जाग्रत घंटों का एक महत्वपूर्ण अनुपात उन गतिविधियों में संलग्न व्यतीत करते हैं जिन्हें हम कार्य के रूप में वर्गीकृत करते हैं। उस संलग्नता की गुणवत्ता — चाहे वह धार्मिक हो या अधार्मिक, सरेखित या विसरेखित — न केवल व्यावसायिक परिणामों को बल्कि दैनिक जीवन की बुनावट, व्यक्तिगत सम्बन्धों की गुणवत्ता, शारीरिक स्वास्थ्य की प्रत्यास्थता, और अर्थ तथा प्रयोजन से जुड़ाव की गहराई को भी आकार देती है।

धार्मिक कार्य कैसा दिखता है

धार्मिक कार्य आवश्यक रूप से वह कार्य नहीं है जिससे आप प्रेम करते हैं, या जो आपकी प्रतिभाओं और रुचियों से पूर्णतः मेल खाता है, या जिसे समाज महत्वपूर्ण मानकर सराहता है। धार्मिक कार्य वह कार्य है जो उन गुणों के साथ किया जाता है जिन्हें सरेखण उत्पन्न करता है: उपस्थिति, अखण्डता, उपयुक्त प्रयास, कठिनाई के साथ ईमानदार संलग्नता, और उन लोगों तथा तन्त्रों के प्रति देखभाल जिन्हें कार्य प्रभावित करता है। ये गुण प्रायः किसी भी कार्य-सन्दर्भ में उपलब्ध हैं। कोई व्यक्ति किसी अस्पताल के वार्ड की सफ़ाई करता हुआ, उसे देखभाल और सजगता के साथ करता हुआ, कार्य पर पूर्णता से ध्यान देता हुआ, वार्ड के लोगों के स्वास्थ्य के लिए जो वह करता है उसके महत्त्व को पहचानता हुआ — यह धार्मिक कार्य है। कोई शल्य-चिकित्सक तकनीकी रूप से उत्कृष्ट शल्य-क्रिया करता हुआ जबकि रोगी के प्रति भावनात्मक रूप से अनुपलब्ध, सच्चे उपचार के बजाय मापदण्डों के लिए अनुकूलन

करता हुआ — यह अपने प्रकट महत्त्व के बावजूद कम स्पष्ट रूप से धार्मिक कार्य है। कार्य का धर्म उसमें लाई गई उपस्थिति और मंशा की गुणवत्ता में है, भूमिका की प्रतिष्ठा में नहीं।

संगठनों में धार्मिक नेतृत्व

नेतृत्व-भूमिकाओं में स्थित लोगों के लिए, कार्य के धार्मिक आयाम अधिक जटिल और अधिक परिणामकारी हो जाते हैं। धार्मिक नेतृत्व स्वयं नेता के संरेखण से आरम्भ होता है — उस आन्तरिक स्पष्टता के गुण से जो संगठनात्मक वास्तविकता का सच्चा बोध सम्भव बनाता है, बजाय उसके एक अहं-रंजित संस्करण के। जो नेता भीतर से विसंरेखित है — मुख्यतः भय, अहं, प्रतिष्ठा-चिन्ता, या नियन्त्रण की बाध्यकारी आवश्यकता से संचालित — वह निरन्तर ऐसे निर्णय लेगा जो संगठन की सच्ची आवश्यकताओं के बजाय उन आन्तरिक विकृतियों की सेवा करते हैं। अतः धार्मिक नेतृत्व में आन्तरिक संरेखण का चल रहा कार्य एक व्यावसायिक दायित्व के रूप में सम्मिलित है, कोई परिधीय विलासिता नहीं।

कार्य की नैतिकता

धार्मिक दृष्टिकोण से कार्य का प्राथमिक नैतिक आयाम इस बात में सत्यनिष्ठा का गुण है कि आप कार्य के साथ, सहकर्मियों के साथ, ग्राहकों के साथ, उन तन्त्रों के साथ जिनका आप अंग हैं, किस प्रकार संलग्न होते हैं। जो वस्तुतः स्थिति है वह कहना, बजाय इसके जो अच्छा सुनाई देता है। जो आप प्रतिबद्ध होते हैं उसे पूरा करना या प्रतिबद्धता को स्पष्ट रूप से बदलना। जो आप नहीं जानते उसे स्वीकार करना, बजाय निश्चितता का स्वाँग करने के। सत्यनिष्ठा की ये छोटी-छोटी क्रियाएँ संगठनात्मक तन्त्र के ऋतु को टिकाती हैं — वह विश्वास-आधारित संगति जो जटिल समन्वय को घटित होने देती है।

"कार्य की नैतिकता मुख्यतः स्पष्ट रूप से गलत से बचने के विषय में नहीं है। यह उन असंख्य साधारण क्षणों में सत्यनिष्ठा की सुसंगत गुणवत्ता के विषय में है जहाँ सत्य और सुख विलग होते हैं। उनमें से प्रत्येक क्षण एक धार्मिक चयन है।"

सम्बन्ध और सत्य का धर्म

"दो व्यक्तियों का मिलन दो रासायनिक पदार्थों के सम्पर्क जैसा है: यदि कोई अभिक्रिया होती है, तो दोनों रूपान्तरित हो जाते हैं।"

— कार्ल युंग

सम्बन्ध सम्भवतः वह सर्वाधिक जटिल क्षेत्र हैं जिसमें धर्म एक साथ सर्वाधिक आवश्यक और सर्वाधिक कठिन है टिकाना। जटिलता सच्चे सम्बन्ध के एक मूलभूत लक्षण से उठती है: इसके लिए आवश्यक है कि आप स्वयं को — अपने वास्तविक बोध, अपने सच्चे प्रत्युत्तर, अपनी वास्तविक आवश्यकताओं और मूल्यों को — किसी ऐसे अन्य व्यक्ति के सम्पर्क में लाएँ जो वही कर रहा है। और इसके लिए आवश्यक है कि यह सम्पर्क तब भी बना रहे जब यह घर्षण, भेद, कठिनाई, और उन वस्तुओं के साथ ईमानदार संलग्नता की आवश्यकता उत्पन्न करे जिनसे बचना सरल होता।

अधिकांश सम्बन्ध-कठिनाइयाँ लोगों की सच्ची असंगति से नहीं, बल्कि इस सम्पर्क के सुसंगत परिहार से उठती हैं — सच्चे साक्षात्कार के स्थान पर अभिनय, प्रक्षेपण और पूर्वधारणा के प्रतिस्थापन से। हम अपने उन संस्करणों का अभिनय करते हैं जिन्हें हम मानते हैं कि अधिक स्वीकार्य होंगे। हम दूसरों पर ऐसे भाव और मंशाएँ प्रक्षेपित करते हैं जो वस्तुतः हमारी अपनी अपरिचित सामग्री हैं। हम इस विषय में पूर्वधारणाएँ बनाते हैं कि दूसरा व्यक्ति क्या सोचता, अनुभव करता, या चाहता है, जिन्हें हमने वस्तुतः कभी सत्यापित नहीं किया। और हम दिन-प्रतिदिन अपने सामने के वास्तविक लोगों के बजाय अपने ही प्रक्षेपणों और अभिनयों के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं।

धार्मिक अभ्यास के रूप में श्रवण

किसी भी सम्बन्ध में उपलब्ध सर्वाधिक सुसंगति से धार्मिक क्रियाओं में से एक है सच्चा श्रवण। सच्चा श्रवण उससे भिन्न है जो अधिकांश वार्तालाप सम्मिलित करते हैं, अर्थात् एक प्रकार का समानान्तर संसाधन जिसमें प्रत्येक व्यक्ति मुख्यतः अपने ही चिन्तन पर केन्द्रित होता है, दूसरे के कथन में एक अन्तराल की प्रतीक्षा करता हुआ ताकि अपनी सामग्री डाल सके। सच्चे श्रवण में अपने ही आन्तरिक आख्यान का अस्थायी निलम्बन सम्मिलित है ताकि वस्तुतः उसे ग्रहण किया जा सके जो दूसरा व्यक्ति संवाद करने का प्रयास कर रहा है। केवल शब्द ही नहीं, जो मानव-संचार का सबसे छोटा अंश हैं, बल्कि स्वर, शब्दों के पीछे का भाव, जो कहा गया है और जो उल्लेखनीय रूप से नहीं कहा गया है उसका महत्त्व।

देखभाल के रूप में ईमानदारी

सम्बन्धों में सर्वाधिक परिणामकारी विकृतियों में से एक है ईमानदारी को हानि के साथ, और सुखद असत्य को दयालुता के साथ समीकृत करना। जब हम किसी की भावनाओं की रक्षा के लिए ईमानदार संचार से बचते हैं, तो हम प्रायः कुछ और की रक्षा कर रहे होते हैं: अपना ही सुख, उस असहजता से अपना ही परिहार जो कठिन वार्तालाप रचते हैं। जिस व्यक्ति की भावनाओं की हम रक्षा कर रहे होते हैं उसे वस्तुतः सुखद मौन की अपेक्षा ईमानदार संचार से कहीं अधिक लाभ हो सकता है। ऐसा मित्र जो आपको कभी नहीं बताता जब आपका आचरण कठिनाइयाँ रच रहा हो, वह आपकी रक्षा नहीं कर रहा। वह स्वयं की रक्षा कर रहा है — और ऐसा करते हुए, वह आपको उस सूचना से वंचित कर रहा है जो आपके विकास का संपोषण कर सकती थी।

"ईमानदारी देखभाल का विपरीत नहीं है। सच्ची देखभाल के साथ की गई, यह उसका गहनतम रूप है। ऐसा सम्बन्ध जो ईमानदारी को नहीं टिका सकता वह सम्बन्ध नहीं है — यह सम्बन्ध का एक सावधान अभिनय मात्र है।"

अध्याय सत्ताईस

ध्यान, समय और ऊर्जा

"मुझे बताइए कि आप किस पर ध्यान देते हैं, और
मैं आपको बता दूँगा कि आप कौन हैं।"
— होजे ओर्तेगा य गासेत

हम इस पुस्तक भर में ऋत के साथ सरेखण की चर्चा करते आ रहे हैं। किन्तु सरेखण कोई अमूर्त गुण नहीं है। यह व्यावहारिक जीवन में, तीन विशिष्ट और सीमित संसाधनों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करता है: ध्यान, समय और ऊर्जा। ये तीन संसाधन मानव जीवन की मुद्रा हैं। ये वही हैं जो आपके पास देने को हैं। और इनका आबंटन — आप किस प्रकार, सचेत या अचेत रूप से, इन्हें लगाना चुनते हैं — किसी भी अन्य चर की अपेक्षा अधिक, वह है जो आपके लिए गए अनुभव की गुणवत्ता और दिशा को निर्धारित करता है।

ध्यान का अर्थशास्त्र

ध्यान सीमित है। यह कोई रूपक या अभिभूत अनुभव करने के विषय में कोई मनोवैज्ञानिक प्रेक्षण नहीं है। यह एक तंत्रिकीय तथ्य है। मस्तिष्क के ध्यान-तन्त्र की एक सीमित क्षमता है। जिसमें वह पूर्णता से संलग्न होता है, उसे वह गहराई और सटीकता से संसाधित करता है। जिसे वह अन्य वस्तुओं के साथ एक साथ संसाधित करने का प्रयास करता है, उसे वह सतही और असटीक रूप से संसाधित करता है। समकालीन परिवेश ध्यान को पकड़ने के लिए अभिकल्पित है। प्रत्येक सूचना-संकेत, प्रत्येक विज्ञापन, प्रत्येक कलनविधि-अनुकूलित सामग्री उन लोगों द्वारा अभिकल्पित है जो ध्यान के तंत्रिकाविज्ञान को समझते हैं और उस समझ को आपकी ध्यान-क्षमता को यथासम्भव अधिक, यथासम्भव लम्बे समय तक पकड़ने की सेवा में लगा रहे हैं।

धार्मिक ध्यान-प्रबन्धन इस पहचान से आरम्भ होता है कि आपका ध्यान आपका है — यह आपके स्वामित्व की सर्वाधिक मूल्यवान वस्तुओं में से एक है — और कि इसका आबंटन आपके वास्तविक मूल्यों और प्राथमिकताओं को प्रतिबिम्बित करना चाहिए, न कि उसे पकड़ने के लिए अनुकूलित तन्त्रों के अभिकल्प को। यह मुख्यतः उत्पादकता-तकनीकों या समय-खण्डन तन्त्रों के विषय में नहीं है, यद्यपि ये उपयोगी हो सकते हैं। यह उस अधिक मूलभूत पहचान के विषय में है कि आप जिस पर अपना ध्यान देते हैं वही आप हैं, क्षण-प्रतिक्षण, सर्वाधिक शब्दशः अर्थ में।

ऊर्जा और उसके स्रोत

मानव ऊर्जा असीमित नहीं है। यह उत्पादन और क्षय के दैनिक चक्रों वाला एक नवीकरणीय संसाधन है जो जैविक लयों द्वारा शासित होते हैं — निद्रा, पोषण, शारीरिक गति, सामाजिक अन्योन्यक्रिया, प्राकृतिक परिवेशों के सम्पर्क। इनमें से प्रत्येक या तो उस ऊर्जा के पुनरुत्पादन का संपोषण करता है या उसे क्षीण करता है जो सच्ची संलग्नता के लिए उपलब्ध है। अधिकांश लोग अपने समय का प्रबन्धन करते हैं। कहीं कम लोग अपनी ऊर्जा का प्रबन्धन करते हैं। परिणाम यह है कि वे अनेक वस्तुओं के लिए उपस्थित होते हैं किन्तु उनमें से थोड़ी के लिए ही सच्चे रूप से समर्थ — क्योंकि वह ऊर्जा जो सच्चे सामर्थ्य के लिए आवश्यक है उपलब्ध नहीं होती, उन माँगों द्वारा उपभुक्त हो चुकी होती है जो पहले आ पहुँचीं।

"आपके पास समय की समस्या नहीं है। आपके पास संरक्षण की समस्या है। जब आपका ध्यान, समय और ऊर्जा इसके अनुसार आबंटित होते हैं कि वस्तुतः क्या महत्त्व रखता है, तो 'पर्याप्त समय नहीं' आपके जीवन का प्रमुख आख्यान नहीं रह जाता।"

भाग छह

**प्रयास से प्रवाह की ओर:
संरचना का गहराना**

प्रयासरहित कर्म का विरोधाभास

"वू वेई — किए बिना करना। बलपूर्वक किए बिना कर्म करना।

प्रकृति के अनुरूप होना।"

— लाओ त्जु, ताओ ते चिंग

इस पुस्तक द्वारा वर्णित मार्ग के केन्द्र में एक विरोधाभास है। ऋत के साथ सरेखन का विकास, जैसा हमने इसका वर्णन किया है, सुसंगत प्रयास माँगता है। श्वास के प्रेक्षण के लिए सोद्देश्य ध्यान आवश्यक है। सजगता के विकास के लिए सतत अभ्यास आवश्यक है। संस्कार के परीक्षण के लिए उसे देखने की तत्परता आवश्यक है जो असहज है। प्रतिक्रिया पर प्रत्युत्तर के विकास के लिए स्वचालित प्रतिक्रियों को बाधित करने का बार-बार किया जाने वाला कार्य आवश्यक है।

और फिर भी, इस समस्त प्रयास का गन्तव्य — यदि 'गन्तव्य' उसके लिए सही शब्द भी हो जो अन्ततः किसी पहुँचे गए स्थान के बजाय उपस्थिति का एक गुण है — एक ऐसी अवस्था है जिसमें इस विशेष प्रकार का प्रयास अधिकांशतः विलीन हो जाता है। इसलिए नहीं कि कार्य रुक जाता है। बल्कि इसलिए कि कार्य स्वाभाविक हो जाता है। जिसके लिए सचेत विचार-विमर्श आवश्यक था वह अभ्यस्त हो जाता है। जो प्रयाससाध्य था वह स्वतःस्फूर्त हो जाता है। धार्मिक रूप से कर्म करने की मंशा और वस्तुतः धार्मिक रूप से कर्म करने के बीच का अन्तराल बन्द हो जाता है, बल से नहीं बल्कि चरित्र के उस क्रमिक रूपान्तरण के माध्यम से जिसे सतत अभ्यास उत्पन्न करता है।

प्रत्येक कौशल, पर्याप्त गहराई तक विकसित होकर, चरणों के एक लाक्षणिक समुच्चय से होकर संक्रमण करता है। आरम्भिक चरण में, कौशल सोद्देश्य, प्रयाससाध्य ध्यान माँगता है। ज्यों-ज्यों अभ्यास गहराता है, वे घटक जिनका अलग-अलग प्रबन्धन किया जाता था एकीकृत होने लगते हैं। पर्याप्त गहराई पर, कौशल सहज स्वभाव बन जाता है। निपुण संगीतकार यह नहीं

सोचता कि प्रत्येक अँगुली कहाँ रखनी है। गहराई से अभ्यस्त ध्यानी उस सजगता-गुण को पाने के लिए संघर्ष नहीं करता जो कभी इतना दुर्ग्राह्य था। इस पुस्तक द्वारा वर्णित ऋत के साथ सरेखण उसी विकासात्मक चाप का अनुसरण करता है।

जिसे परम्पराएँ 'प्रयासरहित कर्म' कहती हैं — ताओवादी संकल्पना वू वेई, योग की संकल्पना सहज (स्वाभाविक अवस्था), बौद्ध संकल्पना अप्रयास — वह संलग्नता की अनुपस्थिति नहीं है। यह अनावश्यक घर्षण की अनुपस्थिति है। इस अवस्था में, कर्म प्रयाससाध्य विचार-विमर्श के बजाय स्पष्टता से उठता है। किसी जटिल प्रक्रिया के मध्य शल्य-चिकित्सक पूर्णता से संलग्न होता है — सजग, परिशुद्ध, प्रत्येक घटनाक्रम के प्रति प्रत्युत्तरशील — किन्तु संघर्षरत नहीं। कर्म वर्षों के विकसित कौशल और परिस्थिति की आवश्यकताओं के साथ सरेखण से उठता है।

"प्रयासरहित कर्म आलस्य या निष्क्रियता नहीं है। यह गहन सरेखण की अभिव्यक्ति है — एक ऐसी अवस्था जिसमें जो आप हैं और जो परिस्थिति माँगती है उसके बीच का घर्षण वर्षों के ईमानदार अभ्यास के माध्यम से अधिकांशतः हल हो चुका होता है।"

अध्याय उनतीस

कर्ता का विलय

*"वह ताओ जिसे कहा जा सके शाश्वत ताओ नहीं है।
वह कर्म जो किसी कर्ता द्वारा किया जा सके गहनतम कर्म नहीं है।"*
— लाओ त्जु से अनुकूलित

ऋत के साथ सरेखण का एक आयाम है जो व्यावहारिक से परे जाकर दार्शनिक में प्रवेश करता है — या अधिक सटीक रूप से, उस अनुभवपरक क्षेत्र में जिसकी ओर दार्शनिक भाषा संकेत करने का प्रयास करती है। ज्यों-ज्यों सरेखण गहराता है, ज्यों-ज्यों बोध और वास्तविकता के बीच का अन्तराल संकीर्ण होता है, ज्यों-ज्यों कर्म उत्तरोत्तर संस्कारित प्रतिक्रियाशीलता के बजाय स्पष्टता से उठते हैं — इस बोध में कुछ बदलने लगता है कि यह सब कौन कर रहा है।

साधारण अनुभव में, एक 'मैं' का प्रबल बोध होता है जो वस्तुओं को कर रहा है। 'मैं' सचेत रूप से श्वास ले रहा हूँ। 'मैं' यह निर्णय ले रहा हूँ। 'मैं' प्रतिक्रिया के बजाय प्रत्युत्तर दे रहा हूँ। 'मैं' को एक कर्ता अनुभव किया जाता है — एक पृथक् सत्ता जो कर्मों को आरम्भ और नियन्त्रित करती है। किन्तु सतत ध्यान और गहराते सरेखण के साथ, पृथक् कर्तृत्व का यह बोध स्वयं को किसी ऐसी वस्तु के रूप में प्रकट करने लगता है जो आरम्भ में प्रतीत हुई उससे अधिक जटिल है।

जो कर्म गहनतम सरेखण से उठते हैं वे किसी पृथक् स्व द्वारा आरम्भ किए गए कर्मों जैसे अनुभव नहीं होते। वे प्रत्युत्तरों जैसे अधिक अनुभव होते हैं — परिस्थिति जो माँगती है उसकी उपयुक्त अभिव्यक्ति जैसे, आपके माध्यम से उठते हुए किन्तु आपसे नहीं, उस ढंग से जैसे अहं सामान्यतः स्वामित्व का दावा करता है। महान धनुर्धर को ऐसा अनुभव नहीं होता कि वह बाण चला रहा है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि बाण-चालन उसके माध्यम से घटित हो रहा है। प्रेरित लेखक को ऐसा अनुभव नहीं होता कि वह शब्द रच रही है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह किसी ऐसी वस्तु को प्रवाहित कर रही है जो अभिव्यक्त होना चाहती है।

यही वह है जिसकी ओर भगवद्गीता निष्काम कर्म पर अपनी शिक्षा में संकेत करती है — फल के प्रति आसक्ति के बिना कर्म। फल के प्रति आसक्ति के बिना कर्म वह कर्म है जो पूर्णतः स्वयं कर्म की गुणवत्ता पर केन्द्रित होता है — जो वस्तुतः आवश्यक है उसे यथासम्भव पूर्णता और सटीकता से करने पर — बिना एक साथ यह गणना चलाए कि कर्म कर्ता के लिए व्यक्तिगत रूप से क्या उत्पन्न करेगा। परिणामों के प्रति उदासीनता नहीं, बल्कि उस विकृति से स्वतन्त्रता जिसे व्यक्तिगत परिणामों के प्रति आसक्ति लाती है।

“जब कर्ता कर्म में विलीन हो जाता है, तो जो शेष रहता है वह शुद्ध कर्म है — ऋत के साथ सरेखित कर्म, परिस्थिति जो वस्तुतः माँगती है उसके साथ, अहं के हस्तक्षेप के बिना। यह धर्म की गहनतम अभिव्यक्ति है।”

अध्याय तीस

भीतर और बाहर एकरूप

*"यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे। जो शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है।
विभाजन कभी वास्तविक था ही नहीं।"*

— औपनिषदिक शिक्षा

हमने, इस पुस्तक के क्रम में, ब्रह्माण्डीय से व्यक्तिगत की ओर और पुनः बार-बार लौटते हुए गति की है। ब्रह्माण्ड की भूमि के रूप में ऋत से श्वास की लय के रूप में ऋत तक। ब्रह्माण्डीय स्तर पर धर्म के सिद्धान्तों से एक साधारण वार्तालाप में श्रवण के धर्म तक। समस्त वास्तविकता की वास्तुकला से एक अकेले प्रातःकाल की बुनावट तक। स्तरों के बीच यह गति उस वास्तविकता के एक सच्चे लक्षण को प्रतिबिम्बित करती है जिसका हम वर्णन करते आ रहे हैं।

भीतर और बाहर के बीच की सीमा उतनी ठोस नहीं है जितनी साधारण अनुभव उसे प्रतीत कराता है। सर्वाधिक स्पष्ट स्तर पर, यह जीव और उसके परिवेश के बीच की निरन्तरता के विषय में एक सरल प्रेक्षण है। आप अपनी त्वचा के भीतर और उसके बाहर की हर वस्तु से पृथक् नहीं हैं। आप निरन्तर विनिमय में हैं — ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड, पोषक तत्त्व और अपशिष्ट, प्रकाश और ध्वनि और विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण। आपके शरीर की सीमा कोई दीवार नहीं है। यह एक झिल्ली है — पारगम्य, गतिशील, एक परिवेष्टन के बजाय एक अन्तरापृष्ठा।

एक गहनतर स्तर पर, आपके आन्तरिक अनुभव और बाह्य संसार के बीच की सीमा समान रूप से पारगम्य है। बाहर जो घटित होता है वह उसे प्रभावित करता है जो भीतर उठता है — तत्काल, शक्तिशाली रूप से, निरन्तर। भीतर जो घटित होता है वह यह आकार देता है कि आप बाहर का बोध और उससे संलग्नता कैसे करते हैं — समान तात्कालिकता और शक्ति के साथ। गहनतम स्तर पर, उपनिषदों की शिक्षा — यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे — व्यष्टि और

ब्रह्माण्ड के बीच एक संरचनात्मक तदात्मता की ओर संकेत करती है जो प्रभाव और विनिमय से परे जाती है। वही व्यवस्थाकारी सिद्धान्त समस्त स्तरों पर कार्य करते हैं। वही ऋत जो ब्रह्माण्ड का शासन करता है आपका शासन करता है।

ज्यों-ज्यों सरेखण गहराता है, यह तदात्मता — जो संरचना के विषय में सदा सत्य है — अनुभवपरक रूप से सुलभ होने लगती है। शरीर के भीतर निहित एक पृथक् सत्ता होने का बोध नरम पड़ने लगता है। जो बोधगम्य हो जाता है वह है बाह्य संसार में स्थित ऋत को पहचानने योग्य रूप से वही ऋत के रूप में देखना जो आपमें कार्य कर रहा है। श्वसन की लय और ऋतुओं की लय उसी दोलनशील संरचना की भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। आपके जैविक तन्त्रों की स्वयं-संगठनकारी प्रवृत्ति और पारितन्त्रों की स्वयं-संगठनकारी प्रवृत्ति उसी मूलभूत प्रक्रिया के भिन्न स्तर हैं।

"स्व और संसार के बीच का विभाजन कभी सत्य था ही नहीं। यह एक सरलीकरण था। ज्यों-ज्यों सरेखण गहराता है, सरलीकरण ढीला पड़ता है, और कुछ अधिक सटीक उपलब्ध हो जाता है — और उस अधिक सटीक दर्शन में, सब कुछ बदल जाता है।"

भाग सात

भविष्य: लुप्त ढाँचे के रूप में ऋत

अध्याय इकतीस

व्यवस्थित रूप से संरेखण से बाहर एक संसार

"हमने एक ऐसा संसार रच दिया है जिसमें परिवर्तन की गति प्रज्ञा की गति से अधिक है। यही हमारे युग का मूलभूत संकट है।"

— समकालीन प्रेक्षण

हम असाधारण सामर्थ्य और महत्त्वपूर्ण भंगुरता के एक संसार में जीते हैं। यह सामर्थ्य मानव इतिहास में अभूतपूर्व है। आज एक अकेले व्यक्ति को उपलब्ध संगणन-शक्ति एक पीढ़ी पूर्व अकल्पनीय रही होती। संचार और सूचना-पहुँच की गति विश्व भर में मूलतः तात्क्षणिक है। जटिल तन्त्रों के प्रतिरूपण की क्षमता उल्लेखनीय गति से उन्नत हुई है। और फिर भी, प्रायः सामूहिक मानव जीवन के हर प्रमुख क्षेत्र में, व्यवस्थित विसंरेखण का प्रमाण व्यापक और बढ़ता हुआ है।

मानसिक स्वास्थ्य: आन्तरिक विसंरेखण की महामारी

मानसिक स्वास्थ्य की दशाएँ — अवसाद, चिन्ता, व्यसन, आघात-सम्बन्धी विकार — अभूतपूर्व भौतिक समृद्धि के बावजूद विकसित समाजों में सुसंगति से बढ़ती रही हैं। यह प्रतिरूप उन दशाओं में एक सच्चे क्षरण को प्रतिबिम्बित करता है जो मानव मानसिक कल्याण का संपोषण करती हैं: सामाजिक जुड़ाव की गुणवत्ता, सार्थक कार्य की उपस्थिति, प्राकृतिक संसार के साथ सम्बन्ध, विश्राम और सक्रियता की वे लयें जिनकी जैविक ऋतु को आवश्यकता होती है। हमने आर्थिक उत्पादकता और सूचना-प्रवाह के लिए अनुकूलित परिवेश बनाए हैं, इस पर्याप्त विचार के बिना कि मनुष्यों को भली-भाँति कार्य करने के लिए किसकी आवश्यकता है।

पर्यावरणीय संकटः ऋत प्रत्युत्तर देता हुआ

इक्कीसवीं सदी के पर्यावरणीय संकट — जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता का हास, ऊपरी मृदा का क्षरण, अलवण जल की दुर्लभता — सहे जाने योग्य प्राकृतिक परिघटनाएँ नहीं हैं। ये प्राकृतिक तन्त्रों की उन सतत निवेशों के प्रति प्रतिक्रियाएँ हैं जो उनकी अखण्डता का उल्लंघन करते हैं। पारितन्त्रों का अपना ऋत होता है — अपने व्यवस्थाकारी सिद्धान्त, प्रतिपुष्टि-क्रियाविधियाँ, और स्वयं-संशोधक सामर्थ्य। जब वे जो निवेश प्राप्त करते हैं वे उस परास से अधिक हो जाते हैं जिसके भीतर उनकी स्वयं-संशोधक क्रियाविधियाँ कार्य कर सकती हैं, तो वे नई सन्तुलन-अवस्थाओं की ओर मुड़ जाते हैं जो उन दशाओं का कम संपोषण करती हैं जिन पर मानव सभ्यता निर्भर है।

गति-प्रज्ञा अन्तराल

सम्भवतः हमारे क्षण का सर्वाधिक मूलभूत विसरेखण तकनीकी और आर्थिक परिवर्तन की गति तथा उस गति के बीच का अन्तराल है जिस गति से उस परिवर्तन में मार्ग खोजने के लिए आवश्यक मानवीय प्रज्ञा विकसित होती है। जो तकनीकें मानव जीवन की दशाओं को पुनः आकार देती हैं वे वर्षों में उभरती और फैलती हैं। उन्हें मानव कल्याण के साथ संरेखण में लगाने के लिए आवश्यक प्रज्ञा पीढ़ियों में विकसित होती है। शक्तिशाली कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास मानव इतिहास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संरेखण-चुनौतियों में से एक प्रस्तुत करता है।

"हमने अब तक उस शक्ति से मेल खाती प्रज्ञा नहीं बनाई है जिसे हमने रच दिया है। समाधान कम शक्ति नहीं है। यह अधिक प्रज्ञा है। और प्रज्ञा संरेखण से आरम्भ होती है — ऋत की उस समझ से जिसे प्राचीन परम्पराओं ने संकेतबद्ध किया था और जिसे हम अधिकांशतः भुला चुके हैं।"

अध्याय बत्तीस

भविष्य के ढाँचे के रूप में ऋत

"भविष्य का पूर्वानुमान लगाने का सर्वोत्तम उपाय है
उसे इसके साथ सरेखण में रचना जो सत्य है।"

— पीटर ड्रकर से अनुकूलित

इस पुस्तक का तर्क मुख्यतः व्यक्ति पर लागू किया गया है। किन्तु इसके निहितार्थ व्यक्ति से कहीं आगे तक फैलते हैं। क्योंकि प्रत्येक तन्त्र अन्ततः व्यक्तियों से बना होता है, और उन व्यक्तियों का ऋत के साथ सामूहिक सरेखण उन तन्त्रों की संगति और धारणीयता को निर्धारित करता है जिनका वे गठन करते हैं।

ऋत के माध्यम से संगठनात्मक अभिकल्प

ऐसा संगठन जो ऋत के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर अभिकल्पित किया जाता है, ईमानदार प्रतिपुष्टि के लिए सच्चे माध्यम रचता है, निर्णय-निर्माण के अधिकार को इस अनुपात में वितरित करता है कि सम्बद्ध ज्ञान वस्तुतः कहाँ विद्यमान है, घोषित मूल्यों और वास्तविक व्यवहारों के बीच सरेखण बनाए रखता है, और ऐसी दशाएँ रचता है जो अपने सदस्यों के जैविक ऋत का सम्मान करती हैं। ये नरम संगठनात्मक मूल्य नहीं हैं। ये इस बात की अभिव्यक्तियाँ हैं कि जटिल तन्त्र वस्तुतः कैसे कार्य करते हैं। जो नेता इसे समझते हैं वे आदर्शवादी नहीं हो रहे। वे गहनतम अर्थ में यथार्थवादी हो रहे हैं।

तकनीक और सरेखण

तकनीक वह क्षेत्र है जिसमें ऋत-ढाँचे की सर्वाधिक अत्यावश्यक आवश्यकता हो सकती है और जहाँ वह सर्वाधिक व्यवस्थित रूप से अनुपस्थित है। तकनीक स्वयं में न अच्छी है न बुरी। यह एक सामर्थ्य है — मानवीय कर्तृत्व का एक विस्तार जो उसे प्रवर्धित करता है

जो भी उसे संचालित कर रहा हो। जब तकनीक मानवीय और प्राकृतिक तन्त्रों की सच्ची समझ से संचालित होती है और उन दशाओं के साथ संरखित होती है जो उन्हें टिकाती हैं, तो वह असाधारण लाभ रचती है। जब वह संकीर्ण आर्थिक प्रोत्साहनों और उसके बाध्यकारी अनुकूलन से संचालित होती है जो मापनीय है, इसकी परवाह किए बिना कि वस्तुतः क्या मूल्यवान है, तो वह बड़े पैमाने पर हानि रचती है।

"प्रज्ञा के बिना निर्मित प्रत्येक तकनीक शक्ति का एक ऐसा रूप है जो अपने रचयिता की समझ से अधिक प्रबल है। ऋत तकनीकी सामर्थ्य के लिए नहीं झुकता। यह इसके प्रति प्रत्युत्तर देता है कि तकनीक तन्त्रों के साथ क्या करती है और प्रत्युत्तर विसंरक्षण के अनुपात में होगा।"

व्यक्ति ही आरम्भ है

"आप वही परिवर्तन बनिए जो आप संसार में देखना चाहते हैं।"

— महात्मा गांधी

प्रणालीगत परिवर्तन के लिए प्रणालीगत स्तरों पर कर्म आवश्यक है। किन्तु प्रणालीगत परिवर्तन व्यक्तियों से आरम्भ होता है। इसलिए नहीं कि व्यक्तिगत कर्म प्रत्यक्ष रूप से प्रणालीगत समस्याएँ हल कर देता है। बल्कि इसलिए कि तन्त्र व्यक्तियों से बने होते हैं, और किसी भी तन्त्र की गुणवत्ता अन्ततः उन व्यक्तियों की सामुच्चयिक गुणवत्ता और उन व्यक्तियों द्वारा किए गए चयनों से निर्धारित होती है जो उसका गठन करते हैं। प्रत्येक संस्था विशेष मूल्यों, बोधों, और धार्मिक संरेखणों वाले लोगों द्वारा रची गई थी। प्रत्येक दुष्क्रियाशील संस्था इसलिए कार्य करती रहती है कि अपर्याप्त संरेखण वाले लोग उसकी दुष्क्रिया को बनाए रखते हैं — द्वेष से नहीं बल्कि संस्कारित आचरण, भय, स्वार्थ, और जड़ता की साधारण क्रियाविधियों के माध्यम से।

आपके प्रभाव का क्षेत्र

प्रत्येक व्यक्ति का एक सच्चे प्रभाव का क्षेत्र होता है — तन्त्रों, सम्बन्धों, और दशाओं का एक समुच्चय जिन्हें वह अपने दैनिक चयनों और कर्मों के माध्यम से वस्तुतः प्रभावित करता है। धार्मिक दायित्व आपसे आपके सच्चे प्रभाव के क्षेत्र से परे कर्म करने को नहीं कहता। यह आपसे उसके भीतर पूर्ण संरेखण के साथ कर्म करने को कहता है। ऐसा शिक्षक जो सच्ची उपस्थिति के साथ पढ़ाता है, वह तन्त्र को ऐसे ढंगों से बदल रहा है जो कोई नीति-आदेश प्राप्त नहीं कर सकता था। प्रभाव उन विद्यार्थियों के माध्यम से आगे बढ़ता है जो सच्चे शिक्षण से मिलते हैं और उससे बदल जाते हैं।

ऐसा नेता जो अहं के बजाय स्पष्टता से निर्णय लेता है, जो ईमानदार सूचना-प्रवाह के लिए दशाएँ रचता है — यह नेता संगठनात्मक तन्त्र को ऐसे ढंगों से बदल रहा है जो समय के

साथ दृश्य हो जाते हैं। ऐसे माता-पिता जो संरेखण का आन्तरिक कार्य करते हैं, जो अपने बच्चों में सच्ची उपस्थिति लाते हैं — ये माता-पिता अगली पीढ़ी में एक ऐसा योगदान कर रहे हैं जिसका स्थान कोई सामाजिक कार्यक्रम नहीं ले सकता।

"संसार की समस्याएँ प्रणालीगत हैं। उनके प्रति आपका प्रत्युत्तर स्वयं से आरम्भ होना चाहिए। इसलिए नहीं कि व्यक्तिगत सद्गुण प्रणालीगत समस्याएँ हल कर देता है, बल्कि इसलिए कि असंरेखित व्यक्ति संरेखित तन्त्र नहीं रच सकते। कार्य यहीं आरम्भ होता है, इसी क्षण में, इसी श्वास के साथ।"

भाग आठ

**समापन: कोई अन्त नहीं, केवल
गहनतर संरेखण**

अध्याय चौतीस

प्रश्न को जीना

"महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रश्न करना बन्द न किया जाए।
जिज्ञासा के पास विद्यमान रहने का अपना कारण है।"

— अल्बर्ट आइंस्टीन

हमने इस पुस्तक में बहुत-सी भूमि तय की है। ऋग्वेद के प्राचीन सूक्तों से आधुनिक तंत्रिकाविज्ञान तक। ऋत के ब्रह्माण्डीय पैमाने से एक अकेली सचेत श्वास के आत्मीय पैमाने तक। धर्म की दार्शनिक गहराइयों से एक प्रातःकालीन दिनचर्या, एक कठिन वार्तालाप, विसरेखण के एक पहचाने गए और सौम्यता से संशोधित किए गए क्षण की व्यावहारिक बुनावट तक। और फिर भी, यह पुस्तक जिसका वर्णन करती है वह सीखकर लागू किया जाने वाला कोई तन्त्र नहीं है। यह जिया जाने वाला एक प्रश्न है।

प्रश्न सरल है, यद्यपि इसके निहितार्थ अक्षय हैं: इस क्षण में, क्या मैं इसके साथ सरेखित हूँ जो वस्तुतः सत्य है? किसी विराट तत्त्वमीमांसीय अर्थ में नहीं — यद्यपि विराट तत्त्वमीमांसीय अर्थ वहाँ है। बल्कि तत्काल, व्यावहारिक अर्थ में। अभी, इस श्वास में, इस अन्योन्यक्रिया में, इस निर्णय में — क्या मैं स्पष्ट देख रहा हूँ? क्या मैं इसके प्रति प्रत्युत्तर दे रहा हूँ जो वस्तुतः उपस्थित है, या इसके विषय में एक आख्यान के प्रति कि क्या उपस्थित है? क्या मैं इसके साथ सरेखण में कर्म कर रहा हूँ कि यह परिस्थिति वस्तुतः क्या माँगती है, या संस्कारित प्रतिक्रियाशीलता की विकृति से?

यह प्रश्न, सच्चे मन से और बार-बार पूछा गया, साधारण क्षणों में भी और महत्त्वपूर्ण क्षणों में भी, इस सम्पूर्ण शिक्षा का जीवित रूप है। उत्तर सदा हाँ नहीं होगा। यह मुख्य बात नहीं है। मुख्य बात है पूछना — और उसके साथ ईमानदार संलग्नता जो पूछना प्रकट करता है।

हर बार जब आप इसे पूछते हैं और पाते हैं कि आप सरेखित नहीं हैं, और फिर अधिक सरेखण की ओर एक छोटी-सी गति भी करते हैं, तो आप धर्म का अभ्यास कर रहे होते हैं।

इसलिए नहीं कि वह छोटी-सी गति कुछ नाटकीय हल कर देती है। बल्कि इसलिए कि वह वास्तविक है। वह ईमानदार है। वह इसके अनुरूप है कि ऋत वस्तुतः क्या माँगता है। और समय के साथ संचित होकर — छोटी गति के पश्चात् छोटी गति, प्रत्येक सच्ची — एक जीवन की दिशा बदल जाती है। क्रमशः, प्रायः अदृश्य रूप से, और फिर बढ़ती हुई स्पष्टता के साथ।

श्वास की लय गहराती है। उद्दीपन और प्रत्युत्तर के बीच का अन्तराल चौड़ा होता है। सम्बन्धों में उपस्थिति का गुण सुधरता है। निर्णय कुछ अधिक स्वच्छ हो जाते हैं। वह दुःख जो सत्य के प्रति अनावश्यक प्रतिरोध से आता है, घटता है। समय भर जिया गया सरेखण ऐसा ही दिखता है। पूर्णता नहीं, बल्कि दिशा। कठिनाई का उन्मूलन नहीं, बल्कि अनावश्यक स्वयं-रचित कठिनाई का उत्तरोत्तर हास।

"मार्ग किसी गन्तव्य की ओर जाने वाला राजमार्ग नहीं है। यह गति की एक दिशा है जो स्वयं यात्रा की गुणवत्ता को रूपान्तरित कर देती है। गन्तव्य, यदि कोई है, तो वह कोई अवस्था नहीं है जहाँ आप पहुँचते हैं। यह उपस्थिति का एक गुण है जो बिना अन्त के गहराता जाता है।"

अध्याय पैंतीस

एक अन्तिम अभिज्ञान

*"अन्ततः, हमें निन्दकता और संशयवाद और ढोंग से पर्याप्त हो चुका होगा,
और हम अधिक संगीतमय ढंग से जीना चाहेंगे।"*

— विन्सेंट वान गॉग

पुस्तकें समाप्त होती हैं। वह वास्तविकता जिसकी ओर वे संकेत करती हैं, समाप्त नहीं होती। ये शब्द लिखे जाने से पूर्व ऋत क्रियाशील था। अन्तिम पाठक के इस पुस्तक को बन्द करने के पश्चात् भी यह क्रियाशील रहेगा। यह समझ पर, अभिज्ञान पर, या इसकी किसी मानवीय पहचान पर निर्भर नहीं है।

आप इसका अंग हैं। यह कोई सान्त्वना देने वाली कहानी नहीं है। यह आपकी वास्तविक स्थिति का उपलब्ध सर्वाधिक परिशुद्ध वर्णन है। आप उसी व्यवस्थाकारी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति हैं जो आकाशगंगाओं को उनके सर्पिलों में धारण करता है, जो आपके शरीर की प्रत्येक कोशिका में प्रोटीनों को अनुक्रमित करता है, जो पारितन्त्रों की स्वयं-संशोधक बुद्धिमत्ता उत्पन्न करता है, जो किसी भी ऐसे तन्त्र की संगति उत्पन्न करता है जो विघटित होने के बजाय कार्य करता है। वह बुद्धिमत्ता जो आपके हृदय-स्पन्दन को टिकाती है — आपके निर्देश के बिना, बिना व्यवधान के, जीवन भर — वही बुद्धिमत्ता है जो ग्रहों की कक्षा को टिकाती है। रूपकात्मक रूप से नहीं। संरचनात्मक रूप से। वही ऋत, भिन्न पैमानों पर, भिन्न रूपों में, संगति की ओर, स्वयं-संगठन की ओर, एन्ट्रॉपी के खिंचाव के विरुद्ध जीवन और प्रतिरूप के टिकाव की ओर उसी मूलभूत प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करता हुआ।

*
**

धर्म इसमें आपकी सहभागिता है। इसके प्रति आपका अनुपालन नहीं। इसका आपका अभिनय नहीं। बल्कि आपकी सच्ची, उपस्थित, उत्तरोत्तर स्पष्ट होती सहभागिता — जिसमें

आपके कर्म करने और ऋत के आपके माध्यम से कर्म करने के बीच की सीमा उत्तरोत्तर कम भिन्न होती जाती है। यह वह दिशा है जिसकी ओर मार्ग संकेत करता है। यह लम्बा है। यह उपलब्ध है। और यह आरम्भ होता है, जैसे समस्त सच्चे मार्ग आरम्भ होते हैं, सरलतम और सर्वाधिक सुलभ कर्मों से: सचेत रूप से ली गई एक श्वास। सच्चे ध्यान का एक क्षण। ईमानदारी से पूछा गया एक प्रश्न।

*
**

ब्रह्माण्ड आपसे अपनी संगति को रोककर नहीं रखता। आप पहले से ही इसका अंग हैं। आपको जो जोड़ना है वह है आपकी सचेत सहभागिता — वह सहभागिता जो उसे रूपान्तरित कर देती है जो आप संरचनात्मक रूप से हैं, ऋत की एक अभिव्यक्ति से ऋत की एक सचेत अभिव्यक्ति में। वह चेतना — यह सजगता कि आप क्या हैं और किसका अंग हैं — स्वयं उन सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं में से एक है जो ब्रह्माण्ड ने स्वयं-संगठन और बढ़ती जटिलता की अपनी दीर्घ प्रक्रिया में उत्पन्न की हैं।

इसका सदुपयोग कीजिए। सजगता के साथ श्वास लीजिए। ईमानदारी के साथ देखिए। उस सटीकता के साथ कर्म कीजिए जिसे स्पष्टता सम्भव बनाती है। जब आप पाएँ कि आप भटक गए हैं तो सौम्यता से संशोधन कीजिए। और पुनः भटकिए। और पुनः संशोधन कीजिए। यही एक धार्मिक जीवन की लय है।

*
**

ऋत ब्रह्माण्ड का श्वास लेना है।

धर्म वह है जब आप उसके साथ सचेत रूप से श्वास लेते हैं।

"आप यहाँ जीवन को नियन्त्रित करने नहीं आए हैं। आप यहाँ उसके साथ संरेखित होने आए हैं। और उस संरेखण में — अपूर्ण, बढ़ता हुआ, कभी पूर्णतः सम्पूर्ण नहीं — जीवन वही बन जाता है जो बनने की सम्भावना उसमें सदा थी: हल की जाने वाली समस्या नहीं, बल्कि जिसमें सम्मिलित हुआ जाए वह लया।"

भाग नौ
गहनतर मूलः
संरक्षण का वैदिक विज्ञान

अध्याय छठीस

ऋग्वेद और ऋत की खोज

"ऋषियों ने अटकलें नहीं लगाईं उन्होंने प्रेक्षण किया। उनके उपकरण दूरदर्शी नहीं बल्कि स्थिर किए गए मन थे — और जो उन्होंने देखा उसमें सुधार नहीं किया जा सका है।"

— चिन्तनपरक चिन्तन

ऋग्वेद किसी भी ज्ञात भाषा के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थों में से एक है। इसके सूक्त सदियों की अवधि में रचे गए, उस क्षेत्र में जिसे अब उत्तर-पश्चिमी भारत कहा जाता है, अनुदार विद्वत्तापूर्ण आकलनों के अनुसार कहीं 1700 और 1100 ईसा पूर्व के बीच। इन्हें मौखिक रूप से आगे बढ़ाया गया, असाधारण परिशुद्धता से कण्ठस्थ किया गया, पीढ़ियों भर उनके ठीक-ठीक स्वर-रूप को संरक्षित करने के लिए अभिकल्पित जटिल प्रतिरूपों में सस्वर पाठ किया गया। आधुनिक इतिहास के बहुत-से भाग में, ऋग्वेद को मुख्यतः एक ऐतिहासिक कलाकृति के रूप में देखा गया — आरम्भिक आर्य धर्म का प्रमाण, देवताओं के रूप में मानवीकृत प्राकृतिक शक्तियों के लिए सूक्तों का एक संग्रह। यह पठन, यद्यपि पूर्णतः ग़लत नहीं, कुछ मूलभूत चूक गया।

ऋग्वेदिक सूक्त मुख्यतः देवताओं के विषय में कहानियाँ नहीं हैं। ये वास्तविकता के विषय में प्रेक्षण हैं — अस्तित्व की संरचना के विषय में जैसा उसका बोध उन मनो ने किया जो असाधारण रूप से स्थिर, असाधारण रूप से स्पष्ट, और ध्यान के उन रूपों में प्रशिक्षित थे जिन्हें आधुनिक संस्कृति ने अधिकांशतः त्याग दिया है। जिन ऋषियों ने ऋग्वेद की रचना की, उन्होंने उसमें भेद नहीं किया जिसे हम अब विज्ञान कहेंगे और उसमें जिसे हम आध्यात्मिक जिज्ञासा कहेंगे। वे एक ही क्रिया में संलग्न थे: इसका ध्यानपूर्वक प्रेक्षण कि अस्तित्व वस्तुतः कैसे कार्य करता है। उनका प्रेक्षण-उपकरण प्रयोगशाला नहीं, बल्कि स्थिर और प्रशिक्षित मानव मन था।

जो उन्होंने प्रेक्षित किया, भिन्न सूक्तों और भिन्न ऋषियों में उल्लेखनीय सुसंगति के साथ, वह यह था: अस्तित्व यादृच्छिक नहीं है। यह अव्यवस्थित नहीं है। यह एक अन्तर्भूत व्यवस्था से शासित है जो समस्त परिघटनाओं में उपस्थित है, ध्यानपूर्वक ध्यान को सुलभ है, और गहराई से विश्वसनीय है। उन्होंने इस व्यवस्था को ऋत कहा। इस खोज का महत्त्व अतिशयोक्ति में नहीं कहा जा सकता। एक ऐसे संसार में जहाँ अव्यवस्था और यादृच्छिकता स्वतःमान्य पूर्वधारणा थीं, यह प्रेक्षण कि समस्त आभासों के अधीन एक गहरी, विश्वसनीय व्यवस्था है, केवल दार्शनिक रूप से रोचक नहीं था। यह व्यावहारिक रूप से क्रान्तिकारी था।

ऋत के संरक्षक

ऋग्वेद में, ऋत केवल एक अमूर्त सिद्धान्त नहीं है। यह विशिष्ट शक्तियों द्वारा सक्रिय रूप से बनाए रखा जाता है। महान देव वरुण को बार-बार ऋत के संरक्षक के रूप में वर्णित किया गया है — वह ब्रह्माण्डीय अधीक्षक जो यह सुनिश्चित करता है कि अस्तित्व की व्यवस्था का उल्लंघन निर्दण्ड न हो। यह मात्र पुराकथा नहीं है। यह कुछ महत्वपूर्ण को व्यक्त करने का एक परिशुद्ध ढंग है: अस्तित्व की व्यवस्था निष्क्रिय नहीं है। यह स्वयं-संशोधक है। ऋत के उल्लंघन अनुत्तरित नहीं रहते। वरुण, इस पठन में, कोई ऐसे देवता नहीं हैं जो पाप को दण्डित करते हैं। वे वास्तविकता की स्वयं-संशोधक बुद्धिमत्ता के मूर्तरूप हैं।

ऋग्वेद में ऋत की सहचर संकल्पना सत्य है। ऋत ब्रह्माण्ड की व्यवस्था है। सत्य मानवीय विचार और वाणी तथा उस व्यवस्था के बीच का अनुरूपण है। जब आप सत्य बोलते हैं, तो आप भाषा और विचार के स्तर पर ऋत के साथ संरेखण में होते हैं। जब आप असत्य बोलते हैं, तो आप विसंरेखण में होते हैं। यह केवल एक नैतिक प्रेक्षण नहीं है। भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य कर्म का समन्वय करते हैं। ऐसी भाषा जो वास्तविकता का सटीक प्रतिनिधित्व करती है, ऐसा समन्वय सम्भव बनाती है जो वास्तविक दशाओं के साथ संरेखित है। ऐसी भाषा जो वास्तविकता का मिथ्या प्रतिनिधित्व करती है, ऐसा समन्वय सम्भव बनाती है जो विसंरेखित है। परिणाम उतने ही निश्चित रूप से अनुसरण करते हैं जितने निश्चित रूप से रात्रि दिवस का अनुसरण करती है।

"ऋषियों को इसे पहचानने के लिए समीकरणों की आवश्यकता नहीं थी जिसकी भौतिकविदों ने तब से पुष्टि की है: कि परिघटनाओं की आभासी विविधता के नीचे एक एकल, संगत, विस्मयकारी रूप से परिशुद्ध व्यवस्था है। उन्होंने इसे केवल प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षित किया, सतत ध्यान के माध्यम से स्पष्ट किए गए मनो से।"

सत्य: धार्मिक कर्म के आधार के रूप में सत्य

"सत्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसका आप स्वामित्व रखते हैं। यह कोई ऐसी वस्तु है जिसमें आप सहभागी होते हैं — या कोई ऐसी वस्तु जिससे आप दूर हटते हैं। कोई मध्य-भूमि नहीं है।"

— औपनिषदिक अन्तर्दृष्टि

वैदिक ढाँचे में ऋत के सहचरों में, सत्य एक धार्मिक जीवन को जीने के लिए विशेष महत्त्व का स्थान रखता है। ऋत और सत्य के बीच का सम्बन्ध परिशुद्ध है: ऋत वह व्यवस्था है जो विद्यमान है। सत्य उस व्यवस्था का विचार, वाणी और कर्म में सटीक प्रतिनिधित्व है। सत्य बोलना अपनी भाषा को वास्तविकता के साथ संरेखण में लाना है। सत्य कर्म करना अपने कर्मों को इसके साथ संरेखण में लाना है जो वस्तुतः स्थिति है, न कि इसके साथ जो आप चाहते हैं कि स्थिति हो, या जो आप भय करते हैं कि स्थिति है, या जो स्थिति का होना सुविधाजनक होता।

असत्य के अनेक रूप

वैदिक ढाँचे में असत्य सोद्देश्य झूठ तक सीमित नहीं है। पहला रूप है आत्म-वंचना — सम्भवतः सर्वाधिक सार्वभौमिक। आत्म-वंचना तब होती है जब हम अपने विषय में, दूसरों के विषय में, या संसार के विषय में ऐसे विश्वास धारण करते हैं जिन्हें हम किसी स्तर पर असटीक जानते हैं — किन्तु जिन्हें हम इसलिए बनाए रखते हैं कि सटीक संस्करण हमारी आत्म-छवि के लिए अधिक माँगपूर्ण, अधिक संकटकारी, या अधिक असहज होता। आत्म-वंचना केवल एक मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है। यह एक धार्मिक समस्या है। जो व्यक्ति व्यवस्थित रूप से आत्म-वंचित है वह सटीक बोध नहीं कर सकता, और जो व्यक्ति सटीक बोध नहीं कर सकता वह धार्मिक रूप से कर्म नहीं कर सकता।

दूसरा रूप है रणनीतिक मिथ्या-प्रस्तुति। यह तब होती है जब हम खुलकर झूठ नहीं बोलते किन्तु सूचना का चयन करते, उसे ढाँचा देते, और उसे ऐसे ढंगों से प्रस्तुत करते हैं जो ऐसी छवियाँ रचते हैं जिन्हें हम असटीक जानते हैं। रणनीतिक मिथ्या-प्रस्तुति समकालीन संगठनात्मक और राजनीतिक जीवन में इतनी सामान्य है कि इसने अपना गलत होने का बोध अधिकांशतः खो दिया है। यह व्यावसायीकृत हो गई है। किन्तु इसके परिणाम व्यावसायीकृत नहीं हैं। रणनीतिक मिथ्या-प्रस्तुति पर बने तन्त्र संरचनात्मक असंगति संचित करते हैं। आधिकारिक वास्तविकता और वास्तविक वास्तविकता के बीच का अन्तराल बढ़ता है। अन्ततः, यह ढह जाता है।

तीसरा रूप है इनकार — उसे स्वीकार करने से अस्वीकृति जो स्पष्ट रूप से उपस्थित है। इनकार व्यक्तिगत स्तर पर सम्बन्धों और व्यक्तिगत स्वास्थ्य में कार्य करता है, संगठनात्मक स्तर पर उन संस्कृतियों में जो बुरी सूचना को दबाती हैं, और सभ्यतागत स्तर पर सामूहिक आचरण के परिणामों को स्वीकार करने से अस्वीकृति में।

अभ्यास के रूप में सत्य

सत्य का अभ्यास मुख्यतः सत्य-कथन के विराट् क्षणों के विषय में नहीं है। यह उन असंख्य छोटे क्षणों के विषय में है जिनमें सटीक प्रतिनिधित्व और सुखद असटीकता के बीच का चयन उठता है। यह बोलने से पूर्व वह ठहराव है जो पूछता है: क्या यह सटीक है? यह 'मैं नहीं जानता' कहने की तत्परता है, बजाय आत्मविश्वास का अभिनय करने के। यह उसकी सूचना देने का सामर्थ्य है जो वस्तुतः घटित हुआ, बजाय उसके जो घटित होना चाहिए था। सत्य की प्रत्येक छोटी क्रिया सत्य के सामर्थ्य को सुदृढ़ करती है। उससे प्रत्येक छोटा विचलन उसे क्षीण करता है। यही नैतिक चरित्र की क्रियाविधि है जैसा ऋत के झरोखे से समझा जाता है।

"सत्य इच्छाशक्ति के बल से आन्तरिक कोलाहल का दमन नहीं है। यह असटीकता को बनाए रखने के लिए आवश्यक प्रयास को हटाने का स्वाभाविक परिणाम है। सत्य, जल की भाँति, अपना स्तर स्वयं पा लेता है जब हम उसे रोकने के लिए परिश्रम करना बन्द कर देते हैं।"

अध्याय अड़तीस

यथार्थ गीता: संरक्षण के विज्ञान के रूप में गीता

"भगवद्गीता त्याग की शिक्षा नहीं देती। यह इसका परिशुद्ध विज्ञान सिखाती है कि मनुष्य संसार में संसार द्वारा नष्ट हुए बिना किस प्रकार कर्म कर सकता है।"

— परमहंस स्वामी अङ्गड़ानन्द जी महाराज

भगवद्गीता कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में स्थापित है, जहाँ योद्धा अर्जुन एक ऐसी सेना के सम्मुख है जिसमें उसके गुरु, उसके सम्बन्धी, और वे लोग सम्मिलित हैं जिनसे वह प्रेम करता है। युद्ध के क्षण में, अर्जुन ढह जाता है। उसे युद्ध में कोई भलाई नहीं दिखती। वह उन्हें मारने के बजाय मर जाना चाहेगा जिनसे वह प्रेम करता है। अर्जुन के ढहने के प्रति कृष्ण का प्रत्युत्तर गीता की अन्तर्वस्तु है। और यहीं व्याख्या निर्णायक हो जाती है। सर्वाधिक सामान्य पठन कृष्ण की शिक्षा को एक सामाजिक या धार्मिक निर्देश के रूप में ग्रहण करता है: अपना जातिगत कर्तव्य पूरा करो, युद्ध करो क्योंकि यह तुम्हारा क्षत्रिय दायित्व है। इस पठन का उपयोग ऐतिहासिक रूप से सामाजिक संरचनाओं, उत्पीड़क संरचनाओं सहित, के अनुपालन को न्यायसंगत ठहराने के लिए किया गया है। यह उस वास्तविक अन्तर्वस्तु से पूर्णतः चूक जाता है जो कृष्ण सिखाते हैं।

परमहंस स्वामी अङ्गड़ानन्द जी महाराज द्वारा असाधारण परिशुद्धता से विकसित यथार्थ गीता का पठन किसी पूर्णतः भिन्न वस्तु की ओर संकेत करता है। कृष्ण अर्जुन को सामाजिक दायित्व का अनुपालन करना नहीं सिखा रहे। वे उसे इसका विज्ञान सिखा रहे हैं कि चेतना कैसे कार्य करती है — बोध कैसे विकृत होता है, विकृत बोध से उठने वाला कर्म कैसे दुःख उत्पन्न करता है, और संरक्षित बोध से उठने वाला कर्म कैसे अहं और उसके परिणामों दोनों का अतिक्रमण करता है। यह गीता है धर्म पर एक ग्रन्थ के रूप में, उस अर्थ में जिसमें यह सम्पूर्ण पुस्तक उसका वर्णन करती आई है: स्पष्ट बोध से उठने वाले सटीक प्रत्युत्तर के रूप में।

केन्द्रीय शिक्षा: आसक्ति के बिना कर्म

निष्काम कर्म की शिक्षा — फल के प्रति आसक्ति के बिना कर्म — गीता का केन्द्रबिन्दु है और इसका सर्वाधिक सामान्य रूप से भ्रान्ति से ग्रस्त पहलू है। लोकप्रिय समझ में, इसका अर्थ है: अपना कर्तव्य करो और परिणामों की चिन्ता मत करो। यह पठन एक प्रकार का निष्क्रिय त्याग उत्पन्न करता है। यथार्थ गीता के पठन में, इसका अर्थ कुछ ठीक-ठीक भिन्न और कहीं अधिक माँगपूर्ण है। इसका अर्थ है: परिस्थिति जो माँगती है उसके साथ यथासम्भव पूर्ण संरक्षण से कर्म करना — पूर्ण संलग्नता, पूर्ण उपस्थिति, कौशल और बुद्धि के पूर्ण प्रयोग के साथ — उस विकृति से मुक्त रहते हुए जिसे व्यक्तिगत परिणामों के प्रति आसक्ति लाती है।

वह शल्य-चिकित्सक जो एक साथ अपनी आत्म-छवि का प्रबन्धन नहीं कर रहा, बेहतर शल्य-चिकित्सक है। वह नेता जो व्यक्तिगत राजनीतिक परिणामों की गणना नहीं कर रहा, बेहतर निर्णयकर्ता है। वे माता-पिता जो ऐसा बच्चा उत्पन्न करने का प्रयास नहीं कर रहे जो उनके पालन-पोषण के चयनों को मान्य ठहराएगा, बेहतर माता-पिता हैं। प्रत्येक स्थिति में, परिणाम में अहं-निवेश का हटना व्यक्ति को उपलब्ध पूर्ण बुद्धिमत्ता को वास्तविक कार्य पर लागू होने के लिए मुक्त कर देता है। यही व्यवहार में निष्काम कर्म है। यही गीता है संरक्षण के विज्ञान के रूप में।

"गीता का रणक्षेत्र कुरुक्षेत्र नहीं है। यह आपकी अपनी चेतना का क्षेत्र है, जहाँ प्रत्येक क्षण स्पष्टता से उठने वाले कर्म और विकृति से उठने वाले कर्म के बीच चयन किया जाता है। युद्ध आन्तरिक है। विजय स्पष्टता है।"

अध्याय उनतालीस

प्राणायामः श्वास-संरेखण का व्यवस्थित विज्ञान

"जो योगी श्वास को जानता है वह आत्मा को जानता है। जो योगी श्वास में निपुण होता है वह आत्मा में निपुण होता है।"

— योग-शिक्षा

भाग चार में, हमने श्वास का जीवित सेतु के रूप में अन्वेषण किया और सरल श्वास-प्रेक्षण को संरेखण के अभ्यास में सर्वाधिक सुलभ प्रवेश-बिन्दु के रूप में प्रस्तुत किया। यहाँ, हम गहराई में जाते हैं — श्वास-संवर्धन के उस व्यवस्थित विज्ञान में जिसे योग-परम्परा ने सहस्राब्दियों में विकसित किया, और जिसे समकालीन तंत्रिकाविज्ञान उत्तरोत्तर सत्यापित कर रहा है।

नाड़ी शोधनः सन्तुलनकारी श्वास

मूलभूत प्राणायाम अभ्यासों में, नाड़ी शोधन — अनुलोम-विलोम श्वसन — एक केन्द्रीय स्थान रखता है। इस अभ्यास में श्वास को बाएँ और दाएँ नासाछिद्रों के बीच बारी-बारी से लेना सम्मिलित है, एक नासाछिद्र को बन्द करने के लिए विशिष्ट हस्त-मुद्राओं का उपयोग करते हुए जबकि दूसरे से श्वास लेते हुए। शारीरिक दृष्टिकोण से, बाएँ और दाएँ नासाछिद्र तंत्रिका-तन्त्र की भिन्न शाखाओं से सम्बद्ध हैं। दाएँ नासाछिद्र से श्वास लेना अनुकम्पी शाखा को सक्रिय करने की प्रवृत्ति रखता है। बाएँ नासाछिद्र से श्वास लेना परानुकम्पी शाखा को सक्रिय करने की प्रवृत्ति रखता है। दोनों के बीच नियमित रूप से बारी-बारी से करना दोनों शाखाओं को सन्तुलन में लाता है, उस शान्त सजगता की अवस्था को उत्पन्न करता हुआ जो ध्यानमय सजगता और धार्मिक कर्म का संपोषण करती है।

भ्रामरी: गुंजनकारी श्वास

भ्रामरी प्राणायाम में श्वास छोड़ने के दौरान एक गुंजन-ध्वनि उत्पन्न करना सम्मिलित है जबकि कान अँगूठों से सौम्यता से बन्द किए जाते हैं। उत्पन्न कम्पन नासाग्रसनी और स्वरयन्त्र में ध्वनिक कम्पन के माध्यम से वेगस तंत्रिका को उद्दीप्त करता है। परिणाम परानुकम्पी तंत्रिका-तन्त्र की एक तीव्र और स्पष्ट सक्रियता है — हृदय-गति और कॉर्टिसोल स्तर में कमी, हृदय-गति परिवर्तनशीलता में वृद्धि। भ्रामरी के साधक सुसंगति से आन्तरिक अवस्था में एक तीव्र परिवर्तन बताते हैं — मानसिक कोलाहल का शान्त होना, शारीरिक तनाव की शिथिलता, और आन्तरिक स्थिरता का एक गुण जो अभ्यास आरम्भ करने के मिनटों के भीतर विकसित हो सकता है।

अभ्यास के पीछे का विज्ञान

धीमी, लयबद्ध श्वास — विशेषकर लगभग 5-6 श्वास प्रति मिनट पर, जो अनेक प्राणायाम अभ्यासों में अनुशंसित श्वास-दर से मेल खाती है — हृदय-गति परिवर्तनशीलता को नाटकीय रूप से बढ़ाती है, जो हृदय-वाहिका स्वास्थ्य और भावनात्मक प्रत्यास्थता का एक मुख्य सूचक है। यह उसका शरीरक्रियाविज्ञान है जिसे योग-परम्परा समता कहती है। यह कोई मानसिक उपलब्धि नहीं है। यह एक शारीरिक अवस्था है — एक ऐसी अवस्था जिसमें ऋत की जैविक अभिव्यक्ति अधिकतम संगति के साथ कार्य कर रही होती है। और यह सचेत श्वसन के सतत अभ्यास के माध्यम से किसी के लिए भी सुलभ है।

"जिन योगी आचार्यों ने प्राणायाम विकसित किया, वे कुछ ऐसा कर रहे थे जिसे समकालीन तंत्रिकाविज्ञान अभी ही पूर्णतः समझने लगा है: वे तंत्रिका-तन्त्र को व्यवस्थित रूप से उसकी अपनी अधिकतम संगति की स्वाभाविक अवस्था की ओर प्रशिक्षित कर रहे थे। भिन्न मानचित्र। वही भू-भाग।"

भाग दस

आन्तरिक विज्ञानः
चेतना, बोध और साक्षी

त्रिगुणः प्रकृति के विधान

"सम्पूर्ण संसार तीन गुणों की पारस्परिक क्रीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और बुद्धिमान, इसे देखते हुए, इससे विचलित नहीं होता।"

— भगवद्गीता 14.23

सम्पूर्ण वैदिक परम्परा में बाह्य संसार और आन्तरिक जीवन दोनों को समझने के सर्वाधिक परिष्कृत ढाँचों में से एक है तीन गुणों का सिद्धान्त — तमस्, रजस् और सत्त्व। 'गुण' शब्द का अनुवाद प्रायः 'गुणवत्ता' या 'विधा' के रूप में किया जाता है, किन्तु इसे अधिक परिशुद्ध रूप से एक मूलभूत शक्ति या प्रवृत्ति के रूप में समझा जाता है जो सम्पूर्ण प्रकृति में कार्य करती है — अभिव्यक्त संसार, जिसमें मानव मन और शरीर सम्मिलित हैं। तीन गुण तीन पृथक् पदार्थ नहीं हैं। ये अभिव्यक्त अस्तित्व के एकल एकीकृत क्षेत्र की तीन विधाएँ या प्रवृत्तियाँ हैं, जो सदा एक साथ भिन्न-भिन्न अनुपातों में उपस्थित रहती हैं।

तमस्: जड़ता की शक्ति

तमस् जड़ता, भारीपन, अन्धकार और अवरोध का सिद्धान्त है। पदार्थ में, तमस् घनत्व और ठोसपन है। मन में, तमस् भ्रम, सुस्ती, मन्दता, और स्पष्ट रूप से बोध या कर्म करने की अक्षमता है। तामसिक मन स्पष्ट नहीं देखता क्योंकि वह देख ही नहीं रहा। वह भारी है, भीतर की ओर मुड़ा हुआ, जो है उसमें सच्चे रूप से उपस्थित होने के बजाय अचेतन प्रतिरूपों में लीन। तमस् केवल नकारात्मक नहीं है — पदार्थ का ठोसपन ही वह है जो संरचना को टिकने देता है। किन्तु अति में तमस्, मन और आचरण में प्रबल होकर, एक प्रकार का अन्धकार उत्पन्न करता है जो उस स्पष्ट दर्शन को रोकता है जिसकी धार्मिक कर्म को आवश्यकता होती है।

रजस्: उद्वेलन की शक्ति

रजस् गति, ऊर्जा, आवेग और उद्वेलन का सिद्धान्त है। मन में, रजस् इच्छा, महत्वाकांक्षा, बेचैनी, और एक ऐसी चेतना का प्रेरित गुण है जो सदा उससे कुछ भिन्न चाहती है जो उपस्थित है। रजस्, तमस् की भाँति, केवल नकारात्मक नहीं है। रजस् के बिना, कुछ भी गति न करता, कुछ भी प्रयास न किया जाता। किन्तु अति में रजस् — मन में प्रबल होकर — एक ऐसे व्यक्ति का व्याकुल गुण उत्पन्न करता है जो सदा करता है किन्तु कभी पहुँचता नहीं, सदा प्रयासरत किन्तु कभी विश्राम में नहीं। आधुनिक जीवन प्रधानतः राजसिक है। उपलब्धि, हड़बड़ी, और अन्तहीन उत्तेजना की संस्कृति राजसिक संस्कृति है — और इसके मूल्य राजसिक अति के मूल्य हैं।

सत्त्व: स्पष्टता की शक्ति

सत्त्व स्पष्टता, प्रभा, सामंजस्य और सत्य का सिद्धान्त है। मन में, सत्त्व स्पष्ट, शान्त, सजग सजगता का गुण है जो सटीक बोध करती और उपयुक्त रूप से कर्म करती है। सात्त्विक मन जड़ हुए बिना स्थिर है, चिन्तित हुए बिना सजग है, प्रतिक्रियाशील हुए बिना संलग्न है। यही मन का वह गुण है जिसकी धार्मिक कर्म को आवश्यकता होती है। धार्मिक जीवन की कला सत्त्व को विकसित करने की कला है — ऐसी दशाएँ रचने की जिनमें स्पष्टता प्रबल हो सके, मन में, शरीर में, और उन तन्त्रों में जिनमें व्यक्ति निवास करता है।

गुण-ढाँचा केवल आन्तरिक अवस्थाओं के मानचित्र के रूप में ही नहीं, बल्कि बाह्य परिस्थितियों को समझने के एक नैदानिक उपकरण के रूप में भी मूल्यवान है। तमस् से अभिभूत संगठन वह है जो जड़ता और दुष्क्रियाशील प्रतिरूपों के अचेतन अनुरक्षण से लक्षित होता है। रजस् से अभिभूत संगठन वह है जो व्याकुल सक्रियता और गति की वेदी पर गुणवत्ता के बलिदान से लक्षित होता है। एक सात्त्विक संगठन — जिसमें स्पष्टता, ईमानदारी, और संरेखित प्रयोजन प्रबल होते हैं — उसकी संगठनात्मक अभिव्यक्ति है जिसे यह पुस्तक ऋत के साथ संरेखण कहती आई है।

"तीन गुण अच्छे और बुरे की श्रेणियाँ नहीं हैं। ये इस बात के वर्णन हैं कि जड़ता, उद्वेलन और स्पष्टता के भिन्न अनुपात किस प्रकार कार्य की भिन्न गुणवत्ताएँ उत्पन्न करते हैं। यह पहचानना सीखना कि कौन-सा गुण प्रबल हो रहा है — आपके आन्तरिक जीवन में और उन तन्त्रों में जिनमें आप निवास करते हैं — महान मूल्य का एक व्यावहारिक कौशल है।"

अध्याय इकतालीस

चित्त वृत्तिः चेतना की तरंगें

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है।"

— पतंजलि, योगसूत्र 1.2

पतंजलि के योगसूत्र, जो लगभग दो हजार वर्ष पूर्व रचे गए, सम्पूर्ण चिन्तन-साहित्य के सर्वाधिक संक्षिप्त और गहन कथनों में से एक से आरम्भ होते हैं: योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है। चित्त — चेतना का क्षेत्र अथवा आन्तरिक अनुभव का सार — वह माध्यम है जिसमें विचार, भाव, बोध, स्मृतियाँ, और संस्कार उठते, बने रहते, और विलीन होते हैं। अपनी स्वाभाविक अवस्था में, शुद्ध सजगता; साधारण अवस्थाओं में, वृत्तियों द्वारा निरन्तर परिवर्तित।

'वृत्ति' शब्द — परिवर्तन, उतार-चढ़ाव, तरंग — मुख्य है। अपनी स्वाभाविक अवस्था में चित्त शुद्ध सजगता है — प्रभामय, स्पष्ट, बिना विकृति के। जो हमें इस स्पष्टता का अनुभव करने से रोकता है वह स्वयं चित्त नहीं, बल्कि वे निरन्तर उतार-चढ़ाव हैं जो उसके आर-पार गति करते हैं: विचार, भाव, स्मृति, कल्पना, और बोध की वे तरंगें जो साधारण मानसिक अनुभव का गठन करती हैं। पतंजलि जिसकी ओर संकेत कर रहे हैं वह यह है: वास्तविकता की हमारी सर्वाधिक सटीक संकल्पनात्मक समझ भी अब भी वास्तविकता का प्रतिनिधित्व है, स्वयं वास्तविकता नहीं। जो मन सतत प्रतिनिधित्वों के आर-पार गति कर रहा है वह वास्तविकता का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर रहा।

वृत्ति के पाँच प्रकार

पतंजलि चित्त की वृत्तियों को पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं: सम्यक् ज्ञान (प्रमाण), मिथ्या ज्ञान (विपर्यय), संकल्पना (विकल्प), निद्रा, और स्मृति। यह वर्गीकरण कुछ महत्वपूर्ण प्रकट करता है: सम्यक् ज्ञान भी एक वृत्ति है, और इसलिए स्पष्टता की गहनतम अवस्था में एक

बाधा। योग, सम्यक् रूप से समझा गया, अधिक ज्ञान का अर्जन नहीं है। यह उस प्रक्रिया का स्थिरीकरण है जिसके माध्यम से समस्त ज्ञान — सम्यक् और मिथ्या — निरन्तर उठ और बीत रहा होता है।

शुद्धीकरण का मार्ग

वृत्ति के कोलाहल में प्रत्येक कमी — सच्ची स्थिरता का प्रत्येक क्षण — स्पष्टतर बोध की दिशा में एक गति है। यही कारण है कि श्वास-अभ्यास इतना केन्द्रीय है। सचेत श्वसन वृत्तियों को घटाता है। यह उन्हें समाप्त नहीं करता — विचार उठते रहते हैं। किन्तु यह मानसिक सक्रियता के अभ्यस्त त्वरण के विरुद्ध एक प्रति-शक्ति रचता है, अधिक और तेज़ और प्रबल की ओर की स्वतःमान्य प्रवृत्ति के विरुद्ध एक सौम्य प्रतिरोध। उस अवकाश में जिसे सचेत श्वसन खोलता है, चित्त का प्रकाश कुछ अधिक स्पष्ट रूप से चमकने लगता है। और उस स्पष्टता में, जो वस्तुतः उपस्थित है उसका सच्चा बोध सम्भव हो जाता है।

"चित्त हल की जाने वाली समस्या नहीं है। यह शुद्ध किया जाने वाला माध्यम है। आपके बोध की स्पष्टता प्रत्यक्ष रूप से उस माध्यम की स्पष्टता के अनुपात में है जिसके माध्यम से वह कार्य करता है।"

अध्याय बयालीस

संस्कारः अतीत की वास्तुकला

"आप जो भी विचार सोचते हैं वह एक छाप छोड़ता है। आप जो भी चयन करते हैं वह एक खाँचे को गहरा करता है। प्रश्न यह है कि क्या आप स्वयं को सजगता के साथ गढ़ रहे हैं।"

— चिन्तनपरक प्रेक्षण

योग-परम्परा के पास उन संचित प्रतिरूपों के लिए एक परिशुद्ध शब्द है जो बोध को विकृत करते और स्वचालित आचरण उत्पन्न करते हैं: संस्कार। शब्दशः अर्थ 'छाप' या 'चिह्न', संस्कार वे छाप हैं जो अनुभव, विचार और कर्म द्वारा चित्त में छोड़ी जाती हैं। प्रत्येक अनुभव, प्रत्येक पुनरावृत्त विचार, प्रत्येक अभ्यस्त कर्म चित्त में एक छाप छोड़ता है। ये छाप रूपकात्मक नहीं हैं। ये स्मृति, आदत और चरित्र का वास्तविक आधार हैं।

संस्कार एक साथ कई ढंगों से कार्य करते हैं। सर्वाधिक मूलभूत स्तर पर, ये स्मृति का आधार हैं। जब आप किसी अनुभव का स्मरण करते हैं, तो जिस तक आप पहुँच रहे होते हैं वह वह संस्कार है जो उस अनुभव ने चित्त में निक्षेपित किया। संस्कार स्वयं अनुभव नहीं बल्कि उसकी एक छाप है — एक प्रतिनिधित्व जो उस समय सक्रिय भावनात्मक स्वर, ध्यान-केन्द्र, और व्याख्यात्मक ढाँचे से आकार पाया। स्मृति सदा, किसी मात्रा तक, एक धार्मिक या अधार्मिक क्रिया है: यह या तो जो घटित हुआ उसका सटीक प्रतिनिधित्व करती है या वर्तमान आवश्यकताओं की सेवा में उसे विकृत करती है।

एक गहनतर स्तर पर, संस्कार आदत का आधार हैं। पुनरावृत्त अनुभव अपनी छाप को गहरा करते हैं। पुनरावृत्त कर्म ऐसे खाँचे रचते हैं जो उन कर्मों को उत्तरोत्तर सरल और अधिक स्वचालित बना देते हैं। यह कुशल और अकुशल दोनों प्रतिरूपों के लिए समान रूप से सत्य है। जो व्यक्ति अभ्यासवश कठिनाई के प्रति स्पष्टता और समता से प्रत्युत्तर देता है, वह ऐसे संस्कार बना रहा है जो स्पष्टता और समता को उत्तरोत्तर अधिक उपलब्ध करते हैं। जो व्यक्ति

अभ्यासवश कठिनाई के प्रति प्रतिक्रियाशीलता और परिहार से प्रत्युत्तर देता है, वह ऐसे संस्कार बना रहा है जो प्रतिक्रियाशीलता और परिहार को उत्तरोत्तर अधिक स्वचालित बनाते हैं।

संस्कारों के साथ कार्य करना

योग-परम्परा संस्कारों के साथ कार्य करने के कई दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। प्रतिपक्ष भावना का अभ्यास — विपरीत गुण का संवर्धन — अकुशल संस्कारों के साथ कार्य करने का प्राथमिक उपकरण है। जब प्रतिक्रियाशीलता का एक अभ्यस्त प्रतिरूप उठता है — क्रोध, भय, तृष्णा — तो अभ्यास उसे दबाना नहीं बल्कि सचेत रूप से उसके विपरीत को विकसित करना है: क्रोध उठने पर समता, भय उठने पर साहस, तृष्णा उठने पर सन्तोष। अकुशल प्रतिरूप तत्काल लुप्त नहीं होता। किन्तु ज्यों-ज्यों विकल्प अधिक अभ्यस्त होता है, यह क्रमशः अपना स्वचालित गुण खो देता है।

"आप अपने संस्कारों से उनसे भागकर बच नहीं सकते। आप उन्हें केवल सजगता के साथ उनका सामना करके रूपान्तरित कर सकते हैं, बार-बार, जब तक कि वह सामना स्वयं एक नया संस्कार न बन जाए — उपस्थिति की आदत, स्पष्टता का खाँचा।"

अध्याय तैंतालीस

साक्षी: द्रष्टा चेतना

"निर्णय के बिना साक्षी होना सबसे बड़ा आध्यात्मिक अभ्यास है,
क्योंकि इसके लिए वही एक वस्तु आवश्यक है जिसे शेष सभी
अभ्यास बनाने का प्रयास कर रहे हैं।"

— अद्वैत-शिक्षा

वेदान्त-परम्परा साक्षी-गुण को साक्षी कहती है — शब्दशः, द्रष्टा। अद्वैत (अद्वैतवादी) समझ में, साक्षी कोई पृथक् संकाय नहीं है जिसे आप विकसित करते हैं। यह स्वयं चेतना की प्रकृति है। चेतना, अपने अनुपाधिक रूप में, शुद्ध साक्षी सजगता है — वह भूमि जिसमें समस्त अनुभव उठता, बना रहता, और विलीन होता है, जिसका वह साक्षी होती है उससे परिवर्तित हुए बिना।

साधारण सजगता तदात्म होती है — यह स्वयं को अनुभव की अन्तर्वस्तु मानती है। जब क्रोध उठता है, तो साधारण सजगता सोचती है 'मैं क्रोधित हूँ' — और क्रोधित होती है, पूर्णतः, क्रोध पर बिना किसी परिप्रेक्ष्य के। साक्षी अ-तदात्म होती है — इस अर्थ में नहीं कि वह शीतल या विरक्त है, बल्कि इस अर्थ में कि वह पूर्णतः लीन नहीं होती। जब क्रोध सजगता के साक्षी-गुण में उठता है, तो एक पहचान होती है: 'क्रोध उठ रहा है।' क्रोध को अस्वीकार या दमित नहीं किया जाता। किन्तु न ही उससे पूर्णतः तादात्म्य किया जाता है। साक्षी का एक गुण होता है जो अनुभव और अनुभवकर्ता के बीच एक स्वाभाविक अवकाश रचता है।

साक्षी-गुण को विकसित करना

इस गुण से सम्पर्क करने का सरलतम उपाय इस अभ्यास के माध्यम से है कि पूछें: सजग कौन है? जब आप किसी विचार को लक्षित करें, तो पूछिए: लक्षित कौन कर रहा है? जब आप किसी भाव का प्रेक्षण करें, तो पूछिए: वह क्या है जो प्रेक्षण कर रहा है? प्रश्न का कोई ऐसा उत्तर

नहीं है जिसे शब्दों में सूत्रबद्ध किया जा सके। किन्तु उसका पूछना ध्यान को अन्तर्वस्तु से उस सजगता की ओर पुनर्निर्देशित करता है जो अन्तर्वस्तु का साक्षी है। और उस पुनर्निर्देशन में, साक्षी का एक आस्वाद उपलब्ध हो जाता है।

उन साधकों के अनुभव में जो सतत अभ्यास के माध्यम से इस गुण में गहरे उतरे हैं, साक्षी-सजगता अन्ततः स्वयं को प्रयास से प्राप्त की गई किसी विशेष अवस्था के रूप में नहीं, बल्कि समस्त अनुभव की साधारण भूमि के रूप में प्रकट करती है — सदा उपस्थित, सदा सुलभ, कभी वस्तुतः अनुपस्थित नहीं। जो इसकी पहचान को अवरुद्ध करता था वह केवल अन्तर्वस्तु के प्रति ध्यान की अभ्यस्तता थी — सजगता की वह प्रवृत्ति कि वह उस सजगता में विश्राम करने के बजाय उसमें लीन हो जाए जो उठता है, जो उस सजगता में जो उठता है उसके प्रति सजग है।

"साक्षी कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे आप प्राप्त करते हैं। यह कोई ऐसी वस्तु है जिसे आप पहचानते हैं। और पहचान का प्रत्येक क्षण संरेखण का एक क्षण है — किसी बाह्य मानक के साथ नहीं बल्कि उसकी गहनतम प्रकृति के साथ जो आप हैं।"

भाग न्यारह

**व्यवहार में संरेखण: एक समेकित
दृष्टिकोण**

सरेखण में जिया गया एक दिन

"एहस्य भव्य भाव-भंगिमा में नहीं, बल्कि साधारण क्षण में
लाई गई ध्यान की गुणवत्ता में है।"

— चिन्तनपरक प्रेक्षण

अब हम सब कुछ सर्वाधिक मूर्त सम्भव ढंग से एक साथ लाते हैं: यह देखते हुए कि सरेखण में जिया गया एक दिन वस्तुतः कैसा दिख सकता है। यह कोई विधान नहीं है। यह एक दृष्टान्त है — यह दिखाने का एक प्रयास कि जिन सिद्धान्तों की हमने चर्चा की है वे एक साधारण दिन की जिई गई बुनावट में किस प्रकार अनूदित होते हैं। विशिष्ट रूप व्यक्तिगत परिस्थिति के साथ अत्यधिक भिन्न होंगे। अन्तर्निहित गुण — ध्यान, ईमानदारी, और सचेत संलग्नता के वे गुण जो सरेखण का गठन करते हैं — सार्वभौमिक रूप से लागू हैं।

जागना: संक्रमण

फ़ोन देखे जाने से पूर्व, दिन की माँगों में संलग्न होने से पूर्व, ध्यान के एक ऐसे गुण का अवसर होता है जो उसके पश्चात् की हर वस्तु के लिए स्वर निर्धारित करेगा। अनेक लोगों के लिए, इस संक्रमण का सर्वाधिक सुलभ संस्करण उठने से पूर्व केवल कुछ मिनटों की सचेत श्वास है। कोई विस्तृत अभ्यास नहीं — केवल यह पहचान कि दिन अभी आरम्भ होता है, कि सजगता उपस्थित है, कि संसार के भीतर दौड़ आने से पूर्व कुछ ध्यान देने योग्य है। यह संक्षिप्त पहचान, पहले विकर्षण के आने से पूर्व, उपस्थिति के गुण को उस भूमि के रूप में स्थापित कर देती है जिससे दिन आगे बढ़ेगा।

कार्यदिवस: संरेखित संलग्नता

कार्यदिवस वह है जहाँ संरेखण की सर्वाधिक कठोरता से परीक्षा होती है। एकल-कार्य का अभ्यास: प्रत्येक कार्यदिवस के कम से कम कुछ भाग के लिए, अनेक वस्तुओं को आंशिक रूप से करने के बजाय एक वस्तु को पूर्णता से करना। बोलने-से-पूर्व ठहरावों का अभ्यास: किसी भी महत्वपूर्ण संचार से पूर्व, एक सचेत श्वास। ईमानदार सूचना का अभ्यास: जो वस्तुतः स्थिति है वह कहना, बजाय इसके जो अच्छा सुनाई देता है। ये उत्पादकता-तकनीकें नहीं हैं। ये कार्य के क्षेत्र पर लागू सत्य और सजगता की अभिव्यक्तियाँ हैं।

अपराह्न: क्षय का प्रबन्धन

अधिकांश लोग मध्य-अपराह्न में ऊर्जा और स्पष्टता का क्षय अनुभव करते हैं। यह अल्ट्राडियन लय का पूर्वानुमेय परिणाम है — ऊर्जा और विश्राम के 90-मिनट के वे चक्र जिन्हें मानव तंत्रिका-तन्त्र निरन्तर चलाता है। इस लय का संरेखित प्रबन्धन लम्बी अपराह्न-निद्रा की माँग नहीं करता। यह केवल इस पहचान की माँग करता है कि विश्राम जैविक ऋतु है जो स्वयं को अभिव्यक्त कर रहा है — कि अपराह्न का अवसाद एक संकेत है, चरित्र-दोष नहीं — और इस अवधि के दौरान किसी प्रकार की पुनर्प्राप्ति का प्रावधान। मध्य-अपराह्न में दस मिनट का प्राणायाम-अभ्यास शेष कार्यदिवस की गुणवत्ता के लिए किसी भी मात्रा की कॉफी से अधिक करेगा।

सन्ध्या: भीतर की ओर संक्रमण

सन्ध्या-संक्रमण दिन की बाह्य संलग्नता से रात्रि के आन्तरिक विश्राम की ओर की गति है। प्राथमिक समस्या स्क्रीन का उपयोग है। स्क्रीनों द्वारा उत्सर्जित नीली-वर्णक्रम प्रकाश मेलाटोनिन के उत्पादन को दबाता है। किन्तु स्क्रीन-उपयोग की अन्तर्वस्तु कम से कम उतनी ही समस्याजनक है जितना प्रकाश: समाचार और उत्तेजक मनोरंजन का निरन्तर उपभोग चेतना की राजसिक विधा को ठीक उसी समय सक्रिय रखता है जब तंत्रिका-तन्त्र को तामसिक विश्राम की ओर बढ़ने की आवश्यकता होती है। संरेखित सन्ध्या-अभ्यास में बाह्य उत्तेजना का क्रमिक प्रत्याहरण और दिन की ऊर्जा के स्वाभाविक निष्क्रियीकरण के लिए दशाओं की रचना सम्मिलित है।

"सरेखण में जिया गया एक दिन कोई पूर्ण दिन नहीं है। यह एक ऐसा दिन है जिसमें ध्यान का गुण कठिनाई के मध्य बना रहता है — जिसमें सजगता से भटकाव को सुसंगति से पहचाना और सौम्यता से संशोधित किया जाता है। संशोधन की सुसंगति ही अभ्यास है।"

अध्याय पैंतालीस

दीर्घ चाप: आजीवन अभ्यास के रूप में संरेखण

"नदी एक दिन में समुद्र नहीं बन जाती। किन्तु उसे इसकी आवश्यकता नहीं। उसे केवल सही दिशा में गति करते रहने की आवश्यकता है।"

— चिन्तनपरक बिम्ब

संरेखण कोई गन्तव्य नहीं है। यह एक दिशा है। और दिशा सदा अधिक स्पष्टता, अधिक संगति, बोध और कर्म की अधिक सटीकता की ओर होती है — सदा किसी ऐसी वस्तु के निकट पहुँचती हुई जो कभी एक स्थिर अधिकार नहीं बनती।

यात्रा के चरण

पहला चरण है पहचान। कोई वस्तु व्यक्ति को यह पहचानने को प्रेरित करती है कि होने का उसका वर्तमान ढंग पूर्णतः संरेखित नहीं है। यह पहचान आरम्भ है। यह आकर्षक नहीं है। यह प्रायः असहज है। किन्तु यह उसके बाद की हर वस्तु के लिए अनिवार्य पूर्वशर्त है। दूसरा चरण है आरम्भिक अभ्यास। व्यक्ति किसी प्रकार का नियमित अभ्यास आरम्भ करता है। यह चरण प्रायः एक ऐसे उत्साह से चिह्नित होता है जो आंशिक रूप से सच्चा और आंशिक रूप से एक अभ्यास होने की सूक्ष्म अहं-सन्तुष्टि है। तीसरा चरण है कठिन मध्या आरम्भिक उत्साह क्षीण हो जाता है। अभ्यास कम नवीन हो जाता है। गहनतम संस्कार प्रकट होने लगते हैं। यह चरण वह है जहाँ अधिकांश लोग या तो छोड़ देते हैं या ठहर जाते हैं। यह वह भी है जहाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास होता है।

चौथा चरण है एकीकरण। अभ्यास अब जीवन में जोड़ी गई कोई पृथक् गतिविधि नहीं रहता। यह जीवन भर बुना जाने लगता है। सजगता का वह गुण जो केवल ध्यान के आसन पर उपलब्ध था, बैठक में, कठिन वार्तालाप में, कुण्ठा के क्षण में उपलब्ध होने लगता है। पाँचवाँ चरण है गहराती स्वाभाविकता। जिसके लिए प्रयास आवश्यक था वह स्वाभाविक होने लगता

है। सजगता की ओर वह वापसी जो सोद्देश्य थी अभ्यस्त हो जाती है। प्रतिक्रिया पर प्रत्युत्तर का चयन उसी प्रयाससाध्यता के बिना होने लगता है।

समुदाय की भूमिका

सरैखण की यात्रा को समुदाय द्वारा महत्वपूर्ण रूप से संपोषित किया जाता है — उन अन्यो के साथ जुड़ाव द्वारा जो गति की उसी दिशा में संलग्न हैं। मार्ग पर अन्य लोग आपमें वह देख सकते हैं जो आप अभी स्वयं में नहीं देख सकते, उन प्रतिरूपों को प्रतिबिम्बित कर सकते हैं जिन्हें आपका अपना संस्कार अदृश्य कर देता है, वह परिप्रेक्ष्य प्रदान कर सकते हैं जिसकी समस्त आन्तरिक कार्य को अन्ततः आवश्यकता होती है। संघ की परम्परा — साधकों का समुदाय — धार्मिक जीवन के लिए आनुषंगिक नहीं है।

"मार्ग का दीर्घ चाप किसी भिन्न जीवन की ओर नहीं है। यह उसी जीवन की एक भिन्न गुणवत्ता की ओर है — वही श्वास, वही परिस्थितियाँ, वही सम्बन्ध, उत्तरोत्तर अधिक स्पष्टता से देखे गए और उत्तरोत्तर अधिक सरैखण से जिए गए।"

दुःख की रसायन-विद्या

"समस्त दुःख विसरेखण नहीं है। कुछ दुःख वह कुठाली है
जिसमें गहनतम सरेखण गढ़ा जाता है।"

— चिन्तनपरक अन्तर्दृष्टि

इस पुस्तक भर में, हमने सरेखण के परिणामों में से एक के रूप में दुःख के हास की चर्चा बार-बार की है। और यह सत्य है: जो दुःख मनुष्य अनुभव करते हैं उसका बहुत-सा अनावश्यक है — ऋत के साथ विसरेखण से, मिथ्या पूर्वधारणाओं पर कार्य करने के घर्षण से उत्पन्न। किन्तु ऋत के साथ सरेखण दुःख का उन्मूलन नहीं करता। यह दुःख की उस विशिष्ट श्रेणी का उन्मूलन करता है जो अनावश्यक विसरेखण से आती है। हानि का, सच्ची सीमा का, अपरिवर्तनीय का दुःख — यह विसरेखण से उत्पन्न नहीं होता।

जो व्यक्ति सरेखित है वह कम कठिनाई अनुभव नहीं करता। वह कठिनाई को आन्तरिक प्रत्युत्तर के एक भिन्न गुण के साथ अनुभव करता है। कठिन का सामना प्रतिक्रियाशीलता के बजाय समता से किया जाता है। हानि को हानि के प्रति प्रतिरोध के अतिरिक्त दुःख के बिना पूर्णता से अनुभव किया जाता है। अधिकांश लोग जिसे अपना दुःख अनुभव करते हैं उसका अधिकांश प्राथमिक दुःख नहीं है — वास्तविक कठिनाई या हानि — बल्कि द्वितीयक दुःख है: प्रतिरोध, प्रतिक्रियाशीलता, वे कहानियाँ जो वे इस विषय में कहते हैं कि कठिनाई का क्या अर्थ है।

शिक्षक के रूप में दुःख

सच्चे दायित्व का दुःख, ईमानदार आत्म-परीक्षण का दुःख, हानि का दुःख — इनमें से प्रत्येक वह अनुभव है जिसके माध्यम से ऋत की स्वयं-अतिक्रामी प्रवृत्ति मनुष्यों में कार्य करती है। प्रत्येक वह अनुभव है जिसके माध्यम से व्यक्ति उससे अधिक बन जाता है जो वह था, कुछ

नया अर्जित करके नहीं बल्कि कुछ अनावश्यक हटाए जाने से। परम्परा इसका वर्णन तपस् के रूप में करती है — तप, ताप, उसका जल जाना जो अनिवार्य नहीं है। स्थूल अर्थ में आत्म-पीड़न नहीं, बल्कि कठिन अनुभव की अग्नि में इतने समय तक उपस्थित बने रहने की तत्परता कि अनावश्यक भस्म हो जाए और अनिवार्य उभर आए।

दुःख की रसायन-विद्या — कठिनाई का गहराई में, हानि का खुलेपन में, सीमा का प्रज्ञा में रूपान्तरण — सबको स्वतः उपलब्ध नहीं होती। इसके लिए दुःख का सामना परिहार के बजाय उपस्थिति के गुण के साथ करने की तत्परता आवश्यक है। किन्तु जब वह तत्परता उपस्थित होती है, तो कुछ सच्चे रूप से रूपान्तरकारी सम्भव हो जाता है।

"सजगता के साथ सामना किया गया दुःख अब केवल दुःख नहीं रह जाता। यह प्रज्ञा का कच्चा माल है। ब्रह्माण्ड उसे व्यर्थ नहीं करता। और न ही आपको करना चाहिए।"

अध्याय सैंतालीस

ऋत और अर्थ का प्रश्न

"जीवन का अर्थ पाया नहीं जाता। यह रचा जाता है — किन्तु इसे केवल वही रच सकता है जो इसके साथ सरेखित है जो वास्तविक है।"

— समकालीन प्रेक्षण

मनुष्य जो सर्वाधिक गहन प्रश्न पूछ सकता है उनमें से एक सर्वाधिक व्यक्तिगत भी है: मेरे जीवन का अर्थ क्या है? बहुत-सी समकालीन संस्कृति में, अर्थ को किसी ऐसी वस्तु के रूप में समझा जाता है जिसे खोजा या रचा जाना चाहिए — कुछ ऐसा जो आप सही कार्य में, सही सम्बन्ध में, सही उपलब्धियों में पाते हैं। यह दृष्टि अर्थ को बाह्य परिस्थितियों पर आश्रित बना देती है, और इसलिए अन्तर्भूत रूप से अनिश्चित। जब कार्य विफल होता है, जब सम्बन्ध समाप्त होता है, जब उपलब्धि उतनी सन्तोषजनक नहीं होती जितनी प्रत्याशित थी, तो उन पर बना अर्थ ढह जाता है।

वैदिक ढाँचा एक भिन्न समझ सुझाता है। अर्थ, इस दृष्टि में, कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे आप पाते या रचते हैं। यह कोई ऐसी वस्तु है जिस तक आप पहुँचते हैं — या पहुँचने में विफल होते हैं — ऋत के साथ अपने सरेखण की गुणवत्ता के माध्यम से। सार्थक अनुभव की परिघटनात्मकता पर विचार कीजिए। जब हम सच्चे अर्थ के क्षण अनुभव करते हैं, तो प्रायः सदा गहन उपस्थिति का एक गुण होता है, ध्यान का जो बिखरा हुआ न होकर पूर्णतः एकत्रित है, कर्म का जो प्रयास के बजाय एक अभिव्यक्ति जैसा अनुभव होता है।

यह गुण स्वयं अर्थ नहीं है। यह सरेखण का आत्मनिष्ठ अनुभव है। अर्थ, ऋत-ढाँचे में, वह है जो तब अनुभव होता है जब कर्म गहनतर व्यवस्था के अनुरूप होता है — जब जो आप कर रहे हैं वह सच्चे रूप से इसके लिए उपयुक्त है कि आप कौन हैं, आप किसमें समर्थ हैं, परिस्थिति क्या माँगती है, और आपके जीवन का वृहत्तर प्रतिरूप किसकी ओर बढ़ रहा है। यह

ठीक धार्मिक अवस्था है। अर्थ धार्मिक कर्म का पुरस्कार नहीं है। यह भीतर से धार्मिक कर्म का अनुभव है।

साधारण जीवन में अर्थ

इस समझ का एक व्यावहारिक परिणाम है जो एक साथ उत्साहवर्धक और माँगपूर्ण है। यह उत्साहवर्धक है क्योंकि इसका अर्थ है कि अर्थ प्रायः किसी भी परिस्थिति में उपलब्ध है। इसके लिए किसी विशेष प्रकार के कार्य या किसी विशेष उपलब्धि की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए केवल पूर्ण उपस्थिति और सच्चे सरेखण के उस गुण की आवश्यकता है जो किसी भी गतिविधि को धर्म की अभिव्यक्ति का वाहन बना देता है। यह माँगपूर्ण है क्योंकि इसका अर्थ है कि अर्थ की अनुपस्थिति अन्ततः परिस्थितियों की समस्या नहीं है। यह सरेखण की समस्या है। और सरेखण एक आन्तरिक दशा है, बाह्य व्यवस्था नहीं।

"आपको अपने जीवन का अर्थ खोजने की आवश्यकता नहीं है। आपको उस जीवन के साथ सरेखित होने की आवश्यकता है जो आपके पास पहले से ही है। और उस सरेखण में, प्रश्न स्वयं का उत्तर दे देता है — शब्दों में नहीं बल्कि यथार्थता के उस अनुभूत बोध में जो अर्थ का वास्तविक रूप है।"

भाग बारह

**विज्ञान प्रज्ञा से मिलता है: प्राचीन
अन्तर्दृष्टि और आधुनिक समझ का
अभिसरण**

तंत्रिकाविज्ञान और संरचना का विज्ञान

"मस्तिष्क स्थिर प्रोग्राम चलाने वाला संगणक नहीं है। यह एक गतिशील तन्त्र है, जो अनुभव के प्रति प्रत्युत्तर में निरन्तर स्वयं को पुनर्संगठित करता रहता है। आप जिस पर ध्यान देते हैं वह आकार देता है कि आप क्या बन जाते हैं।"

— समकालीन तंत्रिकाविज्ञान

विगत तीन दशकों के सर्वाधिक उल्लेखनीय बौद्धिक विकासों में से एक है प्राचीन चिन्तन-प्रज्ञा और समकालीन तंत्रिकाविज्ञान के बीच अभिसरण। जो ध्यान, प्राणायाम, और सम्बद्ध अनुशासनों के साधकों ने अपने ही अनुभव से बताया — और जिसे बीसवीं सदी के बहुत-से भाग में मुख्यधारा के विज्ञान द्वारा आत्मनिष्ठ और इसलिए असत्यापनीय कहकर खारिज कर दिया गया — अब उसकी पुष्टि की जा रही है, उसका मानचित्रण किया जा रहा है, और उसे बढ़ती परिशुद्धता के साथ मापा जा रहा है।

तंत्रिका-सुनम्यता: आन्तरिक परिवर्तन का वैज्ञानिक आधार

इस पुस्तक में वर्णित अभ्यासों के लिए सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप से प्रासंगिक आधुनिक तंत्रिकाविज्ञान का केन्द्रीय निष्कर्ष है तंत्रिका-सुनम्यता — मस्तिष्क का अनुभव के प्रति प्रत्युत्तर में अपनी संरचना और कार्य को बदलने का सामर्थ्य। बीसवीं सदी के बहुत-से भाग में, मुख्यधारा का तंत्रिकाविज्ञान इस पूर्वधारणा पर कार्य करता था कि वयस्क मस्तिष्क मूलतः स्थिर है — कि तंत्रिका-संयोजन आरम्भिक विकास में स्थापित हो जाते हैं और उसके पश्चात् अपेक्षाकृत स्थिर रहते हैं। यह पूर्वधारणा गलत थी। मस्तिष्क, जीवन भर, निरन्तर नए सिनैप्टिक संयोजन रचता है, बार-बार प्रयुक्त पथों को सुदृढ़ करता है, और विरले प्रयुक्त पथों को छाँट देता है।

जब हम श्वास-सजगता का अभ्यास करते हैं, तो हम केवल स्वयं को अस्थायी रूप से शान्त नहीं कर रहे होते। हम स्वयं-नियमन से सम्बद्ध तंत्रिका-परिपथों को प्रशिक्षित कर रहे होते हैं, बार-बार सक्रियण के माध्यम से उन्हें अधिक सुदृढ़ बना रहे होते हैं। जब हम साक्षी-गुण का अभ्यास करते हैं, तो हम अधिसंज्ञान से सम्बद्ध प्रीफ्रन्टल नेटवर्कों को सुदृढ़ कर रहे होते हैं — चिन्तन के विषय में सोचने का, मानसिक सक्रियता को केवल संचालित करने के बजाय उसका प्रेक्षण करने का सामर्थ्य। जब हम सत्य का अभ्यास करते हैं, तो हम सटीक आत्म-अनुवीक्षण से सम्बद्ध तंत्रिका-प्रतिरूपों को सुदृढ़ कर रहे होते हैं।

डिफ़ॉल्ट मोड नेटवर्क और संस्कार

तंत्रिका-प्रतिबिम्बन अनुसन्धान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोजों में से एक है डिफ़ॉल्ट मोड नेटवर्क (DMN) — मस्तिष्क-क्षेत्रों का एक समुच्चय जो तब सक्रिय रहता है जब मन विशिष्ट बाह्य कार्यों में संलग्न नहीं होता: जब हम दिवास्वप्न देख रहे होते हैं, अपने विषय में सोच रहे होते हैं, भविष्य की योजना बना रहे होते हैं, या अतीत का पूर्वाभ्यास कर रहे होते हैं। DMN, वस्तुतः, संस्कारित मन का तंत्रिकीय सहसम्बन्ध है — वह नेटवर्क जो स्व और संसार के विषय में अभ्यस्त आख्यान चलाता है।

ध्यान पर अनुसन्धान ने सुसंगति से दिखाया है कि यह DMN में सक्रियता घटाता है — विशेषकर आत्म-निर्देशी विचार और चिन्तन-मनन से सम्बद्ध क्षेत्रों में। यह प्राचीन प्रेक्षण कि ध्यान चित्त की वृत्तियों को शान्त करता है, समकालीन तंत्रिकीय भाषा में, यह प्रेक्षण है कि ध्यान DMN सक्रियता को घटाता है। वही परिघटना, दो भिन्न भाषाओं में वर्णित।

बहुवेगस सिद्धान्त और श्वास

बहुवेगस सिद्धान्त पर तंत्रिकावैज्ञानिक स्टीफन पोर्जेस का कार्य इस पर प्रकाश डालता है कि श्वास-अभ्यास वे प्रभाव क्यों उत्पन्न करते हैं जो वे करते हैं। पोर्जेस के अनुसन्धान ने स्वायत्त तंत्रिका-तन्त्र की तीन क्रमविकासीय परतों को पहचाना। सर्वाधिक हाल में विकसित परत — उदर-वेगस तन्त्र — सामाजिक संलग्नता, सुरक्षा, और दूसरों के साथ सच्चे जुड़ाव के सामर्थ्य से सम्बद्ध है। और यह धीमी, गहरी, लयबद्ध श्वास द्वारा सक्रिय होती है। सुरक्षा और सामाजिक संलग्नता का शारीरिक चिह्न — वह अवस्था जिसमें सच्चा जुड़ाव, सच्चा अधिगम, और सच्ची धार्मिक संलग्नता सर्वाधिक सम्भव हैं — ठीक वही अवस्था है जो सचेत श्वसन द्वारा उत्पन्न होती है।

"जिन प्राचीन ऋषियों ने प्राणायाम की खोज की, वे तंत्रिकाविज्ञान कर रहे थे, इससे पूर्व कि तंत्रिकाविज्ञान के पास उसके लिए कोई भाषा हो जो वे प्रेक्षित कर रहे थे। जिसे उन्होंने प्राण का ऋत की गहनतर धाराओं के साथ सरेखण कहा, उसे हम अब उदर-वेगस तन्त्र की सक्रियता के रूप में वर्णित करते हैं। भिन्न मानचित्र। वही भू-भाग।"

तन्त्र-विज्ञान और ऋत की प्रज्ञा

"जटिल तन्त्र पेचीदा नहीं होते। वे बुद्धिमान होते हैं। उनकी अपनी व्यवस्था, अपनी प्रतिपुष्टि, अपनी स्वयं-संशोधक प्रज्ञा होती है।"

— तन्त्र-चिन्तक का प्रेक्षण

आधुनिक तन्त्र-विज्ञान मुख्यतः बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उन परिघटनाओं को समझने के एक उपाय के रूप में विकसित हुआ जिनका रैखिक, न्यूनकारी विधियों द्वारा पर्याप्त वर्णन नहीं किया जा सकता था। तन्त्र-विज्ञान ने, गणितीय और अनुभवपरक विधियों के अनुप्रयोग के माध्यम से, सिद्धान्तों का जो समुच्चय खोजा है उसे वैदिक परम्परा ने सहस्राब्दियों से गुणात्मक शब्दों में वर्णित किया था: कि जटिल तन्त्रों की अपनी व्यवस्था, अपनी प्रज्ञा, अपनी सुधारक क्रियाविधियाँ होती हैं। कि इस बुद्धिमत्ता के साथ संरेखित होने के बजाय उसे लाँघने के प्रयास सुसंगति से अनभिप्रेत परिणाम उत्पन्न करते हैं।

उद्भव और स्वयं-संगठन

उद्भव की संकल्पना — जटिल तन्त्रों में ऐसे गुणधर्मों का प्रकटन जो व्यक्तिगत घटकों में उपस्थित नहीं हैं — जटिलता-विज्ञान के केन्द्रीय निष्कर्षों में से एक है। चेतना तंत्रिका-सक्रियता से उद्भूत होती है। जीवन जैवरसायन से उद्भूत होता है। ये उद्भूत गुणधर्म वास्तविकता के सच्चे रूप से नए क्रमों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह उसका वैज्ञानिक वर्णन है कि ऋत की स्वयं-अतिक्रामी प्रवृत्ति कैसी दिखती है: समय के साथ अधिक जटिलता, अधिक एकीकरण, अधिक संगति की ओर गति, उन गुणधर्मों के उद्भव के माध्यम से जिनका केवल घटकों से पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता था।

प्रतिपुष्टि और तन्त्रों की स्वयं-संशोधक बुद्धिमत्ता

प्रतिपुष्टि — वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी तन्त्र का निर्गत उसे निवेश के रूप में लौटाया जाता है — ऋत की स्वयं-संशोधक बुद्धिमत्ता की क्रियाविधि है। जब प्रतिपुष्टि-चक्र अवरुद्ध होते हैं — जब कोई तन्त्र अपने ही निष्पादन के विषय में सटीक सूचना प्राप्त नहीं कर सकता — तो स्वयं-संशोधक सामर्थ्य निष्क्रिय हो जाता है। तन्त्र अब संशोधन नहीं कर सकता। विसरेखण अनभिज्ञात रूप से संचित होता है। यह उसका तन्त्र-विज्ञान व्याख्यान है जो तब होता है जब किसी संगठन में सत्य त्याग दिया जाता है: सटीक प्रतिपुष्टि प्रवाहित नहीं हो पाती, स्वयं-संशोधक बुद्धिमत्ता निष्क्रिय हो जाती है, और विसरेखण तब तक संचित होता है जब तक संशोधन अपरिहार्य न हो जाए।

"तन्त्र-विज्ञान और वैदिक प्रज्ञा परस्पर स्पर्धा में नहीं हैं। ये उसी भू-भाग के समानान्तर अन्वेषण हैं, भिन्न उपकरणों का उपयोग करते हुए। जहाँ ये अभिसरित होते हैं — और ये उल्लेखनीय रूप से प्रायः अभिसरित होते हैं — वहाँ हमें विशेष विश्वास हो सकता है कि हम किसी वास्तविक वस्तु को छू रहे हैं।"

अध्याय पचास

परम्पराओं में ऋतः सार्वभौमिक अभिज्ञान

"जल भिन्न होता है। प्यास एक ही है। और जो उसे बुझाता है
वह जल का नाम नहीं बल्कि स्वयं जल है।"

— सार्वभौमिक शिक्षा

ऋत और धर्म का ढाँचा मुख्यतः भारत की वैदिक और योग-परम्पराओं से लिया गया है। किन्तु जो मूलभूत प्रेक्षण यह संकेतबद्ध करता है — अस्तित्व की व्यवस्था के विषय में, चेतना की प्रकृति के विषय में, उन दशाओं के विषय में जिनके अन्तर्गत मनुष्य फलते-फूलते हैं — किसी एक परम्परा की अनन्य सम्पत्ति नहीं हैं। ये भिन्न भाषाओं और भिन्न सांस्कृतिक रूपों में, प्रायः हर परिष्कृत प्रज्ञा-परम्परा में प्रकट होते हैं जो पृथ्वी पर कहीं भी विकसित हुई है।

ताओ और ऋत

ताओ की चीनी संकल्पना — मार्ग — सम्भवतः किसी भी अन्य परम्परा में ऋत के सर्वाधिक प्रत्यक्ष समानान्तर है। ताओ अस्तित्व की अन्तर्निहित व्यवस्था है — वह सिद्धान्त जिसके द्वारा वस्तुएँ उठती, उद्धाटित होती, और लौटती हैं। वू वेई का ताओवादी आदर्श — प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप प्रवाहमान कर्म — धर्म का ताओवादी समतुल्य है। यह निष्क्रियता नहीं बल्कि ऐसा कर्म है जो वास्तविकता की धारा के विरुद्ध नहीं बल्कि उसके साथ काम करता है। ताओ ते चिंग का उस ऋषि का वर्णन जो प्रयासरत हुए बिना सम्पन्न करता है, वही चित्र है जो भगवद्गीता उस व्यक्ति का खींचती है जिसने निष्काम कर्म का साक्षात्कार किया है।

लोगोस और ऋत

यूनानी दार्शनिक परम्परा में, लोगोस की संकल्पना — समस्त वस्तुओं के अधीन वह विवेकशील सिद्धान्त, वह व्यवस्थाकारी विवेक जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड बोधगम्य है — ऋत से एक उल्लेखनीय सादृश्य रखती है। स्टोइक दार्शनिकों ने लोगोस के साथ संरेखण का एक व्यावहारिक दर्शन विकसित किया जो इस पुस्तक में वर्णित धार्मिक मार्ग के प्रत्यक्ष रूप से समानान्तर है। जो हमारे प्रभाव के भीतर है उसे उससे भेद करने का, जिसे बदला नहीं जा सकता उसके सम्मुख समता बनाए रखने का, अपने ही आन्तरिक प्रत्युत्तर की गुणवत्ता पर पूर्ण ध्यान केन्द्रित करने का स्टोइक अनुशासन — यह यूनानी दार्शनिक वेश में धार्मिक अभ्यास है।

बौद्ध धर्म में धर्म

बुद्ध का धर्म वास्तविकता की प्रकृति और अनावश्यक दुःख से मुक्ति की दशाओं के विषय में उनकी शिक्षा है। चार आर्य सत्य, बौद्ध भाषा में, ठीक उसका वर्णन करते हैं जिसका यह पुस्तक वैदिक भाषा में वर्णन करती आई है: विसंरेखण की संरचना और संरेखण का मार्ग। दुःख तृष्णा और विद्वेष से उठता है — वास्तविकता को उससे भिन्न चाहने से जो वह है। ऋत के साथ संरेखण के लिए जो है उसके विरुद्ध इस संघर्ष का निरोध आवश्यक है — उदासीनता के माध्यम से नहीं बल्कि पूर्ण उपस्थिति के उस गुण के माध्यम से जो न तो वांछित के पीछे आसक्त होता है और न ही भयभीत को दूर धकेलता है।

"वही सूर्य भिन्न भाषाओं में भिन्न रूप से वर्णित किया जाता है। किन्तु वह वही सूर्य है। ऋत कोई वैदिक आविष्कार नहीं है। यह किसी ऐसी वस्तु के लिए एक वैदिक नाम है जो इस बात की परवाह किए बिना विद्यमान है कि कोई उसे नाम देता है या नहीं। पहचान सार्वभौमिक है। केवल भाषा भिन्न होती है।"

भाग तेरह

**चेतना की पारिस्थितिकी:
प्रेम, दुःख और प्राकृतिक संसार**

अहिंसा: संरक्षण के रूप में अहिंसा

"अहिंसा केवल हानि की अनुपस्थिति नहीं है। यह एक गहन पहचान की उपस्थिति है: कि जो दूसरे को आहत करता है वह समग्र को आहत करता है, क्योंकि केवल एक ही समग्र है।"

— गांधीवादी अन्तर्दृष्टि

वैदिक और योग-परम्परा में सर्वाधिक प्रशंसित और सर्वाधिक भ्रान्ति से ग्रस्त सिद्धान्तों में से एक है अहिंसा। इसे प्रायः एक आचरणात्मक नियम के रूप में प्रस्तुत किया जाता है: हानि मत पहुँचाओ। किन्तु परम्परा की गहनतर समझ में, अहिंसा कुछ कहीं अधिक व्यापक और गहन है। यह इस पहचान की आचरणात्मक अभिव्यक्ति है कि अस्तित्व एक एकीकृत तन्त्र है। जब आप समझते हैं — सच्चे रूप से समझते हैं, केवल संकल्पनात्मक रूप से नहीं बल्कि अनुभवपरक रूप से — कि आप और वह सत्ता जिसके सम्मुख आप हैं, दोनों वही ऋत की अभिव्यक्तियाँ हैं, तो हानि की ओर का आवेग कोई अर्थ नहीं रखता। यह दाँएँ हाथ द्वारा बाएँ पर प्रहार करने जैसा है।

हिंसा, गहनतम अर्थ में, मूर्त किया गया विसंरक्षण है। यह वह है जो तब होता है जब पृथक्ता का भ्रम इतना सम्पूर्ण होता है कि दूसरे के अनुभव की वास्तविकता हानि पहुँचाने वाले को सुलभ नहीं होती। भौतिक हिंसा सर्वाधिक स्पष्ट रूप है। किन्तु परम्परा सूक्ष्मतर रूपों को पहचानती है जो साधारण जीवन में कम से कम उतने ही परिणामकारी हैं: वाणी में हिंसा — घटाने और घाव करने के लिए प्रयुक्त शब्द; विचार में हिंसा — आक्रोश, अवमानना, और निर्णय का निरन्तर मानसिक पूर्वाभ्यास।

हिंसा के ये सूक्ष्मतर रूप केवल नैतिक उल्लंघन नहीं हैं। ये व्यावहारिक समस्याएँ हैं। जो व्यक्ति दूसरों के प्रति दीर्घकालिक अवमानना पालता है वह उन दूसरों का सटीक बोध नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति का आन्तरिक जीवन आक्रोश से अभिभूत है वह सच्चे जुड़ाव के लिए

उपलब्ध नहीं है। हिंसा लौटती है — अलौकिक दण्ड के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसे बोध के अपरिहार्य परिणाम के रूप में जो इतना विकृत है कि वास्तविकता के साथ सच्चा सम्पर्क सम्भव नहीं।

अहिंसा का अभ्यास, इस समझ में, बोध का एक अभ्यास है। यह निर्णय, उपेक्षा, और अवमानना की ओर के उन सूक्ष्म आवेगों के प्रेक्षण से आरम्भ होता है जो साधारण सामाजिक जीवन में उठते हैं — और इस पहचान से कि ये आवेग विसरेखण की अभिव्यक्तियाँ हैं, सटीक बोध के लक्षण नहीं। उस पहचान से, एक परिवर्तन सम्भव हो जाता है। नैतिक प्रयास या 'बुरे' विचारों के दमन के माध्यम से नहीं, बल्कि उस स्पष्टतर दर्शन के संवर्धन के माध्यम से जो आभासी पृथक्ता के पीछे की गहनतर तदात्मता को क्रमशः प्रकट करता है।

"जब आप पर्याप्त रूप से स्पष्ट देखते हैं, तो दूसरे के प्रति हिंसा उतनी ही निरर्थक हो जाती है जितनी स्वयं के प्रति हिंसा। इसलिए नहीं कि आप आवेग को दबा रहे हैं बल्कि इसलिए कि वह विभ्रम जो उसे उत्पन्न करता है संशोधित हो चुका है। यही संरेखण की अहिंसा है।"

प्रकृति का धर्म: पारिस्थितिक संरक्षण

"हम पृथ्वी अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में नहीं पाते। हम इसे अपने बच्चों से उधार लेते हैं। और जो हम उधार लेते हैं, ऋत माँगता है कि हम उसे ब्याज सहित लौटाएँ।"

— मूल अमेरिकी प्रज्ञा

इक्कीसवीं सदी का पर्यावरणीय संकट, इस पुस्तक के दृष्टिकोण से, मानव इतिहास में ऋत के साथ विसंरक्षण की सर्वाधिक वृहत्-पैमाने की अभिव्यक्ति है। यह कोई राजनीतिक कथन नहीं है। यह एक संरचनात्मक कथन है। पारितन्त्र जटिल तन्त्र हैं जो स्वयं-संगठन, प्रतिपुष्टि, और स्वयं-संशोधन के उन्हीं सिद्धान्तों से शासित हैं जो समस्त ऋत-शासित तन्त्रों का शासन करते हैं। जब इन तन्त्रों के निवेश — वे रासायनिक और भौतिक परिवर्तन जो मानव-सक्रियता लाती है — उस परास से अधिक हो जाते हैं जिसके भीतर इन तन्त्रों की स्वयं-संशोधक क्रियाविधियाँ कार्य कर सकती हैं, तो तन्त्र नई सन्तुलन-अवस्थाओं की ओर मुड़ जाते हैं।

ऋत की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकृति

एक वन दृश्य किया गया ऋत है। मृदा-सूक्ष्मजीव और पादप-जड़ों के बीच, परभक्षी और शिकार के बीच, अपघटकों और उत्पादकों के बीच, वायुमण्डलीय चक्रों और जैविक चक्रों के बीच सम्बन्धों का जटिल जाल — यह पारितन्त्र-पैमाने पर कार्यरत ऋत की स्वयं-संगठनकारी, स्वयं-संशोधक, स्वयं-अतिक्रामी बुद्धिमत्ता है। इस बुद्धिमत्ता के साथ सम्पर्क — प्राकृतिक परिवेशों में समय, अमानवीय संसार पर सच्चा ध्यान — केवल सुखद नहीं है। यह संरक्षण-अभ्यास का एक रूप है। यह ऋत का उसके सर्वाधिक सुपाठ्य रूप में प्रत्यक्ष बोध है।

प्रकृति में बिताए गए समय के मानसिक स्वास्थ्य-लाभों पर अनुसन्धान विस्तृत और सुसंगत है: प्राकृतिक परिवेशों का सम्पर्क कॉर्टिसोल स्तर को घटाता है, चिन्तन-मनन को

घटाता है, निर्दिष्ट ध्यान की क्षमता को पुनर्स्थापित करता है, मनोदशा और कल्याण को सुधारता है। ऋत की इस अनुपाधिक अभिव्यक्ति की उपस्थिति में, तंत्रिका-तन्त्र शिथिल हो जाता है। नगरीय और डिजिटल जीवन का अत्यधिक राजसिक सक्रियण बैठने लगता है। जैविक तन्त्र की स्वाभाविक सुधारक प्रवृत्ति को कार्य करने के लिए अवकाश मिल जाता है।

हमारे क्षण का पर्यावरणीय धर्म

वर्तमान ऐतिहासिक क्षण में पर्यावरणीय संलग्नता का धर्म केवल प्रकृति में समय बिताने का व्यक्तिगत अभ्यास नहीं है, यद्यपि यह मूल्यवान है। यह मानव सभ्यता के उत्पादन और उपभोग के प्रतिरूपों को उन पारिस्थितिक तन्त्रों की वास्तविक सीमाओं और लयों के साथ संरेखित करने की सामूहिक चुनौती है जो उसे टिकाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जो ऋत के पारिस्थितिक आयाम के साथ अपने विसरेखण को घटाता है — जो ऐसे चयन करता है जो अनावश्यक उपभोग को घटाते हैं, जो प्राकृतिक तन्त्रों के साथ निष्कर्षक के बजाय पुनरुद्भावक सम्बन्धों का संपोषण करता है — वर्तमान ऐतिहासिक क्षण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धार्मिक चुनौती में सहभागी हो रहा है।

"पृथ्वी आपका संसाधन नहीं है। यह आपका उद्गम है। वे नदियाँ और वन और मृदाएँ जो आपको टिकाती हैं, वही ऋत की अभिव्यक्तियाँ हैं जो आपके हृदय-स्पन्दन को टिकाता है। जब आप उनके साथ विसरेखित होते हैं, तो आप स्वयं के साथ विसरेखित होते हैं। यह कविता नहीं है। यह संरचनात्मक वास्तविकता है।"

अध्याय तिरेपन

सर्वोच्च संरेखण के रूप में प्रेम

"प्रेम कोई भाव नहीं है। यह एक बोध है — दूसरे को उसी व्यवस्था की अभिव्यक्ति के रूप में प्रत्यक्ष देखना जो आप हैं।"

— अद्वैत-शिक्षा

उन समस्त मानव अनुभवों में से जो सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप से ऋत के साथ संरेखण की ओर संकेत करते हैं, प्रेम सर्वाधिक सार्वभौमिक और सर्वाधिक गहन है। प्रेम उस अर्थ में नहीं जो रोमांचक आसक्ति या वह उष्ण अनुभूति है जो उन लोगों के प्रति उठती है जिन्हें हम पसन्द करते हैं और तब लुप्त हो जाती है जब वे हमें निराश करते हैं। बल्कि प्रेम उस अर्थ में जो बोध का वह गुण है जो किसी अन्य व्यक्ति के सतह के पार उस ऋत को देखता है जो उनमें स्वयं को अभिव्यक्त करता है — वही ऋत जो आपमें स्वयं को अभिव्यक्त करता है।

सच्चे प्रेम के क्षणों में — उस अनधिकारी, अनुपाधिक गुण के जिसे परम्परा संस्कृत में प्रेम कहती है — स्व और अन्य के बीच पृथक्ता का सामान्य बोध आंशिक या पूर्णतः निलम्बित हो जाता है। वह सीमा जो यह परिभाषित करती है कि आप कहाँ समाप्त होते हैं और दूसरा कहाँ आरम्भ होता है, पारगम्य हो जाती है। जो दूसरा अनुभव करता है वह अनुभव होता है। जो दूसरे को आवश्यक है वह उतना ही प्रत्यक्ष रूप से महत्त्व रखता है जितना जो आपको आवश्यक है। पृथक्ता के सामान्य बोध का यह निलम्बन स्व की हानि नहीं है। यह स्व की सीमा का किसी अन्य को सम्मिलित करने के लिए विस्तार है, या — अपनी गहनतम अवस्था में — यह पहचान कि सीमा सदा एक परिपाटी थी, कभी गहनतम सत्य नहीं।

प्रेम और ऋत

प्रेम — शुद्ध, अनुपाधिक प्रेम — भक्ति-परम्परा में धर्म की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के रूप में समझा जाता है। यह वह है जो स्वाभाविक रूप से तब उठता है जब व्यष्टि चेतना, चाहे

कितनी ही आंशिक रूप से, सार्वभौम के साथ अपनी तदात्मता को पहचानती है। इस पुस्तक की भाषा में: प्रेम इस पहचान की भावनात्मक अभिव्यक्ति है कि आप ऋत की एक अभिव्यक्ति हैं और हर कोई भी है। यह उस संरचनात्मक वास्तविकता का अनुभूति-गुण है जिसका यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे वर्णन करता है: कि जो व्यष्टि में है वही ब्रह्माण्ड में है, कि सत्ताओं के बीच पृथक्ता एक कार्यात्मक वर्णन के रूप में वास्तविक है किन्तु जो है उसके गहनतम विवरण के रूप में वास्तविक नहीं।

प्रेम को विकसित करने का अभ्यास उष्ण अनुभूतियाँ गढ़ने का अभ्यास नहीं है। यह उन अवरोधों को उत्तरोत्तर हटाने का अभ्यास है — प्रक्षेपण, संस्कार, आत्म-रक्षाएँ, भय — जो जुड़ाव की ओर की उस स्वाभाविक गति को रोकते हैं जो प्रत्येक मनुष्य में पहले से ही उपस्थित है। जब अवरोध घटते हैं, तो प्रेम कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे आप उत्पन्न करते हैं। यह कोई ऐसी वस्तु है जिसे आप प्रकट करते हैं — कुछ ऐसा जो पहले से ही वहाँ था, संस्कारित पृथक्करण की परतों के नीचे प्रतीक्षा करता हुआ।

"प्रेम किसी अन्य सत्ता में ऋत का प्रत्यक्ष बोध है। यह वह है जो तब उठता है जब भय, इच्छा, और प्रक्षेपण की सामान्य विकृतियाँ पर्याप्त रूप से घट जाती हैं। इसे गढ़ा नहीं जा सकता। इसे केवल उद्घाटित किया जा सकता है।"

अध्याय चौवन

सन्तोषः सन्तुष्टि का संरक्षण

"सन्तोष इच्छा की अनुपस्थिति नहीं है। यह पर्याप्तता की उपस्थिति है — यह पहचान कि जो है, इस क्षण में, इस क्षण के प्रयोजन के लिए पर्याप्त है।"

— योग-शिक्षा

नियमों में — पतंजलि के अष्टांग योग में व्यक्तिगत आचरण — सन्तोष सम्भवतः उस संस्कृति में सर्वाधिक प्रतिसहज के रूप में उभरता है जो इच्छा के निरन्तर वर्धन और एक वाणिज्यिक रणनीति के रूप में असन्तोष के व्यवस्थित संवर्धन से परिभाषित है। सन्तोष त्याग नहीं है। यह अनावश्यक दुःख की निष्क्रिय स्वीकृति या आकांक्षा और प्रयास का परित्याग नहीं है। यह वर्तमान क्षण के प्रति आन्तरिक झुकाव का एक विशिष्ट गुण है — एक ऐसा गुण जो आन्तरिक शान्ति के उपलब्ध होने के लिए वर्तमान क्षण से यह अपेक्षा नहीं करता कि वह उससे भिन्न हो जो वह है।

भेद सूक्ष्म किन्तु निर्णायक है। सन्तोष-रहित व्यक्ति केवल तभी शान्त हो सकता है जब उसके जीवन की दशाएँ उसकी रुचियों से मेल खाती हों। उसकी आन्तरिक अवस्था उन परिस्थितियों की बन्धक होती है जिन्हें वह पूर्णतः नियन्त्रित नहीं कर सकता। सन्तोष का अभ्यास करने वाला व्यक्ति जो भी परिस्थितियाँ उठें उनका सामना आन्तरिक स्थिरता के एक ऐसे गुण से कर सकता है जो उन परिस्थितियों से यह अपेक्षा नहीं करता कि वे उससे भिन्न हों जो वे हैं। यह परिणामों के प्रति उदासीनता नहीं है। यह इस अपेक्षा से स्वतन्त्रता है कि परिणाम आन्तरिक अवस्था को निर्धारित करें।

सन्तोष और आकांक्षा का विरोधाभास

सन्तोष की एक सामान्य भ्रान्ति यह है कि यह आकांक्षा से असंगत है — कि सन्तुष्ट व्यक्ति अभिप्रेरित व्यक्ति नहीं होता। यह भ्रान्ति दो भिन्न प्रकार की अभिप्रेरणाओं के बीच एक

उलझन से उठती है। पहली असन्तोष से उठती है — इस अन्तराल की पीड़ा से कि चीजें कैसी हैं और उन्हें कैसा चाहा जाता है। दूसरी स्पष्टता से उठती है — इसके सच्चे बोध से कि क्या आवश्यक है और क्या किसी के धर्म की एक प्रामाणिक अभिव्यक्ति का गठन करेगा। यह अभिप्रेरणा असन्तोष पर निर्भर नहीं है। यह इसके साथ संरेखण से उठती है जो सत्य है और जो आवश्यक है, इससे स्वतन्त्र कि वर्तमान परिस्थिति पीड़ादायक अनुभव की जाती है या सुखदा।

सच्चे सन्तोष की अवस्था में स्थित व्यक्ति अपार ऊर्जा और एकाग्रता के साथ कर्म कर सकता है जब कर्म सच्चे रूप से अपेक्षित हो — इसलिए नहीं कि वह लक्ष्य की अनुपस्थिति से पीड़ित है बल्कि इसलिए कि वह स्पष्ट देखता है कि धार्मिक कर्म क्या माँगता है। और वह समान सम्पूर्णता के साथ विश्राम कर सकता है जब विश्राम वह है जो परिस्थिति माँगती है। न तो कर्म और न ही विश्राम अतृप्त इच्छा की बेचैनी से संचालित होते हैं।

"सन्तोष का व्यक्ति निष्क्रिय नहीं होता। वह संरेखित होता है। और संरेखण से, कर्म और विश्राम दोनों समान स्वाभाविकता के साथ उठते हैं, सही समय पर, सही मात्रा में, उस बाध्यकारी गुण के बिना जो इच्छा से संचालित कर्म को चिह्नित करता है।"

डिजिटल युग का धर्म

"प्रत्येक युग के अपने विशिष्ट विसरेखण-रूप होते हैं।
हमारा है असीमित सूचना और सीमित प्रज्ञा का विसरेखण।"

— समकालीन प्रेक्षण

हम एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक क्षण में जीते हैं। डिजिटल क्रान्ति ने मानवीय ध्यान, सम्बन्ध, सूचना, और पहचान की दशाओं को मूलभूत रूप से ऐसे ढंगों से परिवर्तित कर दिया है जिनका प्रज्ञा-परम्पराएँ पूर्वानुमान नहीं कर सकती थीं। ऋतु ऐतिहासिक युगों के साथ नहीं बदलता। किन्तु उन सिद्धान्तों के साथ सरेखण डिजिटल जीवन की विशिष्ट दशाओं में स्वयं को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है, इसके लिए नई समझ आवश्यक है।

विकर्षण के युग में ध्यान

मानव ध्यान-तन्त्र लाखों वर्षों में एक जटिल किन्तु सीमित प्राकृतिक परिवेश में मार्ग खोजते एक आहार-संग्राहक की आवश्यकताओं की सेवा के लिए विकसित हुआ। यह नवीनता का पता लगाने, संकटों की निगरानी करने, तत्काल प्रासंगिक पर केन्द्रित होने के लिए अभिकल्पित है। सोशल मीडिया मंचों, अनुशंसा-कलनविधियों, सूचना-संकेत तन्त्रों का अभिकल्प — ये सब ठीक इन्हीं विकसित ध्यान-तन्त्रों को उद्दीप्त करने के लिए अभियान्त्रित हैं। परिणाम एक ऐसा परिवेश है जो ध्यान के उस सतत, अप्रतिक्रियात्मक गुण के साथ कार्यात्मक रूप से असंगत है जिसकी धार्मिक कर्म को आवश्यकता होती है। डिजिटल संसार में सरेखण के मार्ग के लिए तकनीक की अस्वीकृति नहीं, बल्कि उसके साथ अपने सम्बन्ध के सचेत प्रबन्धन की आवश्यकता है।

प्रदर्शन के युग में पहचान

सोशल मीडिया ने पहचान के प्रदर्शन और प्रबन्धन के लिए एक अभूतपूर्व परिवेश रच दिया है। कोई व्यक्ति अपनी पहचान के प्रदर्शन के प्रबन्धन में जितना अधिक समय और ऊर्जा निवेश करता है, वह आन्तरिक ईमानदारी के उस गुण से उतना ही दूर हट जाता है जिसकी सच्चे संरेखण को आवश्यकता होती है। डिजिटल युग में सत्य का अर्थ है ऑनलाइन संचार में अपने एक सम्पादित संस्करण का प्रदर्शन करने के बजाय सच्चे रूप से उपस्थित होने की तत्परता।

आधुनिक धर्म के रूप में गहन कार्य

सतत विकर्षण के परिवेश में, माँगपूर्ण कार्य के साथ सतत, केन्द्रित संलग्नता का सामर्थ्य एक साथ अधिक विरल और अधिक मूल्यवान हो गया है। ऋत-ढाँचे से, गहन कार्य केवल संज्ञानात्मक संलग्नता में सत्त्व की अभिव्यक्ति है। यह सच्चे महत्त्व के किसी कार्य पर अविभाजित ध्यान का सतत अनुप्रयोग है। गहन कार्य की दशाएँ रचना और उनकी रक्षा करना, इस पुस्तक की भाषा में, धार्मिक संरेखण की एक क्रिया है — उन दशाओं पर आग्रह जिनकी जैविक और संज्ञानात्मक ऋत को सच्चे बौद्धिक कार्य के लिए आवश्यकता होती है।

"डिजिटल युग में, सतत ध्यान स्वयं एक आध्यात्मिक अभ्यास है। एक वस्तु के प्रति पूर्णता से उपस्थित होने का सामर्थ्य, एक ऐसे संसार में जो उसे रोकने के लिए अभिकल्पित है, मन के उस सात्त्विक गुण की आधुनिक अभिव्यक्ति है जिसे प्रत्येक प्रज्ञा-परम्परा सच्ची प्रज्ञा की पूर्वशर्त के रूप में वर्णित करती है।"

भाग चौदह

आन्तरिक रूपान्तरण का विज्ञान

अध्याय छप्पन

आदत-परिवर्तन का तंत्रिकीय आधार

"हम वही हैं जो हम बार-बार करते हैं। तब उत्कृष्टता कोई कर्म नहीं,
बल्कि एक आदत है।"

— अरस्तू

ऋत और धर्म की समझ से उठने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्न दार्शनिक नहीं है। यह तंत्रिकीय है। मनुष्य बोध और प्रत्युत्तर के अभ्यस्त प्रतिरूपों को वस्तुतः कैसे बदलता है? विसंख्य की सैद्धान्तिक समझ भिन्न चयनों, भिन्न प्रतिक्रियाओं, ध्यान की भिन्न गुणवत्ताओं की जिई गई वास्तविकता में कैसे अनूदित होती है? उत्तर, जो तंत्रिकाविज्ञान अनुसन्धान के दशकों में विकसित हुआ, एक साथ उत्साहवर्धक और माँगपूर्ण है।

मस्तिष्क उपयोग से बदलता है। यह तंत्रिका-सुनम्यता अनुसन्धान का केन्द्रीय निष्कर्ष है, और इस पुस्तक में वर्णित अभ्यासों के लिए इसके निहितार्थ गहन हैं। हर बार जब आप किसी कठिन परिस्थिति के प्रति प्रत्युत्तर देने से पूर्व एक सचेत श्वास लेते हैं, तो आप केवल एक क्षण का प्रबन्धन नहीं कर रहे होते। आप एक तंत्रिका-पथ को सुदृढ़ कर रहे होते हैं। हर बार जब आप किसी भाव में पूर्णतः बह जाने के बजाय उसका प्रेक्षण करना चुनते हैं, तो आप उन प्रीफ्रन्टल नेटवर्कों को सुदृढ़ कर रहे होते हैं जो उस प्रेक्षण को सम्भव बनाते हैं। हर बार जब आप उस पर ईमानदार ध्यान लाते हैं जो वस्तुतः घटित हो रहा है, बजाय उसके जो आपका संस्कार मान लेता है कि घटित हो रहा है, तो आप उस बोधात्मक अवसंरचना का पुनर्निर्माण कर रहे होते हैं जिसके माध्यम से वास्तविकता आप तक पहुँचती है।

यह रूपक नहीं है। स्वयं-नियमन, भावनात्मक सुनम्यता, और अधिसंज्ञानात्मक सजगता से सम्बद्ध तंत्रिका-परिपथ उन अभ्यासों के माध्यम से प्रमाणित रूप से सुदृढ़ होते हैं जो उनका व्यायाम करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे माँसपेशियाँ व्यायाम से सुदृढ़ होती हैं। सुदृढ़ीकरण क्रमिक है। यह दिन-प्रतिदिन सदा दृश्य नहीं होता। किन्तु सप्ताहों और महीनों और वर्षों में, यह किसी

ऐसी वस्तु में संचित होता है जिसे उचित रूप से चरित्र का रूपान्तरण कहा जा सकता है — व्यक्तित्व में परिवर्तन नहीं बल्कि अनुभव के साथ किसी की संलग्नता की स्वतःमान्य गुणवत्ता में परिवर्तन।

*
**

इसका विपरीत पक्ष समान रूप से महत्वपूर्ण है। हर बार जब आप किसी उद्दीपक परिस्थिति के प्रति स्वचालित रूप से प्रतिक्रिया करते हैं — हर बार जब संस्कारित प्रतिक्रिया सजगता के किसी अन्तराल के बिना सक्रिय होती है — तो आप उस स्वचालित प्रतिक्रिया के तंत्रिका-पथ को सुदृढ़ करते हैं। ख़ाँचा गहरा होता है। प्रतिरूप अधिक स्वचालित हो जाता है। संस्कार, योग की भाषा में, अधिक गहराई से अंकित हो जाता है। यह निराशा का कारण नहीं बल्कि सटीक समझ का कारण है। आप सदा कुछ-न-कुछ अभ्यास कर रहे होते हैं। प्रश्न यह है कि क्या आप उसका अभ्यास कर रहे हैं जिसे आप गहरा करना चाहते हैं।

पुनरावृत्ति की भूमिका

पुनरावृत्ति तंत्रिका-परिवर्तन की क्रियाविधि है। एक बार किया गया अभ्यास, चाहे महान तीव्रता के साथ भी, उससे कम बदलता है जो अभ्यास महीनों तक सुसंगति से किया जाता है। यही कारण है कि परम्पराएँ सुसंगति से कभी-कभार के सघन एकान्तवास पर दैनिक अभ्यास को बल देती हैं। प्रत्येक प्रातः कुछ मिनटों का सचेत श्वास-ध्यान, एक वर्ष तक बनाए रखा गया, तंत्रिका-तन्त्र का एक अकेले सघन सप्ताहान्त से अधिक रूपान्तरण उत्पन्न करता है। मस्तिष्क केवल तीव्रता की अपेक्षा आवृत्ति और सुसंगति के प्रति अधिक प्रत्युत्तर देता है।

यह समझ यह आकार देनी चाहिए कि आप इस पुस्तक में वर्णित अभ्यासों के प्रति किस प्रकार पहुँचते हैं। शीघ्रता से प्राप्त नाटकीय रूपान्तरण की महत्वाकांक्षा के साथ नहीं, बल्कि सुसंगति से उपस्थित होने, संयम से और नियमित रूप से अभ्यास करने, यह स्वीकार करने की धैर्यपूर्ण तत्परता के साथ कि परिवर्तन घटित हो रहा है तब भी जब यह अभी दृश्य नहीं है। नदी घाटी को एक महान बाढ़ के माध्यम से नहीं बल्कि दैनिक प्रवाह की धैर्यपूर्ण दृढ़ता के माध्यम से तराशती है। संरेखण के अभ्यास तंत्रिका-तन्त्र में नए मार्ग दैनिक ध्यान की धैर्यपूर्ण दृढ़ता के माध्यम से तराशते हैं।

तंत्रिकीय ग्रहणशीलता की खिड़की

तंत्रिकाविज्ञान ने चेतना की विशेष अवस्थाओं को पहचाना है जो नए अधिगम और तंत्रिका-परिवर्तन के प्रति विशेष रूप से ग्रहणशील हैं। ये अवस्थाएँ उद्दीपन के एक मध्यम स्तर से लक्षित होती हैं — न थकान या ऊब का निम्न उद्दीपन और न चिन्ता या तनाव का उच्च उद्दीपन, बल्कि शान्त, संलग्न ध्यान का मध्य परास जो शारीरिक रूप से मन के उस सात्त्विक गुण से मेल खाता है जिसे योग-परम्परा ने सदा अधिगम और विकास की अनुकूलतम अवस्था के रूप में पहचाना है।

श्वास और सजगता के अभ्यास केवल शान्तिकारी तकनीकें नहीं हैं। ये तंत्रिकीय ग्रहणशीलता की इस अनुकूलतम अवस्था में प्रवेश करने और उसे टिकाने की प्रौद्योगिकियाँ हैं। जब आप महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ करने से पूर्व सचेत श्वसन का अभ्यास करते हैं, तो आप केवल तनाव नहीं घटा रहे होते। आप अपने तंत्रिका-तन्त्र को उस अवस्था में स्थानान्तरित कर रहे होते हैं जिसमें नया अधिगम, नया बोध, और सच्चा व्यवहारगत परिवर्तन सर्वाधिक सम्भव हैं। यह दैनिक अभ्यास बनाए रखने के सर्वाधिक व्यावहारिक कारणों में से एक है, चाहे वह कितना ही संक्षिप्त हो। आप नियमित रूप से उस तंत्रिकीय अवस्था की ओर लौट रहे होते हैं जिसमें परिवर्तन सर्वाधिक उपलब्ध, सर्वाधिक सुलभ, सर्वाधिक वास्तविक है।

"सच्ची सजगता का प्रत्येक क्षण तंत्रिकीय पुनर्संरचना का एक क्षण है। मस्तिष्क का अनुभव द्वारा निरन्तर पुनर्निर्माण हो रहा है। एकमात्र प्रश्न यह है कि वह पुनर्निर्माण सचेत रूप से हो रहा है या स्वचालित ढंग से।"

भाव सूचना के रूप में, पहचान के रूप में नहीं

"आप अपने भाव नहीं हैं। आप वह सजगता हैं जिसमें भाव उठते हैं।

यह भेद ही सब कुछ है।"

— वेदान्तिक अन्तर्दृष्टि

साधारण मानव अनुभव में सर्वाधिक परिणामकारी उलझनों में से एक है भाव को पहचान के साथ समीकृत करना। जब क्रोध उठता है, तो अधिकांश लोग उसे 'मैं क्रोधित हूँ' के रूप में अनुभव करते हैं — एक ऐसी अवस्था के रूप में जिसमें वे हैं, पूर्णतः, बिना किसी शेष के। जब भय उठता है, तो यह 'मैं भयभीत हूँ' है। भाव और स्व पहचान लिए जाते हैं। अनुभवकर्ता और अनुभव के बीच की सीमा विलीन हो जाती है। और उस तदात्मता से, प्रत्युत्तर सम्भव नहीं। केवल प्रतिक्रिया।

चिन्तन-परम्पराएँ समान रूप से भाव के साथ एक भिन्न सम्बन्ध की ओर संकेत करती हैं: भाव का दमन नहीं — जो उसे केवल भूमिगत कर देता है जहाँ वह सचेत पहचान के लाभ के बिना आचरण को प्रभावित करता रहता है — बल्कि भाव का साक्षी होना। किसी भाव की पूर्ण तीव्रता का अनुभव करने का सामर्थ्य, साथ ही उस पर पर्याप्त परिप्रेक्ष्य बनाए रखते हुए कि वह क्या संवाद कर रहा है यह पहचाना जा सके और ऐसा प्रत्युत्तर चुना जा सके जो अनुभूति की तीव्रता के बजाय वास्तविक परिस्थिति के अनुरूप अंशशोधित हो।

यह कोई उन्नत आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं है जो वर्षों के सघन अभ्यास के लिए आरक्षित हो। यह एक ऐसा सामर्थ्य है जो श्वास-केन्द्रित सजगता के पहले सुसंगत अभ्यास के साथ विकसित होने लगता है। हर बार जब आप किसी भाव को उठते लक्षित करते और उसे नाम देते हैं — भीतर ही भीतर भी, केवल इस मौन पहचान के रूप में भी कि 'यह क्रोध है' या 'यह भय है' — तो आपने सजगता और भाव के बीच एक हल्का किन्तु वास्तविक पृथक्करण प्रस्तुत कर दिया है। अब आप पूर्णतः वह भाव नहीं रह जाते। आप, किसी छोटी मात्रा तक, उसका साक्षी हो रहे हैं।

**

ऋत के सन्देशवाहकों के रूप में भाव

ऋत-ढाँचे में, भाव प्रबन्धित की जाने वाली समस्याएँ या पार की जाने वाली बाधाएँ नहीं हैं। ये सूचना हैं। विशेष रूप से, ये आत्मनिष्ठ अनुभव के क्षेत्र में कार्यरत ऋत के संकेत हैं। क्रोध किसी महत्वपूर्ण वस्तु के बोधित उल्लंघन का संकेत देता है। भय एक बोधित संकट का संकेत देता है। शोक हानि का संकेत देता है। आनन्द संरेखण का संकेत देता है। प्रत्येक भाव इस विषय में कुछ संवाद कर रहा है कि जो घटित हो रहा है और जो महत्व रखता है उसके बीच क्या सम्बन्ध है।

समस्या स्वयं भाव नहीं है। समस्या संस्कार द्वारा भाव की विकृति है। संस्कारित क्रोध — ऐसा क्रोध जो वास्तविक उल्लंघन के अनुपात से बाहर है, विगत घावों के सहचर्यों से उद्दीप्त, आक्रोश के अभ्यस्त प्रतिरूपों से प्रवर्धित — अब सटीक सूचना नहीं रह जाता। यह कोलाहल बन गया है। संस्कारित भय — ऐसा भय जो उन परिस्थितियों के प्रत्युत्तर में स्वचालित रूप से सक्रिय होता है जो केवल सतही रूप से सच्चे संकटों से मिलती हैं — अब कोई उपयोगी संकेत नहीं रह जाता। यह अतीत है जो अपने प्रतिरूप वर्तमान पर थोप रहा है, उस सटीक बोध को रोकता हुआ जिसकी वर्तमान क्षण को वस्तुतः आवश्यकता होती है।

भाव के साथ कार्य करने का अभ्यास संकेत को कोलाहल से भेद करने का अभ्यास है — भावनात्मक प्रत्युत्तर पर पर्याप्त परिप्रेक्ष्य विकसित करने का ताकि पूछा जा सके: क्या यह भाव इसके अनुपात में है जो वस्तुतः यहाँ घटित हो रहा है? क्या यह वर्तमान परिस्थिति के विषय में एक सच्चा संकेत है, या यह एक ऐसे अतीत से संस्कारित कोलाहल है जो अब प्रासंगिक नहीं? ये प्रश्न भाव के भीतर से एक तदात्म अवस्था के रूप में नहीं पूछे जा सकते। इनके लिए वह हल्की किन्तु निर्णायक दूरी आवश्यक है जो साक्षी-गुण प्रदान करता है।

भावनात्मक बुद्धिमत्ता के रूप में शरीर

भाव के साथ कार्य करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यावहारिक अन्तर्दृष्टियों में से एक यह पहचान है कि भाव केवल मानसिक घटनाएँ नहीं हैं। ये दैहिक घटनाएँ हैं — ऐसी घटनाएँ जो मन में भी और शरीर में भी घटित होती हैं। चिन्ता में छाती का कसना। क्रोध के साथ चेहरे की गर्मी। शोक के साथ उदर में भारीपन। आनन्द के साथ अंगों में हल्कापन। ये दैहिक चिह्न केवल भाव के साथ-साथ चलने वाले नहीं हैं। ये ही भाव हैं, दैहिक अनुभव के स्तर पर।

और यह व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि शरीर इसका एक अधिक तत्काल और अधिक विश्वसनीय सूचक है कि वस्तुतः क्या घटित हो रहा है, बजाय चिन्तनशील मन के। शरीर उस ढंग से झूठ नहीं बोलता जिस ढंग से चिन्तनशील मन झूठ बोल सकता है — आख्यान गढ़ते हुए, औचित्य देते हुए, टाल जाते हुए। जब आप किसी भाव के दैहिक आयाम पर ध्यान लाते हैं — जब आप अनुभव करते हैं कि वह शरीर में कहाँ निवास कर रहा है, उसका क्या गुण है, ज्यों-ज्यों आप उस पर ध्यान देते हैं वह कैसे बदलता है — तो आप अपनी वास्तविक अवस्था के विषय में ऐसी सूचना तक पहुँच रहे होते हैं जो अकेला संकल्पनात्मक मन प्रदान नहीं कर सकता।

"भाव आपके शत्रु नहीं हैं। ये आपके शिक्षक हैं। किन्तु सभी अच्छे शिक्षकों की भाँति, इन्हें एक ऐसे विद्यार्थी की आवश्यकता होती है जो यह सुनने के लिए पर्याप्त उपस्थित हो कि क्या कहा जा रहा है, और सच्चे पाठ को पुराने संस्कार के कोलाहल से भेद करने के लिए पर्याप्त बुद्धिमान हो।"

अध्याय अष्टावन्

वैराग्यः अनासक्ति की कला

"वैराग्य उदासीनता नहीं है। यह स्वतन्त्रता है — जो है उसके साथ पूर्णता से उपस्थित रहने की स्वतन्त्रता, इस आसक्ति की विकृति के बिना कि आप उसे कैसा चाहते हैं।"

— योग-शिक्षा

योग-मार्ग की मूलभूत संकल्पनाओं में, वैराग्य — अनासक्ति — सम्भवतः सर्वाधिक बार-बार भ्रान्ति से ग्रस्त है। इसे या तो जीवन से एक भावनात्मक प्रत्याहरण के अर्थ में लिया जाता है — लोगों और परिणामों के प्रति एक शीतल, दूरस्थ उदासीनता — या इसे व्यावहारिक रूप से प्रासंगिक होने के लिए अति माँगपूर्ण और स्वाभाविक मानवीय अनुभूति के अति विपरीत कहकर खारिज कर दिया जाता है। दोनों भ्रान्तियाँ वास्तविक शिक्षा से पूर्णतः चूक जाती हैं।

वैराग्य का अर्थ परवाह न करना नहीं है। इसका अर्थ है आसक्त न होना। और परवाह करने तथा आसक्त होने के बीच का भेद सम्पूर्ण धार्मिक शब्दावली में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण में से एक है। परवाह किसी ऐसी वस्तु की ओर ध्यान और ऊर्जा का सच्चा झुकाव है जो महत्त्व रखती है — एक व्यक्ति, एक परियोजना, एक परिणाम, एक मूल्य। यह धार्मिक है। यह जो सच्चे रूप से महत्त्वपूर्ण है उसके साथ किसी के सम्बन्ध की उपयुक्त अभिव्यक्ति है। आसक्ति परवाह में इस माँग का जुड़ना है कि परवाह की वस्तु ठीक वैसी ही बनी रहे जैसी वह है, न बदले, न खोई जाए। यह उस अनित्यता को स्वीकार करने से अस्वीकृति है जिसे ऋत अपने समस्त रूपों में अभिव्यक्त करता है।

परवाह करने और आसक्त होने के बीच जिए गए अनुभव में अन्तर अपार है। जो व्यक्ति आसक्त हुए बिना परवाह करता है वह किसी ऐसे व्यक्ति के साथ पूर्णता से उपस्थित हो सकता है जिससे वह प्रेम करता है, ऐसे कार्य के साथ पूर्णता से संलग्न जिसे वह सार्थक पाता है, उन परिणामों में पूर्णता से निवेशित जिनकी ओर वह कार्य कर रहा है — और साथ ही, तब विध्वस्त

नहीं होता जब व्यक्ति बदलता है, जब कार्य एक अप्रत्याशित दिशा लेता है, जब परिणाम उससे भिन्न होता है जिसकी आशा थी। संलग्नता की पूर्णता आसक्ति से स्वतन्त्रता द्वारा घटती नहीं। यदि कुछ है, तो वह बढ़ती है, क्योंकि वह ऊर्जा जो अन्यथा हानि की चिन्ता के प्रबन्धन में जाती, सच्ची उपस्थिति के लिए मुक्त हो जाती है।

**

आसक्ति और दुःख

दुःख का बौद्ध विश्लेषण आसक्ति को उसकी प्राथमिक क्रियाविधि के रूप में पहचानता है। स्वयं इच्छा नहीं — कर्म करने की, रचने की, जुड़ने की, योगदान करने की इच्छा स्वाभाविक और अनुकूल है। किन्तु आसक्ति की अतिरिक्त परत — यह माँग कि जो वांछित है वह प्राप्त किया ही जाना चाहिए और एक बार प्राप्त हो जाने पर खोया नहीं जाना चाहिए — वह क्रियाविधि है जो साधारण इच्छा को दुःख के एक स्रोत में रूपान्तरित कर देती है।

ऋत-ढाँचे में, आसक्ति विसरेखण का एक रूप है। यह उसे स्थिर करने का प्रयास है जिसे ऋत प्रवाह के रूप में अभिव्यक्त करता है। अभिव्यक्त संसार में हर वस्तु बदलती है। हर वस्तु जिसका आरम्भ है उसका अन्त है। जो स्वभाव से अस्थायी है उसे स्थायी रूप से धारण करने का प्रयास केवल व्यर्थ नहीं है — यह थकाने वाला है। यह उस ऊर्जा का उपभोग करता है जो अन्यथा उसके साथ सच्ची संलग्नता के लिए उपलब्ध हो सकती थी जो अभी उपस्थित है। वैराग्य इसके प्रति व्यावहारिक प्रत्युत्तर है: प्रवाह का दमन नहीं बल्कि स्थायित्व की माँग का त्याग। रुचि का उन्मूलन नहीं बल्कि यह स्वीकृति कि परिणाम रुचि के अनुरूप न हों।

व्यवहार में वैराग्य

वैराग्य का अभ्यास विराट् त्यागों से आरम्भ नहीं होता। यह दैनिक जीवन के उन क्षणों की छोटी, पुनरावृत्त पहचान से आरम्भ होता है जब आसक्ति अनावश्यक दुःख रच रही होती है। वह बैठक जो योजना के अनुसार नहीं हुई। वह व्यक्ति जिसने आशा के अनुसार प्रत्युत्तर नहीं दिया। वह परियोजना जिसने प्रत्याशित से भिन्न दिशा ली। इनमें से प्रत्येक साधारण क्षण में, एक चयन है: जो चाहा गया और जो है उसके बीच के अन्तराल का सामना प्रतिरोध और दुःख से करना, या उसका सामना उस समता से करना जिसे ऋत की सटीक समझ सम्भव बनाती है।

यह त्याग नहीं है। यह प्रयास या आकांक्षा का परित्याग नहीं है। यह प्रयास और आकांक्षा का एक ऐसे संसार की वास्तविक दशाओं के साथ संरक्षण है जिसमें परिवर्तन ही एकमात्र स्थिरांक है। जिस व्यक्ति ने सच्चा वैराग्य विकसित किया है वह कम परिश्रम नहीं करता या कम गहराई से परवाह नहीं करता। वह अपरिहार्य के प्रति प्रतिरोध के अपव्ययी घर्षण के बिना काम करता है, और वह अनित्य से स्थायित्व माँगने के स्वयं-आरोपित दुःख के बिना परवाह करता है।

"सच्ची स्वतन्त्रता वह सब पाने की स्वतन्त्रता नहीं है जो आप चाहते हैं। यह जो है उसके साथ पूर्णता से उपस्थित रहने की स्वतन्त्रता है, यह माँगने की विकृति के बिना कि वह भिन्न हो। यही वैराग्य है। और यह किसी के लिए भी उपलब्ध है जो इसका अभ्यास करने को तत्पर है।"

विवेकः भेद-बुद्धि की धार

"विवेक सर्वाधिक अनिवार्य आध्यात्मिक संकाय है — वास्तविक को अवास्तविक से, नित्य को अनित्य से, स्व को अनात्म से भेद करने का सामर्थ्य।"

— वेदान्तिक शिक्षा

यदि वैराग्य हृदय का गुण है — आसक्ति से वह स्वतन्त्रता जो स्थायित्व की माँग के बिना पूर्ण उपस्थिति की अनुमति देती है — तो विवेक मन का गुण है। विवेक का सर्वाधिक सामान्य रूप से अनुवाद विवेचन या विवेक-बुद्धि के रूप में किया जाता है: अनुभव के भिन्न गुणों, अभिप्रेरणा के भिन्न स्रोतों, वास्तविकता के भिन्न स्तरों के बीच स्पष्ट रूप से भेद करने का सामर्थ्य। वेदान्तिक परम्परा में, विवेक वह संकाय है जो आत्मा — सच्चा स्व, साक्षी चेतना, व्यष्टि स्तर पर ऋत की अभिव्यक्ति — और अनात्म — अनात्मा, संस्कारित व्यक्तित्व, संचित संस्कार जो आप जो हैं उसका गहनतम आयाम नहीं हैं — के बीच भेद करता है।

किन्तु विवेक केवल विराट दार्शनिक अर्थ में ही प्रासंगिक नहीं है। यह मानव जीवन के साधारण आचरण में उपलब्ध सर्वाधिक व्यावहारिक रूप से मूल्यवान सामर्थ्यों में से एक है। सर्वाधिक मूलभूत स्तर पर, विवेक यह स्पष्ट रूप से देखने का सामर्थ्य है कि वस्तुतः क्या घटित हो रहा है, उससे भिन्न जो संस्कार आपको विश्वास कराता है कि घटित हो रहा है। यह एक सच्चे संकेत को कोलाहल से, एक सच्चे अवसर को एक प्रलोभक विकर्षण से, एक सच्ची आवश्यकता को एक संस्कारित तृष्णा से, एक सच्चे धार्मिक प्रत्युत्तर को एक औचित्यित प्रतिक्रिया से भेद करने का सामर्थ्य है।

इस प्रकार का विवेचन अभ्यास से विकसित होता है। अधिक सूचना के संचय के माध्यम से नहीं, बल्कि उन आन्तरिक गुणों के संवर्धन के माध्यम से — स्थिरता, ईमानदारी, सजगता — जो सूचना का सटीक आकलन सम्भव बनाते हैं। रजस् से उद्वेलित मन भली-भाँति विवेचन नहीं कर सकता क्योंकि वह बहुत तेज़ गति कर रहा है। तमस् से भारी मन भली-भाँति विवेचन

नहीं कर सकता क्योंकि वह पूर्णतः जाग्रत नहीं है। जो मन स्पष्ट और स्थिर है — सात्त्विक — वह असाधारण परिशुद्धता से विवेचन कर सकता है।

**

निर्णय-निर्माण में विवेक

व्यावहारिक निर्णय-निर्माण के क्षेत्र में, विवेक स्वयं को स्वार्थ, सामाजिक दबाव, और संस्कार के कुहासे के पार किसी परिस्थिति की वास्तविक आवश्यकताओं को देखने के सामर्थ्य के रूप में अभिव्यक्त करता है। यह वह गुण है जो उस प्रबन्धक को, जो यह देख सकता है कि किसी व्यवसाय को सच्चे रूप से किसकी आवश्यकता है, उससे भेद करता है जो केवल वह देखता है जो उसकी विद्यमान रणनीति की पुष्टि करता है। यह वह गुण है जो उन माता-पिता को, जो यह देख सकते हैं कि उनके बच्चे को सच्चे रूप से किसकी आवश्यकता है, उनसे भेद करता है जो केवल वह देखते हैं जो उन्हें स्वयं एक बच्चे के रूप में आवश्यक था। यह वह गुण है जो उस चिकित्सक को, जो अपने सामने के रोगी को देख सकता है, उससे भेद करता है जो केवल पाठ्यपुस्तक की स्थिति देखता है।

विवेक अचूक नहीं है। यह पूर्ण बोध की कोई गारण्टी नहीं है। किन्तु यह अधिक स्पष्ट देखने का प्रयास करने का व्यवस्थित अभ्यास है — इस प्रश्न की ओर बार-बार लौटने का कि 'यहाँ वस्तुतः क्या सत्य है?' बजाय इसके सुख में विश्राम करने के जिस पर विश्वास करना सुविधाजनक है। और उस व्यवस्थित अभ्यास में, समय के साथ, बोध की गुणवत्ता सच्चे रूप से सुधरती है। त्रुटियाँ कम बार होती हैं। विकृतियाँ अधिक दृश्य हो जाती हैं। जो देखा जाता है और जो वस्तुतः उपस्थित है उसके बीच का अन्तराल संकीर्ण होता है।

विवेक और आत्म-ज्ञान

सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र जिसमें विवेक कार्य करता है वह बाह्य संसार नहीं बल्कि आन्तरिक है। आत्म-ज्ञान — अपनी ही अभिप्रेरणाओं, प्रतिरूपों, सामर्थ्यों, और अन्धबिन्दुओं की सटीक समझ — मनुष्य को उपलब्ध ज्ञान के सर्वाधिक विरल और सर्वाधिक मूल्यवान रूपों में से एक है। और यह ठीक वह ज्ञान-रूप है जो स्वार्थ, आत्म-रक्षा, और आत्म-वंचना द्वारा सर्वाधिक व्यवस्थित रूप से विकृत किया जाता है जो सामान्यतः मानव मन में कार्य करते हैं।

आत्म-ज्ञान के क्षेत्र में विवेक के अभ्यास के लिए साहस के एक विशेष गुण की आवश्यकता होती है: स्वयं को सटीक रूप से देखने की तत्परता, तब भी जब सटीक दृष्टि असहज हो। यह लक्षित करने की कि जब आपकी कथित अभिप्रेरणा आपकी वास्तविक अभिप्रेरणा नहीं है। यह पहचानने की कि जब आपका आभासी आत्मविश्वास वस्तुतः भय है। यह देखने की कि जब किसी अन्य के लिए आपकी परवाह वस्तुतः आवश्यक होने की आपकी आवश्यकता की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार का ईमानदार आत्म-परीक्षण आत्म-आलोचना नहीं है। यह आत्म-ज्ञान है। और आत्म-ज्ञान, सच्चे रूप से विकसित, सच्चे धार्मिक कर्म की नींव है।

"विवेक के बिना, हम सतत अपने ही विभ्रमों के शिकार होते हैं। इसके साथ, हम संसार को — और स्वयं को — इतना स्पष्ट देखने में समर्थ हो जाते हैं कि संस्कारित प्रतिवर्त के बजाय सच्ची समझ से कर्म कर सकें।"

ध्यान: स्पष्टता का व्यवस्थित अनुशीलन

"ध्यान असाधारण लोगों के लिए कोई अभ्यास नहीं है। यह किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए अभ्यास है जिसने यह लक्षित किया है कि उसका मन उसे चला रहा है, न कि इसके विपरीत।"

— समकालीन प्रेक्षण

ध्यान इस पुस्तक द्वारा वर्णित अभ्यासों में सर्वाधिक प्रत्यक्ष, सर्वाधिक व्यवस्थित, और सर्वाधिक गहनता से शोधित है। यह समकालीन संस्कृति में सर्वाधिक विकृत में से एक भी है। इसे एक उत्पादकता-उपकरण, एक तनाव-प्रबन्धन तकनीक, एक व्यावसायिक लाभ, और एक कल्याण-वस्तु के रूप में पैक किया गया है। यह एक ऐप के रूप में उपलब्ध है। इसे कॉर्पोरेट प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में पढ़ाया जाता है। इसकी अनुशंसा चिकित्सकों द्वारा की जाती है। यह सब, कुछ ढंगों से, उल्लेखनीय प्रगति है। किन्तु यह यह जोखिम भी वहन करता है कि ध्यान-अभ्यास का गहनतर प्रयोजन — उस साक्षी सजगता का व्यवस्थित संवर्धन जो धार्मिक जीवन को सम्भव बनाती है — परम्परा से प्रौद्योगिकी में अनुवाद में खो जाए।

ध्यान, सम्यक् रूप से समझा गया, बेहतर अनुभव करने की कोई तकनीक नहीं है। यह अधिक स्पष्ट देखने का अभ्यास है। और अधिक स्पष्ट देखना कोई पार्श्व-प्रभाव या बोनस नहीं है। यही मुख्य बात है। घटा हुआ तनाव, सुधरी हुई निद्रा, बेहतर भावनात्मक नियमन — ये वास्तविक और मूल्यवान हैं, और ये केवल इन्हीं कारणों से ध्यान को अभ्यास करने योग्य बनाते हैं। किन्तु ये प्राथमिक प्रयोजन के अनुप्रवाही परिणाम हैं, जो उस सजगता का उत्तरोत्तर संवर्धन है जो मन का प्रेक्षण कर सकती है, बजाय केवल उसके साथ बह जाने के।

**

मूल अभ्यास

ध्यान-निर्देश का सरलतम और सर्वाधिक सार्वभौमिक रूप सर्वाधिक मूलभूत भी है: आराम से बैठिए, अपनी आँखें बन्द कीजिए, और अपनी श्वास का प्रेक्षण कीजिए। जब विचार उठें — जैसे वे उठेंगे, निरन्तर और बिना आमन्त्रण के — उन्हें उनके पीछे चले बिना लक्षित कीजिए। सौम्यता से श्वास की ओर लौटिए। दोहराइए। यही अभ्यास अपने सार में है। श्वास की ओर वापसी, इस क्षण में कि मन भटक गया है यह पहचानने पर, कोई असफलता नहीं है। यही अभ्यास है। प्रत्येक वापसी सजगता का एक क्षण है। प्रत्येक वापसी सजगता के सामर्थ्य को सुदृढ़ करती है।

अधिकांश लोग जो शीघ्र ही खोज लेते हैं वह यह है कि मन की भटकने की प्रवृत्ति उससे कहीं प्रबल है जितना उन्होंने विश्वास किया था। मौन में बैठने के सेकण्डों के भीतर एक विचार उठता है। वह विचार दूसरे की ओर ले जाता है। सहचर्य की शृंखला सरल श्वास-प्रेक्षण की मूल मंशा से बहुत दूर ले जाती है। और फिर — किसी बिन्दु पर, दस सेकण्ड या दस मिनट के पश्चात् — लक्षित करने का एक क्षण होता है: 'मैं सोच रहा था।' सजगता लौट आई है। और उस वापसी में, चाहे वह कितनी ही संक्षिप्त हो, साक्षी-गुण का व्यायाम हुआ है।

अवधि से अधिक नियमितता क्यों महत्त्व रखती है

ध्यान आरम्भ करने में एक सामान्य प्रश्न यह है कि कितनी देर बैठना चाहिए। अनुभवी साधकों का उत्तर उल्लेखनीय रूप से सुसंगत है: छोटा और अधिक नियमित, लम्बे और कभी-कभार से कहीं बेहतर है। एक वर्ष तक प्रत्येक प्रातः पन्द्रह मिनट सप्ताह में एक बार दो घंटे से अतुलनीय रूप से अधिक मूल्यवान है। कारण तंत्रिकीय है: मस्तिष्क आवृत्ति और सुसंगति के प्रति प्रत्युत्तर देता है। नियमित अभ्यास सजगता की ओर लौटने की, मन के भटकने पर लक्षित करने की, स्वचालित मानसिक बहाव के गुण पर सचेत उपस्थिति के गुण को चुनने की तंत्रिकीय आदत बनाता है।

यह नियमित अभ्यास, समय के साथ, उस हर वस्तु के लिए अनुभवपरक नींव बन जाता है जिसका इस पुस्तक ने वर्णन किया है। प्रातःकालीन अभ्यास में विकसित श्वास-सजगता वह संसाधन बन जाती है जो कठिन अपराह्न-बैठक में उपलब्ध होती है। प्रातःकाल की स्थिरता में सुदृढ़ किया गया साक्षी-गुण वह गुण बन जाता है जो प्रतिक्रियात्मक प्रत्युत्तर से पूर्व अन्तराल

रचता है। ध्यान-आसन की अपेक्षाकृत सुरक्षा में विकसित समता वह समता बन जाती है जो सच्ची कठिनाई के क्षण में उपलब्ध होती है।

पलायन नहीं, तैयारी के रूप में ध्यान

ध्यान की लोकप्रिय भ्रान्ति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुधारों में से एक यह स्पष्टीकरण है कि ध्यान जीवन से कोई पलायन नहीं है। यह जीवन के लिए एक तैयारी है। अभ्यास का प्रयोजन आन्तरिक शान्ति की कोई ऐसी अवस्था प्राप्त करना नहीं है जो साधारण संलग्नता से पृथक् हो, बल्कि सजगता और समता का एक ऐसा गुण विकसित करना है जिसे साधारण संलग्नता में लाया जा सके, उस संलग्नता के गुण को भीतर से रूपान्तरित करते हुए।

जो व्यक्ति अपने जीवन की कठिनाइयों से पलायन के लिए ध्यान करता है, या जो ध्यान के शान्त गुण को इस मापदण्ड के रूप में उपयोग करता है कि वह दूसरों की तुलना में कितना 'उन्नत' है, उसने प्रयोजन को मूलभूत रूप से भ्रान्ति से समझा है। ध्यान-अभ्यास का मापदण्ड यह नहीं है कि अभ्यास-अवधियाँ कितनी शान्त हैं। यह है कि आप दिन के कठिन क्षणों में कितना स्पष्ट देखते हैं। यह है कि समता के विचलित होने के पश्चात् आप उसे कितनी शीघ्रता से पुनः पाते हैं। यह है कि आप अपने जीवन के उन साधारण क्षणों में कितनी पूर्णता से उपस्थित हैं जिनसे साधारण चेतना की व्यस्तता बिना सम्पर्क के गुजर जाने की प्रवृत्ति रखती है।

"ध्यान का प्रयोजन ध्यान नहीं है। यह जीवन की वह गुणवत्ता है जिसे ध्यान सम्भव बनाता है। आसन पर विकसित की गई स्थिरता स्वयं में कोई अन्त नहीं है। यह संसार के साथ, जैसा वह वस्तुतः है, सच्ची संलग्नता की तैयारी है।"

गुरु-तत्त्व: जीवित प्रज्ञा से सीखना

"सच्चा शिक्षक आपको अपने ज्ञान से नहीं भरता। वह आपमें उस ज्ञान को जगाता है जो पहले से ही आपका था, पहचाने जाने की प्रतीक्षा में।"

— पारम्परिक शिक्षा

भारतीय चिन्तन-परम्परा के इतिहास भर में, गुरु और शिष्य के बीच के सम्बन्ध को मानव जीवन में उपलब्ध सर्वाधिक महत्वपूर्ण और सर्वाधिक रूपान्तरकारी सम्बन्धों में से एक के रूप में समझा गया है। इसलिए नहीं कि गुरु शिष्य की अपनी जिज्ञासा का स्थान ले लेता है या ऐसा कोई शॉर्टकट प्रदान करता है जो आन्तरिक कार्य को छोड़ देता है, बल्कि इसलिए कि गुरु किसी ऐसी वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है जिसका स्थान कोई पुस्तक या तकनीक पूर्णतः नहीं ले सकती: उस अवस्था का जीवित मूर्तरूप जिसकी ओर शिष्य आकांक्षा कर रहा है।

एक ऐसा गुण है जिसे सच्चा शिक्षण संचारित करता है जो शिक्षण के शब्दों में निहित नहीं होता। जिस व्यक्ति ने सच्ची स्पष्टता, सच्ची समता, ऋत के साथ सच्चा संरेखण विकसित किया है — उसकी उपस्थिति में, कुछ ऐसा उपलब्ध हो जाता है जो उसकी अनुपस्थिति में उपलब्ध नहीं होता। इसलिए नहीं कि वह किसी सोद्देश्य ढंग से प्रक्षेपण या निर्देश या प्रदर्शन कर रहा है, बल्कि इसलिए कि उसके अस्तित्व का गुण एक ऐसा अनुनाद रचता है जो उनमें समान गुणों के जागरण का संपोषण करता है जो उसके प्रति सच्चे रूप से खुले हैं। यही वह है जिसे परम्परा सत्संग कहती है — सत्य का सान्निध्य।

यथार्थ गीता की परम्परा में, गुरु-तत्त्व स्वयं भाष्य में मूर्त है। परमहंस स्वामी अङ्गझानन्द जी महाराज के शब्द एक ऐसा गुण वहन करते हैं जो बौद्धिक अन्तर्वस्तु से परे जाता है। जो पाठक सच्चे खुलेपन के साथ यथार्थ गीता से संलग्न होते हैं वे सुसंगति से समझ से कुछ अधिक बताते हैं: पहचान का एक गुण, इस बात का एक बोध कि कुछ स्पष्ट हो रहा है जो सदा उपस्थित

था किन्तु आच्छादित। यह ग्रन्थ के माध्यम से कार्यरत गुरु-कार्य है जब ग्रन्थ स्वयं सच्चे साक्षात्कार का उत्पाद होता है।

**

गुरु-सम्बन्ध की संभावित बाधाएँ

वही परम्परा जो गुरु-सम्बन्ध को सराहती है, उसकी विकृतियों के विषय में भी विस्तार से चेतावनी देती है। सच्चा गुरु सम्बन्ध से व्यक्तिगत लाभ नहीं खोजता, शिष्य में निर्भरता नहीं विकसित करता, शिष्य के जीवन के उन क्षेत्रों पर अधिकार का दावा नहीं करता जो गुरु के उपयुक्त क्षेत्र के भीतर नहीं हैं, और शिष्य के विकसित होते विवेक को नहीं दबाता। सच्चे गुरु की कसौटी करिश्मा, अनुयायी-वर्ग, या आभासी अधिकार नहीं है। यह समय के साथ शिष्य के विकास का गुण है।

समकालीन आध्यात्मिक संस्कृति में, गुरु-तत्त्व का दुरुपयोग व्यापक और हानिकारक रहा है। इन दुरुपयोगों के प्रति उपयुक्त प्रत्युत्तर गुरु-तत्त्व का पूर्णतः परित्याग नहीं है, बल्कि पर्याप्त विवेक का विकास है — सच्चे शिक्षण को प्रदर्शन से, सच्ची प्रज्ञा को अधिकार के प्रक्षेपण से, शिष्य के विकास के लिए सच्ची परवाह को शिष्य की आध्यात्मिक अभिलाषा के दोहन से भेद करने के लिए।

आन्तरिक गुरु

एक गहनतर स्तर पर, परम्परा सिखाती है कि सच्चा गुरु अन्ततः बाह्य नहीं है। गुरु-तत्त्व — जाग्रत बुद्धिमत्ता का जाग्रत बुद्धिमत्ता को पहचानने और आह्वान करने का सामर्थ्य — स्वयं चेतना में अन्तर्भूत है। बाह्य गुरु, अधिक से अधिक, एक संकेतक और एक संपोषण के रूप में कार्य करता है। किन्तु जिसकी ओर संकेत किया जा रहा है वह शिष्य के भीतर की कोई वस्तु है जिसे पहचाने जाने की आवश्यकता है, कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे बाहर से आयात किए जाने की आवश्यकता है।

यह शिक्षा उस हर वस्तु के अनुरूप है जिसका इस पुस्तक ने वर्णन किया है। ऋत आपके बाहर नहीं है। यह वह सिद्धान्त है जिसके द्वारा आप विद्यमान हैं। वह स्पष्टता जो धर्म माँगता है कोई बाह्य गुण नहीं है जिसे अर्जित किया जाए। यह उस चेतना की स्वाभाविक अवस्था है

जिसने अपनी ही अन्तर्भूत प्रभा के अवरोधों को हटा दिया है। गुरु, आन्तरिक या बाह्य, वह सिद्धान्त है जो उस हटाव का संपोषण करता है। कार्य, अन्ततः, आपका है।

"आपको कभी जो सर्वोत्तम शिक्षक मिलेगा वह वही है जो आपको सिखाता है कि अपने ही शिक्षक कैसे बनें। सर्वोत्तम गुरु वही है जो स्वयं को अनावश्यक बना देता है। प्रज्ञा का सच्चा संचरण सदा शिष्य की स्वतन्त्रता की ओर बहता है, कभी शिष्य की निर्भरता की ओर नहीं।"

प्रतिबद्धता: निर्वाह का धर्म

"प्रतिबद्धता भविष्य के विषय में कोई कथन नहीं है। यह इस बात की अभिव्यक्ति है कि आप वर्तमान में कौन हैं। आप जो भी प्रतिबद्धता निभाते या तोड़ते हैं वह सत्य के साथ आपके वास्तविक सम्बन्ध की एक घोषणा है।"

— चिन्तनपरक चिन्तन

बोध, सजगता, और आन्तरिक स्पष्टता की समस्त चर्चा में, कुछ अत्यन्त सरल और अत्यन्त मूलभूत से चूकना सरल होगा: जो आप कहते हैं कि आप करेंगे उसे करने का धर्म। प्रतिबद्धता — जो आप मंशा रखते हैं और जो आप वस्तुतः करते हैं उसके बीच, जो आप वचन देते हैं और जो आप पूरा करते हैं उसके बीच का संरेखण — मानव जीवन में ऋत की सर्वाधिक मूलभूत और सर्वाधिक परिणामकारी अभिव्यक्तियों में से एक है।

प्रतिबद्धताएँ, अपने मूल में, भविष्य के विषय में पूर्वानुमान हैं: 'मैं इस समय वहाँ रहूँगा।' 'मैं इसे उस तिथि तक पूरा कर दूँगा।' 'मैं इस कठिनाई भर तुम्हारा संपोषण करूँगा।' जब प्रतिबद्धताएँ निभाई जाती हैं, तो तन्त्र — चाहे वह कोई व्यावसायिक सम्बन्ध हो, एक मित्रता, एक परिवार, या एक संगठन — उस संगति के साथ कार्य करता है जिसे पारस्परिक विश्वसनीयता सम्भव बनाती है। जब प्रतिबद्धताएँ नियमित रूप से तोड़ी जाती हैं — चाहे कितने ही न्यायसंगत रूप से, चाहे कितने ही सुघड़ता से समझाई गई — तो तन्त्र की संगति क्षीण होती है। विश्वास क्षरित होता है। लोग आप पर निर्भर रहना बन्द कर देते हैं। साथ मिलकर जो सम्भव है उसकी गुणवत्ता घटती है।

यह अन्तर्वैयक्तिक विश्वसनीयता के क्षेत्र में कार्यरत कर्म है। अलौकिक नहीं। पूर्णतः संरचनात्मक। परिणाम उतने ही पूर्वानुमेय हैं जितने किसी ऋत-शासित तन्त्र में कोई अन्य परिणाम।

*
**

प्रतिबद्धताएँ बुद्धिमत्ता से करना

प्रतिबद्धता-विफलता के सर्वाधिक सामान्य स्रोतों में से एक है अति-प्रतिबद्धता: उससे अधिक दायित्वों का संचय जितने सुसंगति से उस गुणवत्ता पर निभाए जा सकते हैं जिसके वे योग्य हैं। यह एक विशिष्ट प्रकार का विसंरक्षण है — समर्थ और तत्पर के रूप में देखे जाने की इच्छा और उपलब्ध वास्तविक सामर्थ्य के बीच एक विसंरक्षण। प्रतिबद्धता का धर्म जो वचन दिया गया उसे पूरा करने के बिन्दु पर नहीं, बल्कि क्या वचन देना है यह निर्णय करने के बिन्दु पर आरम्भ होता है।

सटीक आत्म-आकलन — यह जानना कि आप सच्चे रूप से क्या पूरा कर सकते हैं, किस गुणवत्ता पर, कब तक — सामर्थ्य और दायित्व के क्षेत्र पर लागू विवेक का एक रूप है। इसके लिए अनुरोध के क्षण में निराश करने की तत्परता आवश्यक है, बजाय तब अधिक महत्वपूर्ण रूप से निराश करने के जब प्रतिबद्धता निभाई न जा सके। और इसके लिए सत्य आवश्यक है — अपने वास्तविक सामर्थ्य का ईमानदार प्रतिनिधित्व, बजाय किसी ऐसे सामर्थ्य के प्रदर्शन के जो आपके पास नहीं है।

जब प्रतिबद्धताएँ निभाई नहीं जा सकतीं

ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिनमें सद्भावना से की गई प्रतिबद्धता सच्चे रूप से वैसी नहीं निभाई जा सकती जैसी मूलतः मंशा थी। परिस्थितियाँ बदलती हैं। सामर्थ्य का अति-आकलन सिद्ध होता है। अन्य दायित्व प्रत्याशित से अधिक माँगपूर्ण सिद्ध होते हैं। इन स्थितियों में, धार्मिक प्रत्युत्तर चुपचाप चूक जाना नहीं है — बिना स्वीकृति के केवल पूरा न करना — बल्कि परिस्थिति को स्पष्ट रूप से, यथासम्भव शीघ्र, इस ईमानदारी के साथ सम्बोधित करना कि क्या बदला है और क्यों।

यह स्पष्ट स्वीकृति टूटी प्रतिबद्धता के प्रभाव का उन्मूलन नहीं करती। यह उस विघटन को नहीं मिटा सकती जो वह उत्पन्न करती है। किन्तु यह सम्बन्ध और तन्त्र की अखण्डता को बनाए रखती है। यह अन्य पक्षों को मिथ्या अपेक्षाओं के बजाय सटीक सूचना के आधार पर समायोजन करने देती है। और यह ईमानदार संचार के उस गुण को टिकाती है जो किसी भी कार्यशील सम्बन्ध या संगठन की नींव है।

"अखण्डता त्रुटियों की अनुपस्थिति नहीं है। यह आप जो प्रस्तुत करते हैं और जो आप करते हैं उसके बीच का सुसंगत संरेखण है, इसमें वह ईमानदार स्वीकृति सम्मिलित है जब आप कम पड़ते हैं। यह संरेखण व्यवहार में सत्य है। यही प्रतिबद्धता का धर्म है।"

भाग पन्द्रह
हर पैमाने पर संरेखणः
स्व से सभ्यता तक

विवाह और दीर्घकालिक साहचर्य का धर्म

"अधिकांश लोगों को उपलब्ध सबसे बड़ा आध्यात्मिक अभ्यास ध्यान नहीं है। यह प्रतिबद्ध सम्बन्ध है — क्योंकि कोई दर्पण अधिक परिशुद्ध नहीं, विकास का कोई निमन्त्रण अधिक निरन्तर नहीं।"

— समकालीन प्रेक्षण

विवाह या प्रतिबद्ध साझेदारी की संस्था, अधिकांश आध्यात्मिक परम्पराओं में, धार्मिक गुणों के विकास के सर्वाधिक माँगपूर्ण और सर्वाधिक फलदायी क्षेत्रों में से एक के रूप में पहचानी जाती है। यह पहचान आनुषंगिक नहीं है। विवाह वह प्रदान करता है जो प्रायः कोई अन्य मानवीय व्यवस्था प्रदान नहीं करती: किसी अन्य मनुष्य के साथ विस्तृत, आत्मीय सान्निध्य जिसकी आवश्यकताएँ, दृष्टिकोण, और आन्तरिक जीवन आपके अपने से सच्चे रूप से भिन्न हैं, प्रतिबद्धता के एक ऐसे सन्दर्भ में जो उस सरल विकास की अनुमति नहीं देता जिसकी अन्य सम्बन्ध कठिनाई उठने पर अनुमति देते हैं।

यह संयोजन — भेद, आत्मीयता, और प्रतिबद्धता — ठीक वही संयोजन है जो उन स्थानों को सर्वाधिक प्रभावी रूप से प्रकट करता है जहाँ संरक्षण अभी सम्पूर्ण नहीं है। वे प्रतिरूप जिन्हें औपचारिक परिचय कभी नहीं छूता, जिन तक व्यावसायिक सम्बन्ध कभी नहीं पहुँचते, जिन्हें किसी व्यक्ति की नियन्त्रित सामाजिक प्रस्तुति सर्वाधिक आत्मीय को छोड़कर सबसे सफलतापूर्वक छिपा लेती है — ये प्रतिरूप, अनिवार्य रूप से, साझेदारी के सतत सान्निध्य में प्रकट होते हैं। साथी साधारण मानव जीवन में उपलब्ध सर्वाधिक परिशुद्ध और सर्वाधिक अविराम दर्पण है।

वे हमें प्रातःकाल में देखते हैं, सामाजिक प्रस्तुति के संयोजित होने से पूर्व। वे हमें तनाव के अधीन अनुभव करते हैं, जब वांछित स्व उपलब्ध नहीं होता। वे उस अन्तराल से मिलते हैं जो उस व्यक्ति के बीच है जिसे हम संसार के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और उस व्यक्ति के जो हम

दैनिक जीवन की बुनावट में वस्तुतः हैं। यह दर्पण-कार्य एक साथ आत्मीय साझेदारी का सर्वाधिक मूल्यवान लक्षण और सर्वाधिक संकटकारी है। क्योंकि दर्पण जो प्रतिबिम्बित करता है वह सदा वह नहीं होता जिसे हम देखना चुनेंगे।

*
**

साझेदारी में प्रक्षेपण

आत्मीय सम्बन्ध पर मनोवैज्ञानिक साहित्य ने प्रक्षेपण को — दूसरों में उन गुणों का आरोपण जो स्वयं में अपरिचित हैं — सम्बन्धगत कठिनाई के प्राथमिक स्रोतों में से एक के रूप में पहचाना है। हम अपने प्रक्षेपणों से उतनी ही बार प्रेम में पड़ते हैं जितनी बार वास्तविक लोगों से। हम अपने साथियों में ठीक उन्हीं गुणों के प्रति आक्रोश रखते हैं जिन्हें हम स्वयं में स्वीकार नहीं कर सकते। हम अपने साथियों से उसकी पूर्ति की माँग करते हैं जिसे हम स्वयं में अनुपस्थित अनुभव करते हैं, बजाय उस पूर्ति को भीतर से विकसित करने के।

धार्मिक साझेदारी में प्रक्षेपण की उत्तरोत्तर पहचान और वापसी सम्मिलित है। यह एक क्रमिक, प्रायः असहज, सदा पुरस्कृत करने वाली प्रक्रिया है। ज्यों-ज्यों प्रक्षेपण वापस लिया जाता है, उसका स्थान जो लेता है वह वास्तविक व्यक्ति है — आदर्शीकृत या राक्षसीकृत संस्करण नहीं जो प्रक्षेपण रचता है, बल्कि वह जटिल, अपूर्ण, सच्चे रूप से अन्य मनुष्य जो आपका जीवन साझा कर रहा है। और सच्ची अन्यता के उस साक्षात्कार में, कुछ ऐसा सम्भव हो जाता है जिसे प्रक्षेपण रोकता है: सच्चा जुड़ाव, सच्ची आत्मीयता, सच्चा प्रेम जो किसी दर्पण का प्रेम नहीं बल्कि एक सच्चे रूप से अन्य व्यक्ति का प्रेम है।

पात्र के रूप में प्रतिबद्धता

विवाह या दीर्घकालिक साझेदारी की प्रतिबद्धता के गहनतम कार्यों में से एक है एक ऐसे पात्र की रचना जिसमें प्रक्षेपण और सच्चे साक्षात्कार का यह कठिन, रूपान्तरकारी कार्य घटित हो सके। प्रतिबद्धता कहती है: जब यह कठिन हो जाएगा तब हम नहीं छोड़ेंगे। जब दर्पण कुछ ऐसा दिखाएगा जो हमें पसन्द नहीं, तब हम निकास नहीं करेंगे। हम इस प्रक्रिया के साथ रहेंगे, इसकी कठिनाइयों भर, इतने लम्बे समय तक कि वास्तविक कार्य घटित हो सके।

इसका अर्थ यह नहीं कि अस्वस्थ या दुर्व्यवहारपूर्ण सम्बन्ध प्रतिबद्धता के नाम पर टिकाए जाने चाहिए। प्रतिबद्धता का धर्म आत्म-सम्मान और सच्ची हानि से रक्षा के धर्म का

अतिक्रमण नहीं करता। किन्तु इसका अर्थ यह अवश्य है कि दो सच्चे रूप से भिन्न लोगों की साधारण कठिनाइयाँ जो साथ रहना सीख रहे हैं, एक-दूसरे को स्पष्ट देखना सीख रहे हैं, बार-बार के ईमानदार साक्षात्कार के माध्यम से सच्ची आत्मीयता रचना सीख रहे हैं — ये निकास के लिए पर्याप्त कारण नहीं हैं। ये ही वह सार हैं जिसके लिए प्रतिबद्ध साझेदारी है।

"विवाह, अपने सर्वोत्तम रूप में, एक गृहस्थ व्यवस्था के वेश में एक आध्यात्मिक अभ्यास है। भेद के साथ, प्रक्षेपण के साथ, अपेक्षा और वास्तविकता के बीच के अन्तराल के साथ दैनिक साक्षात्कार — ये हल की जाने वाली समस्याएँ नहीं हैं। ये पाठ्यक्रम हैं। और प्रश्न यह है कि क्या आप पाठ्य-कार्य करने को तत्पर हैं।"

अध्याय चौंसठ

माता-पिता होने का धर्म

"बच्चा आपका नहीं है। बच्चा भविष्य का है, आपके माध्यम से प्रवाहित होता हुआ। आपका धर्म बच्चे को अपनी छवि में गढ़ना नहीं, बल्कि बच्चे की अपनी अद्वितीय ऋत-अभिव्यक्ति के उभरने के लिए दशाएँ रचना है।"

— चिन्तनपरक चिन्तन

पालन-पोषण साधारण मानव जीवन में उपलब्ध धर्म की सर्वाधिक माँगपूर्ण और सर्वाधिक रूपान्तरकारी अभिव्यक्तियों में से एक है। यह ठीक वही माँगता है जो संरक्षण आवश्यक करता है: व्यक्तिगत रुचि को सच्ची आवश्यकता के अधीन करने की तत्परता, किसी अन्य सत्ता को स्पष्ट देखने और उसके प्रति प्रत्युत्तर देने की क्षमता जो उसे वस्तुतः आवश्यक है, बजाय उसके जो आप उस पर प्रक्षेपित करते हैं, और एक विकसित होते मनुष्य के साथ उसके विकास की जटिलता भर चलने की अपरिहार्य कठिनाइयों के मध्य उपस्थित और प्रत्युत्तरशील बने रहने की समता।

पालन-पोषण की गहनतम धार्मिक चुनौती प्रेम और स्वामित्व के बीच का भेद है। माता-पिता अपने बच्चे से एक ऐसी तीव्रता के साथ प्रेम करते हैं जो सर्वाधिक शक्तिशाली मानव अनुभवों में से एक है। किन्तु वह प्रेम, अपरीक्षित, सरलता से स्वामित्व का एक रूप बन सकता है — यह आवश्यकता कि बच्चा वैसा ही बना रहे जैसा वह है, कुछ अपेक्षाओं को पूरा करे, माता-पिता के चयनों और मूल्यों की पुष्टि करे, मनुष्य का वह संस्करण बने जो माता-पिता को आवश्यक है कि वह बने।

यह स्वामित्वकारी प्रेम, चाहे कितना ही सद्भावी हो, विसंरक्षण का एक रूप है। बच्चा कोई परियोजना नहीं है। बच्चा माता-पिता की अनसुलझी आकांक्षाओं का वाहन नहीं है। बच्चा ऋत की एक अभिव्यक्ति है — अपनी प्रकृति, अपने धर्म, अपने विकास-पथ वाली एक अद्वितीय सत्ता जो ऐसे ढंगों से उद्घाटित होगी जिनका माता-पिता पूर्णतः पूर्वानुमान या नियन्त्रण नहीं कर सकते। पालन-पोषण का धर्म उस उद्घाटन का संपोषण करने की कला है, साथ ही उसे माता-पिता के वांछित रूप की ओर निर्देशित करने के आवेग का प्रतिरोध करते हुए।

*
**

रक्षा बनाम अतिरक्षा

आधुनिक पालन-पोषण में सर्वाधिक परिणामकारी विसरेखणों में से एक है सच्ची रक्षा और अतिरक्षा के बीच की उलझन। सच्ची रक्षा में यह सुनिश्चित करना सम्मिलित है कि बच्चा उस हानि से सुरक्षित है जिसे वह अभी पहचान या जिससे स्वयं को बचा नहीं सकता। अतिरक्षा में बच्चे को उन कठिनाइयों, असफलताओं, और चुनौतियों से ढाल देना सम्मिलित है जो विवेक, प्रत्यास्थता, और सच्चे सामर्थ्य के विकास के लिए आवश्यक हैं।

जो बच्चा सुसंगति से असफलता से सुरक्षित रखा गया है वह असफलता में मार्ग खोजने का सामर्थ्य विकसित नहीं करता। जो बच्चा सुसंगति से सामाजिक कठिनाई से सुरक्षित रखा गया है वह उन अन्तर्वैयक्तिक कौशलों का विकास नहीं करता जो सामाजिक जटिलता में मार्ग खोजने से आते हैं। जिस बच्चे के माता-पिता ने सुसंगति से समस्याएँ बच्चे के उनसे जूझने का अवसर पाने से पूर्व ही हल कर दी हैं, उसने उस समस्या-समाधान सामर्थ्य का विकास नहीं किया जो कठिनाई के साथ सच्ची संलग्नता से आता है। रक्षा ठीक उसका विपरीत उत्पन्न करती है जिसकी वह मंशा रखती है: अधिक सुरक्षित बच्चा नहीं, बल्कि अधिक भंगुर।

प्रदर्शन नहीं, उपस्थिति

माता-पिता अपने बच्चे को जो एकमात्र सर्वाधिक सुसंगति से प्रभावकारी वस्तु प्रदान कर सकते हैं वह है सच्ची उपस्थिति — पूर्ण, अविकर्षित ध्यान का वह गुण जो, शब्दों से परे, यह संवाद करता है कि बच्चा सच्चे रूप से देखा और सच्चे रूप से मूल्यवान माना जाता है। उपस्थिति का प्रदर्शन नहीं — शारीरिक रूप से उपस्थित रहना जबकि मानसिक रूप से अन्यत्र, संलग्नता की क्रियाएँ करते हुए जबकि वस्तुतः आन्तरिक विकर्षणों या बाह्य उत्तेजनाओं का प्रबन्धन करते हुए। सच्ची उपस्थिति: बच्चे को देखना, जो वे वस्तुतः कह रहे हैं उसे सुनना, बजाय उसके जो आप अपेक्षा करते हैं कि वे कहें, उसके प्रति प्रत्युत्तर देना जो वस्तुतः वहाँ है, बजाय किसी पूर्वधारणा के।

उपस्थिति का यह गुण ठीक वही है जिसे इस पुस्तक के अभ्यास विकसित करते हैं। जिन माता-पिता ने श्वास-अभ्यास और ध्यान के माध्यम से सच्ची सजगता विकसित की है, वे इसलिए बेहतर माता-पिता नहीं हैं कि उन्होंने अधिक पालन-पोषण सिद्धान्त आत्मसात् किया है। वे इसलिए बेहतर माता-पिता हैं कि उनके पास उपस्थिति का अधिक आन्तरिक संसाधन

है — और उपस्थिति, बच्चे को सुसंगति से प्रदान की गई, सम्भवतः स्वस्थ विकास के लिए उपलब्ध सर्वाधिक शक्तिशाली संपोषण है।

"आप अपने बच्चे को उसके धर्म का मानचित्र नहीं दे सकते। किन्तु आप उन्हें सच्ची उपस्थिति, सच्ची ईमानदारी, और सच्चे प्रेम का अनुभव दे सकते हैं। ये वे दशाएँ हैं जिनमें उन्हें अपना मार्ग खोजने का सर्वोत्तम अवसर मिलेगा।"

सेवा और योगदान: आन्तरिक संरक्षण की बाह्य अभिव्यक्ति

"जब अहं केन्द्र होना बन्द कर देता है, तो सेवा स्वाभाविक हो जाती है। वीरतापूर्ण नहीं। आत्म-त्यागपूर्ण नहीं। केवल एक ऐसी सत्ता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति जिसने यह समझ लिया है कि किसी वृहत्तर का अंग होने का क्या अर्थ है।"

— चिन्तनपरक प्रेक्षण

सेवा — निःस्वार्थ सेवा — धार्मिक जीवन के सर्वाधिक व्यापक रूप से अभ्यासित और सर्वाधिक गहराई से भ्रान्ति से ग्रस्त आयामों में से एक है। अपने लोकप्रिय रूप में, सेवा को दूसरों के लिए अच्छे कर्म करने के रूप में समझा जाता है — स्वयंसेवा, दानशील देना, उदारता और देखभाल की क्रियाएँ। यह समझ गलत नहीं है, किन्तु यह सच्ची सेवा के अनिवार्य धार्मिक गुण से चूक जाती है। सच्ची सेवा मुख्यतः कर्म के विषय में नहीं है। यह कर्ता की संलग्नता के गुण के विषय में है।

ऐसा कर्म जो बाह्य रूप से उदार है किन्तु आन्तरिक रूप से पहचान की आवश्यकता से, अपराध-बोध से, एक उदार व्यक्ति की आत्म-छवि से अभिप्रेरित — यह धार्मिक अर्थ में सेवा नहीं है। यह सेवा के वेश में सज्जित अहं की सेवा में कर्म है। जो व्यक्ति सद्गुणी अनुभव करने के लिए दान देता है, करुणामय के रूप में देखे जाने के लिए स्वयंसेवा करता है, सामाजिक स्वीकृति के प्रबन्धन के लिए उदारता का प्रदर्शन करता है — ये सेवा की अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं। ये एक असामान्य रूप से परिष्कृत रूप में साधारण स्वार्थ की अभिव्यक्तियाँ हैं।

सच्ची सेवा सच्चे संरक्षण से उठती है। जब आन्तरिक जीवन पर्याप्त रूप से स्पष्ट होता है, जब अहं-आवश्यकताओं का निरन्तर प्रबन्धन उपलब्ध ध्यान और ऊर्जा का कम उपभोग करता है, तो कुछ और सम्भव हो जाता है: इसकी ओर ध्यान का स्वाभाविक झुकाव जो वस्तुतः आवश्यक है, जो सच्चे रूप से सेवा करेगा, उसकी विकृति के बिना जो दाता की स्वयं के विषय में अच्छा अनुभव करने की आवश्यकता की सेवा करता है। यह सेवा है जैसे कर्मयोग-

परम्परा उसे समझती है — प्रदर्शित किए गए सद्गुण के रूप में नहीं बल्कि अभिव्यक्त किए गए सद्गुण के रूप में, स्वाभाविक रूप से, पर्याप्त आन्तरिक स्पष्टता की अवस्था से।

**

सेवा और अहं का विलय

कर्मयोग-परम्परा सेवा को मुक्ति के एक प्राथमिक मार्ग के रूप में ठीक इसलिए पहचानती है कि सच्ची सेवा ठीक उन्हीं आन्तरिक दशाओं की माँग करती और उत्पन्न करती है जिनकी ऋत के साथ संरेखण को आवश्यकता होती है। जब कर्म सच्चे रूप से उसकी सेवा में होता है जो आवश्यक है — जब कर्ता का अभिकरण सच्चे रूप से परिस्थिति की आवश्यकता के अधीन होता है — तो अहं का निरन्तर आत्म-आकलन गणना चलाने का सामान्य व्यवसाय बाधित होता है। उस व्यवधान में, कुछ खुलता है।

उपस्थिति का वह गुण जो सामान्यतः अहं के आत्म-छवि के निरन्तर प्रबन्धन से आच्छादित रहता है, उपलब्ध हो जाता है। कर्म अधिक स्वच्छ, अधिक प्रभावी, उस आवश्यकता से अधिक सच्चे रूप से जुड़ा हो जाता है जिसकी सेवा की उसकी मंशा है। और कर्म करने वाला व्यक्ति कुछ ऐसा अनुभव करता है जिसका परम्परा सुसंगति से वर्णन करती है: आनन्द का एक ऐसा गुण जो अहं-तृप्ति के सन्तोष से भिन्न है। अच्छे के रूप में देखे जाने का सुख नहीं, बल्कि सच्चे योगदान का गहनतर सन्तोष। दायित्व निभा लेने की राहत नहीं, बल्कि वह सजीवता जो उसके साथ सच्ची संलग्नता से आती है जो महत्त्व रखता है।

अपना योगदान-रूप खोजना

प्रत्येक व्यक्ति का एक स्वाभाविक योगदान-रूप होता है — संसार के साथ संलग्न होने का एक ढंग जो उसकी प्रकृति के लिए सर्वाधिक प्रामाणिक है, सामर्थ्य, झुकाव, और परिस्थिति के उसके विशेष संयोजन से सर्वाधिक संरेखित है। कुछ के लिए, यह योगदान व्यक्तियों की देखभाल के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। अन्यो के लिए, वस्तुओं की रचना के माध्यम से — लेखन, कला, संगीत, निर्माण। अन्यो के लिए, तन्त्रों के अभिकल्प, संगठनों के नेतृत्व, विचारों के संवर्धन के माध्यम से। फिर भी अन्यो के लिए, उपस्थिति के उस सरल गुण के माध्यम से जो वे प्रत्येक साक्षात्कार में लाते हैं।

सेवा का प्रश्न यह नहीं है कि 'सेवा का सर्वाधिक वीरतापूर्ण या सर्वाधिक दृश्य रूप क्या है?' यह है कि 'योगदान का वह रूप क्या है जो इससे सर्वाधिक सच्चे रूप से संरेखित है कि मैं वस्तुतः कौन हूँ और मैं वस्तुतः क्या प्रदान करने में समर्थ हूँ?' यह योगदान के क्षेत्र पर लागू धार्मिक प्रश्न है। और इसका उत्तर, अपनी ही प्रकृति पर ईमानदार ध्यान और संलग्नता के भिन्न रूपों के साथ सच्चे प्रयोग के माध्यम से खोजा गया, सच्ची सेवा के जीवन की नींव है।

"सेवा वह नहीं है जो आप स्वयं की देखभाल कर लेने के पश्चात् करते हैं। यह एक ऐसे स्व की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है जिसने, संरक्षण के अभ्यासों के माध्यम से, यह खोज लिया है कि अस्तित्व में व्यक्तिगत के प्रबन्धन से अधिक कुछ है। उस खोज से, सेवा स्वाभाविक रूप से बहती है, बिना प्रयास के, बिना आत्म-प्रशंसा के — जैसे जल ढलान पर बहता है।"

वार्धक्य और अनित्यता का धर्म

"भली-भाँति वृद्ध होना वह अधिक पूर्णता से बनना है जो आप सदा रहे हैं —
अनिवार्य से रहित को झड़ने देना जब तक केवल वही शेष न रहे जो सर्वाधिक सत्य
है।"

— चिन्तनपरक चिन्तन

प्रत्येक मानव जीवन समय भर की एक यात्रा है, और उस यात्रा का धर्म उसके चरणों के साथ बदलता है। वैदिक परम्परा ने इसे स्पष्ट रूप से चार आश्रमों की व्यवस्था में पहचाना — जीवन के चार चरण, प्रत्येक अपने धार्मिक चरित्र और अपने विशेष संरक्षण-रूप के साथ। ब्रह्मचर्य, अधिगम और तैयारी का चरण। गृहस्थ, गृहस्थ-जीवन का चरण — संसार के साथ, परिवार के साथ, कार्य के साथ, सामाजिक अस्तित्व की सम्पूर्ण जटिलता के साथ संलग्नता का। वानप्रस्थ, सामाजिक दायित्व से क्रमिक प्रत्याहरण का, गहराते चिन्तन और आन्तरिक कार्य का चरण। और संन्यास, पूर्ण त्याग का चरण — अन्तिम संक्रमण की तैयारी में समस्त सांसारिक आसक्ति का अन्तिम परित्याग।

चाहे ये विशिष्ट चरण समकालीन जीवन पर अपने पारम्परिक रूप में प्रत्यक्ष रूप से लागू हों या न हों, जो अन्तर्निहित अन्तर्दृष्टि वे संकेतबद्ध करते हैं वह गहराई से प्रासंगिक है: कि जीवन के भिन्न चरणों के भिन्न धार्मिक बल होते हैं, और कि किसी विशेष चरण में संरक्षण के लिए उसकी पहचान और सम्मान आवश्यक है जो वह चरण वस्तुतः माँगता है, बजाय किसी पूर्व चरण में स्थायी रूप से बने रहने या किसी पश्चातवर्ती चरण के लिए समय से पूर्व पहुँचने के प्रयास के।

वृद्धावस्था का धर्म, विशेष रूप से, कुछ ऐसा है जिसका सम्मान करने का सामर्थ्य आधुनिक संस्कृति ने अधिकांशतः खो दिया है। एक ऐसी संस्कृति में जो यौवन को सर्वोच्च मूल्य और वृद्धावस्था को हल की जाने वाली समस्या के रूप में ग्रहण करती है, जीवन के

पश्चात्तवर्ती चरण — परिप्रेक्ष्य, गहराई, और मृत्यु के सान्निध्य के साथ आने वाली अहं की पकड़ के स्वाभाविक ढीलेपन के अपने विशिष्ट उपहारों सहित — आमूल रूप से अवमूल्यित हैं।

*
**

उत्तर-जीवन का उपहार

जीवन के पश्चात्तवर्ती चरण जो प्रदान करते हैं, उनके लिए जो उसे ग्रहण करने को तत्पर हैं, वह ठीक वही दशा है जिसे इस सम्पूर्ण पुस्तक के अभ्यास विकसित करने का प्रयास करते आए हैं: अहं के पहचान और परिणाम के बाध्यकारी प्रबन्धन का स्वाभाविक हास। ज्यों-ज्यों शरीर वृद्ध होता है, ज्यों-ज्यों वे सामाजिक भूमिकाएँ जिन्होंने पहचान को परिभाषित किया पीछे हटने लगती हैं, ज्यों-ज्यों मृत्यु का सान्निध्य निःसन्देह रूप से स्पष्ट कर देता है कि अभिव्यक्त संसार में कुछ भी स्थायी नहीं — संस्कारित स्व की पकड़ ढीली होने लगती है, स्वाभाविक रूप से, उस प्रयाससाध्य अभ्यास के बिना जो पूर्व-जीवन में आवश्यक होता है।

यह स्वाभाविक ढीलापन एक प्रकार का अनुग्रह है। यह एक मानव-जीवनकाल के पैमाने पर कार्यरत ऋत की स्वयं-संशोधक प्रवृत्ति है, जो अनिवार्य से रहित को क्रमशः हटाती है, जो सर्वाधिक सत्य है उसे क्रमशः प्रकट करती है। जिस व्यक्ति ने पूर्व-जीवन के अभ्यासों के माध्यम से संरेखण विकसित किया है वह इस अनुग्रह को ग्रहण करने की सर्वोत्तम स्थिति में है — उस परित्याग का प्रतिरोध करने के बजाय उसका स्वागत करने की, अनिवार्य से रहित के हास में उसकी ओर एक उद्घाटन पाने की जो सर्वाधिक मूलभूत रूप से वास्तविक है।

शिक्षक के रूप में अनित्यता

अनित्यता की पहचान — जिसे वृद्धावस्था अपरिहार्य बना देती है किन्तु जो जीवन के प्रत्येक चरण पर समस्त अनुभव की सच्ची दशा है — मानव जीवन में उपलब्ध सर्वाधिक शक्तिशाली शिक्षकों में से एक है। यह पहचान है कि प्रत्येक क्षण अपुनरावर्तनीय है, कि जो अभी उपस्थित है वह सदा उपस्थित नहीं रहेगा, कि जिन लोगों से हम प्रेम करते हैं और वे अनुभव जो हमें गढ़ते हैं, सब, अपने विशेष रूप में, अस्थायी हैं।

यह पहचान या तो चिन्ता और आसक्ति उत्पन्न कर सकती है — उसे थामे रखने का प्रयास जो अनिवार्य रूप से बीत रहा है — या उपस्थिति और सराहना: जो यहाँ है उसके साथ

पूर्णता से यहाँ रहने की तत्परता, इस पूर्ण ज्ञान में कि उसका विशेष रूप अस्थायी है। पहला प्रत्युत्तर विसरेखण है। दूसरा सरेखण है। और अनित्यता के सम्मुख उपस्थिति के इस गुण का संवर्धन सम्भवतः मानव जीवन में उपलब्ध गहनतम और सर्वाधिक निरन्तर धार्मिक अभ्यास है।

"अनित्यता जीवन की समस्या नहीं है। यह वह दशा है जो जीवन को अमूल्य बनाती है। प्रत्येक क्षण जो सच्चे रूप से ग्रहण किया जाता है — भविष्य या अतीत में नहीं बल्कि जीवित वर्तमान में — जो है उसकी गहनतम व्यवस्था के साथ सरेखण का एक क्षण है।"

मृत्यु का धर्म: अन्तिम संस्करण

"मृत्यु जीवन का विपरीत नहीं है। मृत्यु जीवन का वह भाग है जो हमें जीना सिखाता है। इस पर ईमानदारी से ध्यान दीजिए, और यह आपको वह सब कुछ बता देगी जो आपको जीवित रहने के विषय में जानना आवश्यक है।"

— वेदान्तिक अन्तर्दृष्टि

ऐसा कोई विषय नहीं है जिसे चिन्तन-परम्पराएँ अधिक गम्भीरता से सम्बोधित करती हैं, और कोई नहीं जिससे समकालीन संस्कृति अधिक व्यवस्थित रूप से बचती है, मृत्यु की अपेक्षा। यह परिहार स्वयं विसंस्करण का एक रूप है — उस सर्वाधिक असंदिग्ध संकेत को ग्रहण करने से अस्वीकृति जो ऋत अस्तित्व की प्रकृति के विषय में प्रदान करता है। क्योंकि मृत्यु, ईमानदारी से सामना की गई, पूर्ण स्पष्टता से प्रकट करती है कि अनित्यता का क्या अर्थ है, आसक्ति का क्या मूल्य है, क्या सच्चे रूप से महत्त्व रखता है और क्या नहीं, क्या सर्वाधिक अनिवार्य रूप से वास्तविक है और क्या केवल परम्परागत।

मृत्यु के प्रति वैदिक परम्परा का दृष्टिकोण रुग्ण नहीं है। यह स्पष्टकारी है। उपनिषदों, भगवद्गीता, और वृहत्तर परम्परा में मृत्यु पर विभिन्न शिक्षाएँ भय या त्याग उत्पन्न करने के लिए अभिकल्पित नहीं हैं, बल्कि सजीवता का एक विशेष गुण उत्पन्न करने के लिए — वह सजीवता जो यह जानने से आती है, सच्चे रूप से और आन्तरिक रूप से बजाय केवल अमूर्त रूप से, कि अस्तित्व का यह विशेष रूप अस्थायी है। उस ज्ञान से, जो जिया गया हो बजाय केवल एक संकल्पना के रूप में धारण किए गए, एक जीवन की प्राथमिकताएँ ऐसे ढंग से स्पष्ट हो सकती हैं जिसे कोई भी मात्रा की रणनीतिक योजना प्राप्त नहीं करती।

यदि आप निश्चितता से जानते कि यह आपका अन्तिम वर्ष था तो आप क्या भिन्न करते? आपका अन्तिम महीना? ये प्रश्न, भावुकता से नहीं बल्कि ईमानदारी से पूछे गए, सामाजिक दायित्व, संस्कारित महत्वाकांक्षा, और अहं-अनुरक्षण के उस संचय को चीर देते हैं

जो सामान्यतः उपलब्ध ध्यान के अधिकांश पर अधिकार करता है। ये सीधे उसकी ओर संकेत करते हैं जो किसी विशेष जीवन में सर्वाधिक अनिवार्य रूप से धार्मिक है — क्या सर्वाधिक गहराई से महत्त्व रखता है, सच्चा योगदान कैसा दिखता है, कौन-से सम्बन्ध उपस्थिति के उस पूर्ण गुण के योग्य हैं जो सामान्यतः रोक लिया जाता है।

**

मृत्यु और जीवन की गुणवत्ता

स्टोइक दार्शनिकों ने अपनी ही मर्त्यता पर चिन्तन के अभ्यास को मेमेन्टो मोरी कहा — स्मरण रखो कि तुम मरोगे। यह निराशा का अभ्यास नहीं बल्कि स्पष्टता का अभ्यास था। मृत्यु को नियमित रूप से मन में लाकर — किसी अमूर्तता के रूप में नहीं बल्कि एक सच्ची भावी निश्चितता के रूप में — स्टोइकों ने पाया कि वे परिधीय सरोकार जो सामान्यतः ध्यान का उपभोग करते हैं अपनी पकड़ खो देते थे, और जो सच्चे रूप से महत्त्वपूर्ण था वह अधिक सुलभ हो जाता था।

यह वही अन्तर्दृष्टि है जो कठोपनिषद् की नचिकेता और यम, मृत्यु के देवता, के विषय में प्रसिद्ध शिक्षा में प्रकट होती है। नचिकेता यम के पास मृत्यु के विषय में सत्य सीखने जाता है — और जो वह पाता है वह परलोक का वर्णन नहीं बल्कि आत्मा की प्रकृति के विषय में एक शिक्षा है, वह साक्षी चेतना जो मृत्यु के अधीन उस ढंग से नहीं है जिस ढंग से शरीर और संस्कारित व्यक्तित्व हैं। मृत्यु की शिक्षा, वैदिक परम्परा में, अन्ततः उसके विषय में शिक्षा है जो सर्वाधिक अनिवार्य रूप से वास्तविक है — और इसलिए जिसके साथ संरेखित होना सर्वाधिक योग्य है।

भली-भाँति मरना

परम्पराएँ सुसंगति से सिखाती हैं कि मरने की प्रक्रिया का गुण जीने की प्रक्रिया के गुण से आकार पाता है। जिस व्यक्ति ने संरेखण विकसित किया है — जिसने संस्कारित प्रतिक्रियाशीलता के हास का अभ्यास किया है, जिसने साक्षी-गुण विकसित किया है, जिसने अहं-तदात्मता की पकड़ को उत्तरोत्तर ढीला किया है — वह मृत्यु के पास समता के एक ऐसे गुण के साथ पहुँचता है जो उस गुण से सच्चे रूप से भिन्न है जो दीर्घकालिक विसंरेखण में लिए व्यक्ति को उपलब्ध होता है। इसलिए नहीं कि मृत्यु कम वास्तविक है, इसलिए नहीं कि

हानि कम अनुभव होती है, बल्कि इसलिए कि वह सजगता जो मरने की प्रक्रिया का साक्षी है, उससे कम तदात्म है जो मर रहा है।

यह इस पुस्तक में वर्णित सम्पूर्ण मार्ग का परम व्यावहारिक परिणाम है। संरेखण का संवर्धन, अन्तिम विश्लेषण में, पूर्ण उपस्थिति और समता के साथ जीने और मरने के सामर्थ्य का संवर्धन है जिसे ऋत के साथ सच्चा सम्पर्क सम्भव बनाता है। यह अन्तिम परित्याग की तैयारी है — त्याग के रूप में नहीं बल्कि इस पहचान की परम अभिव्यक्ति के रूप में कि जो आप सर्वाधिक अनिवार्य रूप से हैं वह कभी वह नहीं रहा जो मर रहा है।

"संरेखित जीना मरने का अभ्यास करना है। शब्दशः नहीं, रुग्ण रूप से नहीं, बल्कि इस अर्थ में कि अनिवार्य से रहित को नियमित रूप से छोड़ना, जो सर्वाधिक वास्तविक है उसकी ओर नियमित रूप से लौटना, उपस्थिति के उस गुण को नियमित रूप से छूना जो तब उपलब्ध होता है जब अहं की पकड़ ढीली होती है। यह धर्म की पूर्णतम अभिव्यक्ति है।"

सामूहिक धर्म: जब संरेखण विस्तृत होता है

*"एक अकेली मोमबत्ती कक्ष को आलोकित करती है। एक हजार मोमबत्तियाँ,
प्रत्येक पहली से जलाई गई, संसार को आलोकित करती हैं। कार्य एक से आरम्भ
होता है। यह सबके साथ समाप्त होता है।"*

— प्राचीन प्रज्ञा

हमने इस पुस्तक भर में मुख्यतः व्यक्तिगत संरेखण की चर्चा की है — एकल मनुष्य की जो स्पष्टता विकसित कर रहा है, साक्षी-गुण विकसित कर रहा है, श्वास और सजगता का अभ्यास कर रहा है, अपने विशेष जीवन और सम्बन्धों में धार्मिक प्रत्युत्तर ला रहा है। यहीं कार्य आरम्भ होता है। किन्तु ऋत और धर्म के निहितार्थ व्यक्ति की सीमा पर नहीं रुकते। ये, उन क्रियाविधियों के माध्यम से जिनका हमने इस पुस्तक भर में अन्वेषण किया, सामूहिक मानव संगठन के प्रत्येक पैमाने तक फैलते हैं।

ऐसा परिवार जिसमें वयस्कों ने सच्चा संरेखण विकसित किया है, ऐसी दशाएँ रचता है जो बच्चों में संरेखण के विकास का संपोषण करती हैं। मुख्यतः निर्देश के माध्यम से नहीं — यद्यपि निर्देश का अपना स्थान है। आदर्श-प्रस्तुति के माध्यम से। उपस्थिति के उस गुण के माध्यम से जो संरेखित वयस्क अपने बच्चों के साथ अपने सम्बन्धों में लाते हैं। उस ईमानदार संचार के माध्यम से जो एक ऐसे पारिवारिक तन्त्र को लक्षित करता है जिसके ऋत का सम्मान किया जा रहा है। बच्चे इसे एक शिक्षा के रूप में नहीं बल्कि एक अनुभव के रूप में आत्मसात् करते हैं — इस अनुभूत बोध के रूप में कि दुष्क्रिया के बजाय संगति से लक्षित तन्त्र में रहना कैसा होता है।

ऐसा संगठन जिसमें नेतृत्व-पदों पर पर्याप्त लोगों ने अहं और भय के बजाय सच्ची स्पष्टता से नेतृत्व करने के लिए पर्याप्त संरेखण विकसित किया है, एक भिन्न प्रकार की संगठनात्मक संस्कृति रचता है — एक ऐसी जिसमें ईमानदार सूचना बहती है, जिसमें समस्याएँ छिपाई जाने

के बजाय सतह पर लाई और सम्बोधित की जाती हैं, जिसमें लोगों के सच्चे सामर्थ्य प्रबन्धित किए जाने के बजाय संलग्न किए जाते हैं। इस संस्कृति को ऊपर से अभिकल्पित किए जाने की आवश्यकता नहीं होती। यह उन व्यक्तियों के गुण से स्वाभाविक रूप से उद्भूत होती है जो उसका गठन करते हैं।

**

सामूहिक संरक्षण का निर्णायक बिन्दु

जटिल सामाजिक तन्त्र, समस्त जटिल तन्त्रों की भाँति, आरम्भिक दशाओं पर संवेदनशील निर्भरता नामक एक गुणधर्म रखते हैं — वह लक्षण जिसके द्वारा कुछ मुख्य दशाओं में छोटे परिवर्तन सम्पूर्ण तन्त्र के व्यवहार में बड़े परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं। इसका अर्थ है कि अपेक्षाकृत छोटी संख्या में व्यक्ति, पर्याप्त रूप से संरक्षित और किसी तन्त्र के भीतर पर्याप्त रूप से स्थित, तन्त्र की कार्य की सामूहिक गुणवत्ता में कहीं बड़े परिवर्तनों के लिए दशाएँ रच सकते हैं।

यह कोई वचन नहीं है कि व्यक्तिगत कार्य स्वतः सामूहिक तन्त्रों को रूपान्तरित कर देता है। यह यह प्रेक्षण है कि सामूहिक रूपान्तरण को अपनी नींव के रूप में व्यक्तिगत रूपान्तरण आवश्यक होता है — कि आप विसंरक्षित लोगों से संरक्षित संस्थाएँ नहीं बना सकते, चाहे संस्थागत संरचनाएँ कितनी ही भली-भाँति अभिकल्पित हों। संरचनाएँ महत्त्व रखती हैं। प्रोत्साहन महत्त्व रखते हैं। अभिशासन महत्त्व रखता है। किन्तु ये सब मनुष्यों के माध्यम से कार्य करते हैं, और उन मनुष्यों के बोध, विवेक, और चरित्र का गुण ही अन्ततः निर्धारित करता है कि संरचनाएँ अपने अभिप्रेत प्रभाव उत्पन्न करती हैं या नहीं।

संरक्षित का दायित्व

यह उनके लिए धार्मिक दायित्व का एक विशिष्ट रूप रचता है जिन्होंने सच्चे रूप से संरक्षण विकसित किया है: उस संरक्षण को अपने प्रभाव के क्षेत्र में ऐसे ढंगों से लाने का दायित्व जो दूसरों के संरक्षण के विकास के लिए दशाएँ रचें। उपदेश या निर्देश के माध्यम से नहीं — बिना माँगा गया निर्देश विरले ही ग्रहण किया जाता है और उससे भी विरले ही उत्पादक होता है। बल्कि उदाहरण के गुण के माध्यम से, ऐसी दशाओं की रचना के माध्यम से जिनमें ईमानदार संचार मूल्यवान माना जाता है, उद्दीपन और प्रत्युत्तर के बीच उस अन्तराल की

आदर्श-प्रस्तुति के माध्यम से जो धार्मिक कर्म को उनके लिए दृश्य बनाता है जो उसके साक्षी होते हैं।

प्रत्येक शिक्षक जो सच्ची उपस्थिति के साथ पढ़ाता है कुछ प्रदर्शित कर रहा है। प्रत्येक नेता जो एक सुखद बेईमान निर्णय के बजाय एक कठिन ईमानदार निर्णय लेता है कुछ प्रदर्शित कर रहा है। प्रत्येक माता-पिता जो चिन्तित प्रबन्धन के बजाय सच्चे ध्यान के साथ अपने बच्चे से मिलते हैं कुछ प्रदर्शित कर रहे हैं। जो वे प्रदर्शित कर रहे हैं, चाहे वे उसे व्यक्त करें या न करें, वह यह है कि सरेखण सम्भव है, कि यह ऐसा दिखता है, कि यह संलग्नता का यह गुण उत्पन्न करता है। और यह प्रदर्शन, सुसंगति से प्रदान किया गया, ऐसी दशाएँ रचता है जिनमें दूसरों के इसे विकसित करने की अधिक सम्भावना होती है।

"सभ्यता का रूपान्तरण सभ्यता के पैमाने पर नहीं होता। यह व्यक्तियों, परिवारों, कक्षाओं, कार्यस्थलों, और समुदायों के पैमाने पर होता है — एक बार में सरेखित उपस्थिति का एक सच्चा क्षण। ऋत जो टूटा है उसे इसी प्रकार चंगा करता है। धीरे-धीरे। दृढ़ता से। प्रत्येक सचेत सत्ता के माध्यम से जो, इस क्षण में, सरेखित होना चुनती है।"

अध्याय उनहतर

एक साधक के नाम पत्र

"आप जो इतनी दूर तक आ चुके हैं पहले ही आरम्भ कर चुके हैं। पढ़ने से नहीं। कुछ शान्तर से। देखने की तत्परता से। वह तत्परता ही सब कुछ का आरम्भ है।"

— चिन्तनपरक आमन्त्रण

इस पुस्तक ने अपार भूमि तय की है। ऋग्वेद के प्राचीन सूक्तों से समकालीन तंत्रिकाविज्ञान तक। ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के विशालतम पैमानों से एक अकेली सचेत श्वास के सूक्ष्मतम क्षणों तक। चेतना और बोध की दार्शनिक गहराइयों से एक प्रातःकालीन दिनचर्या, एक कठिन निर्णय, एक आवेशित परिस्थिति में ईमानदार वाणी के एक क्षण की व्यावहारिक बुनावट तक।

और फिर भी, यह सब — प्रत्येक शब्द, प्रत्येक संकल्पना, प्रत्येक भेद, इन पृष्ठों में वर्णित प्रत्येक अभ्यास — किसी ऐसी वस्तु की ओर संकेत करता है जिसे अन्ततः शब्दों में निहित नहीं किया जा सकता। यह उपस्थिति के एक गुण की ओर, स्पष्ट दर्शन के एक गुण की ओर, वास्तविकता-में-सुगमता के एक गुण की ओर संकेत करता है जो ऋत के साथ संरेखण का स्वाभाविक परिणाम है। इसे वर्णन के माध्यम से संचारित नहीं किया जा सकता। इसे केवल खोजा जा सकता है, आपके अपने अनुभव की प्रयोगशाला में, ध्यान देने के धैर्यपूर्ण, ईमानदार, सुसंगत कार्य के माध्यम से।

आप इतनी दूर तक आ चुके हैं। यह कुछ अर्थ रखता है। हर कोई जो इस जैसी पुस्तक उठाता है अन्तिम अध्याय तक नहीं पहुँचता। अधिकांश उसे तब रख देते हैं जब वह कुछ असहज माँगने लगती है। यह तथ्य कि आप ठहरे रहे यह सुझाता है कि आपमें किसी वस्तु ने पहचान लिया है कि किसकी ओर संकेत किया जा रहा है — उस दिशा से अनुनादित हुई है जिसकी ओर यह पुस्तक संकेत कर रही है, अनुभव किया है, चाहे कितना ही धुँधला, उस संरेखण का खिंचाव जिसका यह वर्णन करती है।

**

वह पहचान कुछ नहीं नहीं है। यह, वस्तुतः, सब कुछ है। क्योंकि पहचान — वह क्षण जब कुछ ऐसा जो सचेत सजगता की देहली के नीचे था अकस्मात् दृश्य हो जाता है, अकस्मात् उपेक्षा करना असम्भव हो जाता है — स्वयं सरेखण का आरम्भ है। आप उसे अ-पहचान नहीं सकते जिसे आपने सच्चे रूप से पहचान लिया है। सजगता, एक बार सक्रिय हो जाने पर, पूर्णतः निद्रा में नहीं लौटाई जा सकती। यह आपको पुकारेगी, शान्त क्षणों में, गतिविधियों के बीच के अवकाशों में, उन क्षणों में जब साधारण कोलाहल इतने लम्बे समय के लिए शान्त होता है कि गहनतर संकेत सुना जा सके।

प्रश्न यह नहीं है कि क्या आप जारी रखेंगे। प्रश्न यह है कि आपके विशेष जीवन में, आपकी विशेष परिस्थितियों, आपकी विशेष चुनौतियों, आपके विशेष उपहारों के साथ, जारी रखना कैसा दिखता है। उस प्रश्न का कोई एक उत्तर नहीं है। केवल उसके साथ आपकी ईमानदार संलग्नता है, दिन-प्रतिदिन, श्वास-प्रतिश्वास, चयन-दर-चयन। इस पुस्तक में वर्णित अभ्यास आरम्भ-बिन्दु हैं, अन्तिम गन्तव्य नहीं। मार्ग आपका है, और यह प्रत्येक अन्य मार्ग से भिन्न दिखेगा, साथ ही उसी मूलभूत व्यवस्था से निर्देशित होते हुए।

**

विश्वास के साथ जो कहा जा सकता है वह यह है: दिशा स्पष्ट है। बोध की अधिक स्पष्टता की ओर। विचार और वाणी और कर्म में अधिक ईमानदारी की ओर। जो आप करते हैं और जो आप सच्चे रूप से समझते हैं कि आवश्यक है उसके बीच अधिक सरेखण की ओर। उस अनावश्यक दुःख के उत्तरोत्तर हास की ओर जो उसके विरुद्ध लड़ने से आता है जो केवल सत्य है। उपस्थिति के, सच्चे सम्बन्ध के, यथार्थता के उस अनुभूत बोध के स्वाभाविक विस्तार की ओर जो धर्म का चिह्न है।

इसमें से कुछ भी आपसे यह अपेक्षा नहीं करता कि आप उससे कोई अन्य बनें जो आप हैं। यह आपसे यह अपेक्षा करता है कि आप उसे अधिक पूर्णता से बनें जो आप पहले से ही हैं — संस्कार, प्रतिक्रियाशीलता, और विकृत बोध की उन परतों को हटाने को जो उसे आच्छादित करती हैं जो पहले से ही सत्य है और पहले से ही अच्छा है और आपकी सत्ता के गहनतम स्तर पर पहले से ही सरेखित है।

ऋत ब्रह्माण्ड का श्वास लेना है। आप उस श्वास का अंग हैं। आप सदा रहे हैं। एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या आप उसके साथ सचेत रूप से श्वास ले रहे हैं। और आज, इतनी दूर तक आ चुके होने पर, इन विचारों और इन अभ्यासों के साथ इतने लम्बे समय तक ठहरे रहने पर कि वे जिसकी ओर संकेत करते हैं उसका अनुनाद अनुभव कर सकें — आप, कम से कम थोड़ा, पहले से थोड़ा अधिक हैं।

**

यह पर्याप्त है।

यह सदा पर्याप्त रहा है।

और यह सदा पर्याप्त रहेगा।

"जहाँ आप हैं वहीं से आरम्भ कीजिए। जो आपके पास है उसका उपयोग कीजिए। जो आप कर सकते हैं वह कीजिए। श्वास लीजिए। और विश्वास कीजिए कि वह व्यवस्था जिसने आपकी अब तक ली गई प्रत्येक श्वास को टिकाया है, इस अगले चरण को भी टिकाएगी।"

भाग सोलह

व्यावहारिक चिन्तन:
संरचित जीवन के लिए ध्यान

प्रातःकालीन ध्यान: प्रत्येक दिन का आरम्भ आधार से

"आप दिन कैसे आरम्भ करते हैं यह निर्धारित करता है कि आप उसे कैसे जीते हैं।
आप प्रत्येक दिन कैसे जीते हैं यह निर्धारित करता है कि आप अपना जीवन कैसे
जीते हैं।"

— चिन्तनपरक प्रज्ञा

यहाँ वर्णित प्रातःकालीन ध्यान निष्पादित किया जाने वाला कोई कर्मकाण्ड नहीं है। यह एक अभिविन्यास है — प्रत्येक दिन के आरम्भ में, उस भूमि की ओर एक वापसी जिससे धार्मिक कर्म स्वाभाविक रूप से उठता है। यह केवल पाँच मिनट ले सकता है। यह एक घंटे तक विस्तृत हो सकता है। जो महत्त्व रखता है वह अवधि नहीं बल्कि संलग्नता का गुण है। श्वास और उठते क्षण के गुण पर सच्चे, अविकर्षित ध्यान का एक अकेला मिनट ध्यान-रूप के विकर्षित प्रदर्शन के तीस मिनट से अधिक मूल्यवान है।

आराम से बैठकर आरम्भ कीजिए, रीढ़ को उचित रूप से सीधा रखते हुए — कठोर नहीं, ढहा हुआ नहीं, बल्कि उस स्वाभाविक रूप से सजग मुद्रा में जिसे शरीर जानता है जब वह एक साथ शिथिल और जाग्रत हो। अपनी आँखें बन्द कीजिए। पहले कुछ क्षणों के लिए, केवल यह लक्षित कीजिए कि आप कहाँ हैं: उस सतह के सम्पर्क में शरीर की भौतिक संवेदनाएँ जिस पर आप बैठे हैं, परिवेश की ध्वनियाँ, आपकी बन्द पलकों के पीछे प्रकाश का गुण। इन संवेदनाओं को बिना टिप्पणी के उपस्थित रहने दीजिए। आप उन पर ध्यान नहीं कर रहे हैं। आप केवल यह लक्षित कर रहे हैं कि आप यहाँ हैं, इस शरीर में, इस क्षण में, इससे पूर्व कि दिन ने आपका ध्यान माँगना आरम्भ किया हो।

अब अपना ध्यान श्वास पर लाइए। श्वास को नियन्त्रित करने या उसे उससे कुछ भिन्न बनाने को नहीं जो वह स्वाभाविक रूप से है। केवल प्रेक्षण करने को। श्वास भीतर आती है। शिखर पर संक्षिप्त ठहराव। श्वास बाहर निकलती है। तल पर संक्षिप्त रिक्तता। श्वास-चक्र के ये

चार चरण सदा उपस्थित हैं, सदा उपलब्ध, सदा ऋत की उस सर्वाधिक तत्काल अभिव्यक्ति की ओर एक वापसी जिसे आप हर जगह अपने साथ ले जाते हैं। ज्यों-ज्यों आप श्वास का प्रेक्षण करते हैं, आप लक्षित कर सकते हैं कि मन गति करने लगता है — दिन के कार्यों की ओर, बीते कल की चिन्ताओं की ओर, योजनाओं और चिन्ताओं और स्मृति के खण्डों की ओर। यह कोई समस्या नहीं है। मन यही करते हैं। जब आप लक्षित करें कि मन श्वास से दूर हट गया है, तो सौम्यता से लौटिए। भटक जाने के लिए स्वयं की आलोचना के बिना। स्थिरता का कोई विशेष गुण बलपूर्वक लाने के प्रयास के बिना। केवल लौटिए। वापसी स्वयं ही अभ्यास है।

*
**

कुछ मिनटों के श्वास-प्रेक्षण के पश्चात्, ध्यान को श्वास से थोड़ा विस्तृत होने दीजिए ताकि वह समग्र रूप से आपकी आन्तरिक अवस्था के गुण को सम्मिलित करे। इस प्रातःकाल का क्या गुण है? क्या हल्कापन है या भारीपन, स्पष्टता या धुँधलापन, सुगमता या प्रतिरोध? जो भी आप पाएँ उसका निर्णय मत कीजिए। उसे बदलने का प्रयास मत कीजिए। उसे केवल इसका एक ईमानदार विवरण लक्षित कीजिए कि आप वस्तुतः कहाँ हैं, उससे भिन्न जहाँ आप होना पसन्द करेंगे या जहाँ आप विश्वास करते हैं कि आपको होना चाहिए।

आप वस्तुतः कहाँ हैं इसके उस ईमानदार प्रेक्षण से, संकल्प-निर्धारण की एक संक्षिप्त अवधि होने दीजिए। परम्परागत अर्थ में लक्ष्य-निर्धारण नहीं — इसकी गणना नहीं कि दिन के अन्त तक क्या सम्पन्न किया जाना चाहिए। बल्कि संकल्प के एक गुण का निर्धारण: मैं इस दिन में ध्यान का कौन-सा गुण लाना चाहता हूँ? वह एक धार्मिक गुण कौन-सा है — उपस्थिति, ईमानदारी, धैर्य, उदारता, स्पष्टता — जिसकी यह विशेष दिन सर्वाधिक माँग करता प्रतीत होता है? उस संकल्प को हल्के से धारण कीजिए, किसी माँग या निष्पादन-मानक के रूप में नहीं, बल्कि एक दिशा के रूप में। उपलब्धि की मात्रा के लिए किसी मापदण्ड के बजाय संलग्नता के गुण के लिए एक ध्रुवतारा।

अपनी आँखें खोलने से पूर्व, तीन सोद्देश्य श्वासें लीजिए। प्रत्येक भीतर ली गई श्वास सजगता का एक सचेत एकत्रण है। प्रत्येक बाहर छोड़ी गई श्वास उसका एक सचेत त्याग है जो इस दिन के लिए आवश्यक नहीं। फिर अपनी आँखें खोलिए। दिन आरम्भ होता है। आप, कम से कम इस क्षण के लिए, आधारित हैं। जो आप इस प्रातःकाल से दिन के पहले साक्षात्कार में, और दूसरे में, और दसवें में लाते हैं — यही प्रातःकालीन ध्यान का व्यावहारिक परिणाम है।

पूर्णता नहीं। कठिनाई का उन्मूलन नहीं। बल्कि, दिन के दबावों के मध्य, आन्तरिक सन्दर्भ-बिन्दु के एक गुण की उपलब्धता जिसे अभ्यास ने सुलभ बना दिया है।

"प्रातःकालीन ध्यान उस वास्तविक जीवन की तैयारी नहीं है जो उसके बाद आता है। यह स्वयं वास्तविक जीवन है — दिन का सर्वाधिक मूलभूत कर्म, वह जो शेष हर वस्तु का गुण निर्धारित करता है। इसे इसका हक्क दीजिए।"

सान्ध्य पुनरावलोकन: दिन की शिक्षा को ग्रहण करना

"दिन आपका शिक्षक है। सन्ध्या वह है जब आप पाठ ग्रहण करने बैठते हैं।
अधिकांश लोग पाठ छोड़ देते हैं। यही कारण है
कि वे वही कक्षा बार-बार लेते रहते हैं।"

— चिन्तनपरक प्रेक्षण

जैसे प्रातःकालीन अभ्यास दिन के लिए संलग्नता का गुण निर्धारित करता है, सान्ध्य अभ्यास उसे ग्रहण करने का अवसर प्रदान करता है जो दिन शिक्षा के रूप में प्रदान करता आया है। दिन का निर्णय करने को नहीं, मानकों की कसौटी पर निष्पादन का आकलन करने को नहीं, बल्कि ईमानदारी से उसका पुनरावलोकन करने को जो दिन ने दिखाया है — विभिन्न परिस्थितियों में लाए गए ध्यान के गुण के विषय में, उन प्रतिरूपों के विषय में जो उठे, अधिक और कम संरेखण के क्षणों के विषय में।

सान्ध्य पुनरावलोकन सर्वोत्तम रूप से शान्ति से बैठकर किया जाता है, पहले कुछ मिनटों के श्वास-ध्यान के साथ ताकि दिन की सक्रियता की राजसिक ऊर्जा बैठना आरम्भ कर सके। जब कुछ मात्रा की आन्तरिक शान्ति सुलभ हो, तो दिन को मन की आँख में सौम्यता से पुनः चलने दीजिए — घटनाओं का पूर्ण कालक्रमिक अनुक्रम नहीं, बल्कि वे क्षण जो उभरकर खड़े होते हैं, वे साक्षात्कार जिन्होंने एक अनुनाद छोड़ा, वे निर्णय जो अनिश्चित अनुभव हुए, वे प्रत्युत्तर जो स्वतः उठे और जिन्हें उस अन्तराल से अधिक का लाभ हो सकता था जो सचेत श्वसन रचता है।

इनमें से प्रत्येक क्षण के लिए, जिज्ञासा यह नहीं है कि 'क्या मैंने सही कार्य किया?' बल्कि 'यहाँ मेरी सजगता का क्या गुण था? क्या मैं स्पष्ट देख रहा था या मैं संस्कार के एक विकृतकारी लेंस के माध्यम से देख रहा था? क्या मैं उसके प्रति प्रत्युत्तर दे रहा था जो वस्तुतः उपस्थित था या अतीत के एक प्रतिरूप के प्रति? क्या और कुछ था जो देखा जा सकता था, और कुछ जो प्रदान किया जा सकता था, और कुछ जो ग्रहण किया जा सकता था, यदि मैं थोड़ा अधिक उपस्थित, थोड़ा अधिक संरेखित होता?'

**

यह ईमानदार पुनरावलोकन आत्म-आलोचना नहीं है। यह विकास की सेवा में आत्म-ज्ञान है। जो व्यक्ति कभी अपने दिन का पुनरावलोकन नहीं करता उसकी उन प्रतिरूपों तक कभी पहुँच नहीं होती जिन्हें उसका दिन प्रकट करता है। वह वही अनुभव बार-बार जीता है, उस सूचना को निकाले बिना जो वे अनुभव प्रदान कर रहे हैं। जो व्यक्ति अपने दिन का ईमानदारी से पुनरावलोकन करता है — निर्णय के बजाय जिज्ञासा के साथ, चिन्तन के प्रदर्शन के बजाय सीखने की सच्ची मंशा के साथ — वह निरन्तर संरेखण, प्रतिपुष्टि, और सुधार के उस चक्र में संलग्न रहता है जिसकी सच्चे धार्मिक विकास को आवश्यकता होती है।

किन्हीं विशिष्ट क्षणों या प्रतिरूपों को नोट कीजिए जो महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। एक प्रतिक्रिया जो अपने उद्दीपक के अनुपात से बाहर थी — उस संस्कार की ओर संकेत करती हुई जो ध्यान का योग्य है। सच्ची स्पष्टता और उपयुक्त प्रत्युत्तर का एक क्षण — पहचानने और पुष्टि करने योग्य, गर्व विकसित करने को नहीं बल्कि यह लक्षित करने को कि जब कुछ दशाएँ उपस्थित थीं तब क्या उपलब्ध था। एक सम्बन्ध जो तनावपूर्ण अनुभव हुआ — इस ईमानदार विचार को आमन्त्रित करता हुआ कि क्या तनाव सच्चे भेद से उठा या प्रक्षेपित पूर्वधारणा से। एक निर्णय जो अब भी अनिश्चित अनुभव होता है — सम्भवतः अधिक सूचना की आवश्यकता रखता हुआ, या सम्भवतः अनिश्चितता को समय से पूर्व समाधान के बिना स्वीकार करने की समता की आवश्यकता रखता हुआ।

पुनरावलोकन को कुछ मिनटों के कृतज्ञ ध्यान के साथ समाप्त कीजिए। प्रदर्शित कृतज्ञता नहीं — उन वस्तुओं की बलपूर्वक गणना नहीं जिनके लिए आपको कृतज्ञ 'होना चाहिए'। बल्कि उसके प्रति ईमानदार ध्यान जो इस दिन में सच्चे रूप से अच्छा था। एक वार्तालाप का गुण जिसने जोड़ा। किसी देखी गई वस्तु का सौन्दर्य। भली-भाँति किए गए कार्य का सन्तोष। यह सरल तथ्य कि एक और दिन मिला जिसमें सजगता उपलब्ध थी, जिसमें धर्म सम्भव था, जिसमें श्वास ने व्यष्टि और ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के बीच सेतु के रूप में अपनी निष्ठावान सेवा जारी रखी।

"वह दिन जो ईमानदारी से ग्रहण किया जाता है — जिसकी शिक्षा निकाली गई, जिसके उपहार स्वीकार किए गए, जिसकी कठिनाइयाँ न तो उन पर अटका गया और न ही उन्हें खारिज किया गया — वह दिन है जो पूर्णता से जिया गया है। अधिकांश दिन अनुभव किए जाते हैं किन्तु ग्रहण नहीं किए जाते। सान्ध्य पुनरावलोकन सच्ची ग्रहणशीलता का अभ्यास है।"

अध्याय बहतर

दैनिक जीवन के लिए श्वास-अभ्यास

"श्वास सदा आपके साथ है। जिसका अर्थ है कि सरेखण सदा उपलब्ध है। अभ्यास केवल यह स्मरण रखना है कि जो आपके पास पहले से ही है उसका उपयोग करें।"

— योग-शिक्षा

योग-परम्परा के औपचारिक प्राणायाम अभ्यास — नाड़ी शोधन, भ्रामरी, उज्जायी — सर्वोत्तम रूप से मार्गदर्शन में सीखे जाते हैं और समर्पित सत्रों में अभ्यासित किए जाते हैं। किन्तु सचेत श्वसन का सिद्धान्त औपचारिक अभ्यास से कहीं आगे तक फैलता है। प्रत्येक साधारण दिन भर ऐसे क्षण होते हैं जब सचेत श्वास की ओर एक वापसी अनुभव के गुण और प्रत्युत्तर के गुण को ऐसे ढंगों से बदल सकती है जो व्यावहारिक रूप से महत्त्व रखते हैं।

इन रोज़मर्रा के श्वास-अभ्यासों में सर्वाधिक सार्वभौमिक रूप से लागू वह है जिसे केवल सचेत ठहराव कहा जा सकता है: बढ़े हुए तनाव के, प्रतिक्रियात्मक भावनात्मक सक्रियण के, अनिश्चितता या कठिनाई के किसी भी क्षण में — कर्म करने से पूर्व, बोलने से पूर्व, प्रत्युत्तर देने से पूर्व — एक पूर्ण सचेत श्वास। पूर्ण सचेत श्वास में एक ऐसी सोद्देश्य अन्तःश्वास सम्मिलित है जो आधाररेखा विश्रान्त श्वास से कुछ अधिक गहरी हो, अन्तःश्वास के शिखर पर एक संक्षिप्त ठहराव, एक पूर्ण निःश्वास जो उसमें की हर वस्तु को छोड़ दे, और अगली अन्तःश्वास के आरम्भ होने से पूर्व तल पर एक संक्षिप्त ठहराव। यह चक्र लगभग छह से आठ सेकण्ड लेता है। यह परानुकम्पी तंत्रिका-तन्त्र को मापनीय रूप से सक्रिय करता है। यह उद्दीपन और प्रत्युत्तर के बीच वह अन्तराल रचता है जिसकी हमने इस पुस्तक भर में चर्चा की है। और इसके लिए सक्रिय क्षण में, इसका उपयोग करने की स्मृति से अधिक कुछ आवश्यक नहीं।

स्मृति, निस्सन्देह, चुनौती है। सच्चे प्रतिक्रियात्मक सक्रियण के क्षणों में, अन्तिम वस्तु जो किसी व्यक्ति को सूझती है वह सचेत रूप से श्वास लेना है। यही ठीक कारण है कि प्रातःकालीन और सान्ध्य अभ्यास इतने महत्त्वपूर्ण हैं — वे श्वास की ओर लौटने की तंत्रिकीय

आदत बनाते हैं, ताकि उन क्षणों में जब यह सर्वाधिक महत्व रखता है, वापसी के स्वचालित रूप से घटित होने की अधिक सम्भावना हो, सक्रियण के प्रति एक स्वतःमान्य प्रत्युत्तर के रूप में, बजाय एक ऐसी सोद्देश्य तकनीक के जिसे कोलाहल के बीच स्मरण रखा जाना चाहिए।

*
**

तीन-श्वास पुनःस्थापन

सचेत ठहराव का एक व्यावहारिक विस्तार वह है जिसे श्वास-आधारित सजगता के साधक प्रायः तीन-श्वास पुनःस्थापन कहते हैं। जब आप लक्षित करें कि आपकी आन्तरिक अवस्था संरेखण की स्पष्टता से महत्वपूर्ण रूप से भटक गई है — जब प्रतिक्रियाशीलता उच्च पर चल रही हो, जब दिन भर तनाव संचित हुआ हो, जब अनेक माँगों के दबाव में ध्यान का गुण खण्डित हुआ हो — तीन पूर्ण सचेत श्वासें, पूर्ण ध्यान देकर, विश्वसनीय रूप से तंत्रिका-तन्त्र के सक्रियण-स्तर का आंशिक पुनःस्थापन उत्पन्न करेंगी।

तीन पूर्ण सचेत श्वासें लगभग बीस सेकण्ड लेती हैं। उन बीस सेकण्डों में, कॉर्टिसोल स्तर मापनीय रूप से गिरने लगते हैं, हृदय-गति परिवर्तनशीलता बढ़ने लगती है, और प्रीफ्रन्टल कॉर्टेक्स — वह तंत्रिकीय संरचना जो उस प्रकार के स्पष्ट, सन्दर्भगत रूप से उपयुक्त विवेक से सर्वाधिक सम्बद्ध है जिसकी धार्मिक कर्म को आवश्यकता होती है — अमिग्डला के अधिक प्रतिक्रियात्मक प्रत्युत्तरों के विरुद्ध अपने कार्य को पुनः प्रतिष्ठित करने लगता है। यह जादू नहीं है। यह शरीरक्रियाविज्ञान है। और यह किसी भी दिन के किसी भी क्षण में सुलभ है, बिना किसी उपकरण के, बिना तैयारी के, और इसका उपयोग करने की मंशा को छोड़कर बिना किसी पूर्वपिक्षा के।

श्वास और वाणी

रोज़मर्रा की श्वास-सजगता के सर्वाधिक व्यावहारिक रूप से परिणामकारी अनुप्रयोगों में से एक वाणी के क्षेत्र में है। जो सम्बन्धगत क्षति मनुष्य एक-दूसरे पर और स्वयं पर पहुँचाते हैं उसका अधिकांश वाणी के माध्यम से पहुँचाया जाता है — प्रतिक्रियात्मक अवस्थाओं में बोले गए शब्द, ऐसे शब्द जो सच्चे प्रत्युत्तर के बजाय संस्कारित प्रतिरूप को अभिव्यक्त करते हैं, ऐसे शब्द जो श्रोता की एक सटीक संचार ग्रहण करने की आवश्यकता पर वक्ता की एक भावनात्मक अवस्था को निकालने की आवश्यकता को प्राथमिकता देते हैं।

वाणी से पूर्व श्वास का अभ्यास — विशेषकर किसी भी महत्वपूर्ण संचार से पूर्व, किसी कठिन वार्तालाप से पूर्व, किसी उच्च-दाँव वाले आदान-प्रदान से पूर्व — उद्दीपन और प्रत्युत्तर के बीच के अन्तराल का भाषा के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रत्यक्ष अनुप्रयोग है। उस बैठक से पूर्व जिसमें कुछ कठिन कहा जाना चाहिए। उस वार्तालाप से पूर्व जिसमें किसी सम्बन्ध का गुण दाँव पर है। उस ईमेल के प्रत्युत्तर से पूर्व जिसने प्रबल प्रतिक्रिया उत्पन्न की है। एक श्वास। यह सचेत स्वीकृति कि आप बोलने वाले हैं, और स्पष्टता के उस गुण की ओर संक्षिप्त वापसी जिसे सचेत श्वसन उपलब्ध कराता है। उस स्पष्टता में, जो कहा जाना आवश्यक है वह अधिक उपलब्ध हो जाता है, और जो कहा जाना आवश्यक नहीं है वह अधिक स्पष्ट रूप से अनावश्यक हो जाता है।

"अन्ततः, सर्वाधिक गहन आध्यात्मिक अभ्यास सबसे सरल है: श्वास की ओर लौटना। बार-बार, प्रत्येक परिस्थिति में, बिना नाटक या अपेक्षा के। श्वास सदा वहाँ है। ऋत सदा वहाँ है। और सचेत वापसी में, संरेखण नवीकृत होता है, क्षण-प्रतिक्षण, आपके शेष जीवन भर।"

भाग सत्रह

गहन संरचना: ऋत और आधुनिक विज्ञान की वास्तुकला

ऋत आधुनिक विज्ञान की वास्तुकला में	
यही व्यवस्था, पाँच स्वतन्त्र उपकरणों द्वारा पढ़ी गई	
1 भौतिकी	अपरिवर्त्यता एवं सममिति नोएदर का प्रमेय संरक्षण-नियम एक गहनतर, अपरिवर्ती व्यवस्था से उतरे हैं — नियमों के पीछे का नियम।
2 ऊष्मागतिकी	ऋण-एंट्रॉपी वह व्यवस्था जो जीवन उधार लेता है सजीव वस्तुएँ एक सतत प्रवाह से व्यवस्था बाँचकर उसे टिकाती हैं — मौन नहीं, जवाब।
3 जीवविज्ञान	समस्थापन स्वयं को सुधारता शरीर विचलन को भीतर और उसे सुधारकर प्राप्त स्थिरता, अनवरत, सजगता के नीचे।
4 तंत्रिका	पूर्वानुमाननीय मन संरक्षण के रूप में सोच हम अपना प्रतिमान देखते हैं, जुड़े से सुधारा हुआ; विसंरक्षण वह प्रतिमान है जिसने अज्ञान होना बन्द कर दिया।
5 जटिलता	स्वयं-संगठन बिना संनापति के व्यवस्था संगति स्थानीय अन्योन्यक्रिया से उभरती है — वह दृष्टि जिसे किसी पक्षी ने अधिकृत नहीं किया। ऋत अनाभूत व्यवस्था के रूप में।

भाग सत्रह — गहन संरचना

ऋत आधुनिक विज्ञान के पाँच स्वतन्त्र उपकरणों द्वारा पढ़ा गया
भाग सत्रह — सिंहावलोकन

नियमों के पीछे का नियम

"ब्रह्माण्ड के विषय में सर्वाधिक अबोधगम्य बात यह है कि वह बोधगम्य है।"

— अल्बर्ट आइंस्टीन

हमने इस पुस्तक भर में ऋत की चर्चा उस व्यवस्था के रूप में की है जो नियमों को विद्यमान होने ही देती है — संगति के नीचे की संगति। वह कथन, अब तक, एक काव्यात्मक अलंकरण जैसा सुनाई दिया होगा। यह वह नहीं है। यह बीसवीं सदी की भौतिकी की गहनतम खोजों में से एक से मेल खाता है, और यहाँ, इन अन्तिम भागों की देहली पर, यह देखने के लिए ठहरना सार्थक है कि ऋषियों की अन्तर्ज्ञानात्मक समझ को कितने शब्दशः रूप से पढ़ा जा सकता है।

एक ऐसे प्रश्न से आरम्भ कीजिए जिसे पूछने का अधिकांश लोग कभी सोचते ही नहीं। संरक्षण-नियम होते ही क्यों हैं? ऊर्जा संरक्षित है; संवेग संरक्षित है; विद्युत आवेश संरक्षित है। हम इन्हें कण्ठस्थ किए जाने वाले तथ्यों के रूप में सीखते हैं। किन्तु ये यादृच्छिक तथ्य नहीं हैं। 1918 में गणितज्ञ एमी नोएदर ने कुछ असाधारण सिद्ध किया: भौतिकी का प्रत्येक संरक्षण-नियम वास्तविकता की संरचना में एक सममिति से मेल खाता है। ऊर्जा इसलिए संरक्षित है कि भौतिकी के नियम समय के साथ नहीं बदलते। संवेग इसलिए संरक्षित है कि वे स्थान-स्थान पर नहीं बदलते। आवेश एक और भी सूक्ष्मतर सममिति के कारण संरक्षित है। संरक्षण-नियम आधारशिला नहीं हैं। सममितियाँ आधारशिला हैं, और संरक्षण-नियम उनसे परिणामों के रूप में निकलते हैं।

इसे पुनः पढ़िए, धीरे-धीरे, क्योंकि यह समस्त विज्ञान के सर्वाधिक सुन्दर परिणामों में से एक है। संसार की विश्वसनीयता — यह तथ्य कि ऊर्जा लुप्त नहीं होती, कि नियम आज जैसे हैं कल भी वैसे ही हैं, यहाँ जैसे हैं वहाँ भी वैसे ही — कोई कोरा तथ्य नहीं है। यह एक अन्तर्निहित अपरिवर्त्यता की अभिव्यक्ति है। एक गहनतर संगति है, और जो नियम हम प्रेक्षित करते हैं वे

उसकी सतह हैं। यही ठीक वह है जो ऋषियों का ऋत से अभिप्राय था: अनेक में से एक नियम नहीं, बल्कि वह दशा जो नियम को सम्भव बनाती है।

*

**

ऋत के मुख के रूप में अपरिवर्त्यता

भौतिकविद जो शब्द उपयोग करते हैं वह है अपरिवर्त्यता — वह जो रूपान्तरण के अधीन नहीं बदलता। वैदिक ऋषियों ने जो शब्द उपयोग किया वह है ऋत — वह जो समस्त परिवर्तन के नीचे स्थिर रहता है। ये एक ही शब्द के अनुवाद नहीं हैं; ये महाद्वीपों और सहस्राब्दियों की दूरी पर उठे, उन लोगों से जिन्होंने एक-दूसरे के विषय में कभी सुना ही नहीं था। किन्तु ये उसी पहचान की ओर संकेत कर रहे हैं: कि आभासों के अविराम प्रवाह के नीचे, कुछ गति नहीं करता, और कि उस किसी वस्तु की स्थिरता ही वह है जो शेष हर वस्तु को नियमबद्ध, पूर्वानुमेय, और बोधगम्य होने देती है।

विचार कीजिए कि अपरिवर्त्यता क्या सम्भव बनाती है। क्योंकि भौतिकी के नियम यहाँ वैसे ही हैं जैसे दस अरब प्रकाश-वर्ष दूर किसी तारे पर, एक खगोलविद उस तारे के प्रकाश का विश्लेषण कर सकता है और उसकी रसायन-विद्या को उतने ही विश्वास से पढ़ सकता है जितने विश्वास से कोई रसायनज्ञ किसी प्रयोगशाला में एक नमूना पढ़ता है। हाइड्रोजन का वर्णक्रमीय चिह्न हर जगह वही है। यह कोई छोटी बात नहीं है। इसका अर्थ है कि ब्रह्माण्ड पृथक् स्थानीय राज्यों का संग्रह नहीं है, प्रत्येक अपने नियमों के साथ, बल्कि एक एकल संगत व्यवस्था है जो प्रत्येक पैमाने पर और प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से अभिव्यक्त होती है। एकता हमारे द्वारा आरोपित नहीं की गई। हम इसे खोजते हैं। और यह खोज एक बार भी कभी विफल नहीं हुई।

*

**

ब्रह्माण्ड बोधगम्य है ही क्यों

उद्धरण में आइंस्टीन की टिप्पणी प्रायः उद्धृत की जाती है और विरले ही समझी जाती है। वे इस पर विस्मय अभिव्यक्त नहीं कर रहे थे कि हम ब्रह्माण्ड को समझने के लिए पर्याप्त चतुर हैं। वे इस पर विस्मय अभिव्यक्त कर रहे थे कि ब्रह्माण्ड उस प्रकार की वस्तु है जिसे समझा जा सकता है — कि यह संरचित, संगत, और नीचे तक नियमबद्ध है, बजाय अव्यवस्थित, यादृच्छिक, या स्व-विरोधी होने के। कोई तार्किक अनिवार्यता नहीं है कि कोई ब्रह्माण्ड

बोधगम्य हो। शुद्ध यादृच्छिकता का ब्रह्माण्ड न कोई प्रतिरूप टिकाता, न कोई प्रेक्षक, न कोई विज्ञान, और न कोई बोधा यह तथ्य कि हमारा बोधगम्य है, ऋत का सर्वाधिक मूलभूत प्रमाण है जो विद्यमान है, और यह इतना व्यापक है कि हम उसे उसी प्रकार अनदेखा कर देते हैं जिस प्रकार मछली जल को अनदेखा कर देती है।

व्यावहारिक परिणाम को लक्षित कीजिए, क्योंकि यह पुस्तक अन्ततः अभ्यास के विषय में है, ब्रह्माण्डविज्ञान के विषय में नहीं। यदि ब्रह्माण्ड नीचे तक नियमबद्ध है — यदि वास्तविकता का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जो सच्चे रूप से यादृच्छिक हो — तो यादृच्छिकता का, बेतरतीबी का, आपके जीवन में निरर्थक अव्यवस्था का आपका अपना अनुभव आपके बोध के विषय में सूचना है, वास्तविकता के विषय में नहीं। जो अव्यवस्था आप अनुभव करते हैं वह उस अन्तराल का मापदण्ड है जो उपस्थित व्यवस्था और उस व्यवस्था के बीच है जिसे आप वर्तमान में देख सकते हैं। उस अव्यवस्था को घटाने के लिए, आपको संसार पर व्यवस्था आरोपित करने की आवश्यकता नहीं। आपको अपने बोध को उस व्यवस्था के साथ संरेखित करने की आवश्यकता है जो संसार के पास पहले से ही है। यह धर्म का सम्पूर्ण कार्यक्रम है, भौतिकी की भाषा में पुनःकथित।

**

मैं यहाँ सावधान रहना चाहता हूँ, क्योंकि अतिरेक करना सरल होगा। नोएदर का प्रमेय गणित है, तत्त्वमीमांसा नहीं; यह हमें बताता है कि संरक्षण-नियम सममितियों से अनुसरण करते हैं, और इससे अधिक नहीं। मैं यह दावा नहीं कर रहा कि भौतिकी ने ऋत के अस्तित्व को सिद्ध कर दिया है जैसा वैदिक ऋषियों ने उसकी कल्पना की थी। मैं कुछ अधिक संयमित और, मेरे विचार से, अधिक रोचक दावा कर रहा हूँ: कि जब भौतिकी अपनी गहनतम परत तक पहुँचती है, तो वह असम्बद्ध नियमों का ढेर नहीं पाती। वह एक एकल अन्तर्निहित संगति पाती है जिससे नियम उतरते हैं। और कि ऋषियों ने, गणित के बजाय ध्यान के साथ कार्य करते हुए, उसी संरचना की सूचना हजारों वर्ष पूर्व दी। दो मार्ग, दो उपकरण, एक भू-भाग।

वह अभिसरण प्रमाण नहीं है। किन्तु यह उस प्रकार की वस्तु है जिसे एक ईमानदार वैज्ञानिक और एक ईमानदार साधक को समान रूप से जिज्ञासु बना देना चाहिए। यह सुझाता है कि व्यवस्था किसी भी परम्परा की सम्पत्ति नहीं है। यह वास्तविकता की सम्पत्ति है, और दोनों परम्पराएँ उसकी सूचना दे रही हैं। ऋत नियमों के पीछे का नियम है। भौतिकविद उसे

सममिति कहता है; ऋषि उसे ऋत कहता है; ब्रह्माण्ड केवल विश्वसनीय बना रहता है, और हमारे लक्षित करने की प्रतीक्षा करता है।

"संरक्षण-नियम नींव नहीं हैं। ये परिणाम हैं। इनके नीचे एक अपरिवर्त्यता है — एक स्थिरता जो किसी भी रूपान्तरण के अधीन नहीं बदलती। वह स्थिरता वह है जिसे ऋषियों ने ऋत कहा, और यही कारण है कि ब्रह्माण्ड समझा ही जा सकता है।"

अध्याय चौहतर

वह व्यवस्था जिसे जीवन उधार लेता है

"जीवन ऋणात्मक एन्ट्रॉपी पर निर्वाह करता है।"

— एरविन श्रोडिंगर

एक आपत्ति है जिसे कोई विचारशील पाठक आरक्षित रखे होगा। यदि ब्रह्माण्ड मूलतः व्यवस्थित है, तो भौतिकी का इतना अधिक भाग यह क्यों आग्रह करता है कि वह क्षीण हो रहा है? ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम — सम्भवतः सर्वाधिक अविराम नियम जिसे हम जानते हैं — कहता है कि किसी भी बन्द तन्त्र में, अव्यवस्था बढ़ती है। ऊष्मा गर्म से ठण्डे की ओर बहती है। संरचनाएँ क्षयित होती हैं। व्यवस्था, अकेली छोड़ दी जाने पर, एकरूपता में विलीन हो जाती है। यह, अपने ऊपरी रूप में, ऋत का विपरीत प्रतीत होता है। यह यह कहता प्रतीत होता है कि वास्तविकता की गहनतम प्रवृत्ति संगति नहीं बल्कि पतन है।

यह आपत्ति गम्भीरता से लेने योग्य है, क्योंकि इसका समाधान प्रकट करता है कि सजीव तन्त्रों के स्तर पर ऋत वस्तुतः क्या है। समाधान यह है: दूसरा नियम बन्द तन्त्रों का वर्णन करता है, और जीवन कोई बन्द तन्त्र नहीं है। सजीव वस्तु एक खुला तन्त्र है — एक संरचना जिसके माध्यम से ऊर्जा और पदार्थ निरन्तर बहते हैं। और खुले तन्त्रों में, कुछ उल्लेखनीय सम्भव हो जाता है। व्यवस्था बनाए रखी जा सकती है, और स्थानीय रूप से बढ़ाई भी जा सकती है, जब तक तन्त्र अपने परिवेश में अव्यवस्था निर्यात करके उसका मूल्य चुकाता है। जीवन दूसरे नियम का उल्लंघन नहीं करता। जीवन उसके भीतर कार्य करने की ब्रह्माण्ड की सर्वाधिक परिष्कृत रणनीति है।

*

**

एक ज्वाला और एक कोशिका में क्या समान है

एक मोमबत्ती की ज्वाला पर विचार कीजिए। यह एक स्थिर, संगठित संरचना है — एक पहचानने योग्य आकार जो घंटों बना रहता है। फिर भी यह कोई वस्तु नहीं है; यह एक प्रक्रिया है। ज्वाला अपना रूप केवल इसलिए धारण करती है कि मोम और ऑक्सीजन उसमें बहते हैं और ऊष्मा तथा दहन-उत्पाद बाहर बहते हैं। प्रवाह रोक दीजिए और रूप तत्काल लुप्त हो जाता है। ज्वाला प्रवाह द्वारा बनाए रखी गई व्यवस्था है। यह अपनी संगति उस ऊर्जा-धारा से उधार लेती है जो उसमें से गुजरती है, और उस ऊर्जा को परिवेश में अधिक अव्यवस्थित रूप में लौटा देती है।

अब एक सजीव कोशिका पर विचार कीजिए, जो वही सिद्धान्त है जो परिष्कार की एक प्रायः अकल्पनीय मात्रा तक उठाया गया है। कोशिका भी प्रवाह द्वारा बनाए रखी गई एक संरचना है — पोषक तत्त्व भीतर, अपशिष्ट बाहर, ऊर्जा पकड़ी गई, रूपान्तरित, और विसर्जित। यह भी कोई वस्तु नहीं बल्कि एक प्रक्रिया है, पदार्थ और ऊर्जा की एक नदी में एक स्थिर प्रतिरूप। भौतिकविद एरविन श्रोडिंगर ने, व्याख्यानों के एक प्रसिद्ध समुच्चय में जिसने आणविक जीवविज्ञान को आरम्भ करने में सहायता की, इसे स्तब्धकारी स्पष्टता से कहा: एक सजीव जीव अपने परिवेश से निरन्तर व्यवस्था खींचकर जीवित रहता है — उनके शब्दों में, ऋणात्मक एन्ट्रॉपी पर निर्वाह करके। जीवन क्षय की अनुपस्थिति नहीं है। जीवन क्षय की सार्वभौमिक धारा के विरुद्ध व्यवस्था का सक्रिय, क्षण-दर-क्षण उधार लेना है।

*
**

बहने वाली व्यवस्था के रूप में ऋत

यहीं वैदिक दृष्टि और ऊष्मागतिक दृष्टि मिलती हैं, और ठीक-ठीक मिलती हैं। ऋषियों ने ऋत की कल्पना एक स्थैतिक व्यवस्था के रूप में नहीं की — गतिहीन बैठा एक तैयार स्फटिक। उन्होंने इसकी कल्पना एक बहने वाली व्यवस्था, एक लय, एक सतत गति के रूप में की। शब्द का संस्कृत मूल वस्तुओं के बहते क्रम, सम्यक् गति, ब्रह्माण्डीय चलन का अर्थ वहन करता है। यह किसी संग्रहालय की व्यवस्था नहीं है। यह एक नदी की व्यवस्था है जो अपना आकार ठीक इसलिए धारण रखती है कि वह कभी गति करना बन्द नहीं करती।

और आपका अपना जीवन ठीक यही है। आप कोई स्थिर वस्तु नहीं हैं जो कभी-कभार भोजन ग्रहण करती है। आप एक ज्वाला-सदृश प्रक्रिया हैं, श्वास, पोषण, और ऊर्जा के एक

सतत प्रवाह में एक स्थिर तरंग। जो परमाणु आज आपका गठन करते हैं वे अधिकांशतः वे परमाणु नहीं हैं जिन्होंने एक वर्ष पूर्व आपका गठन किया था; आप प्रायः पूर्णतः प्रतिस्थापित हो चुके हैं, अणु-दर-अणु, फिर भी पहचानने योग्य रूप से स्वयं बने रहते हुए। जो बना रहता है वह पदार्थ नहीं बल्कि प्रतिरूप है — वह व्यवस्था, वह ऋत, जिसे प्रवाह पुनर्गठित करता रहता है। आप जल नहीं हैं। आप तरंग हैं।

**

यह संरेखण के सम्पूर्ण प्रश्न को एक ऐसे ढंग से पुनः ढालता है जिसे मैं सच्चे रूप से मर्मस्पर्शी पाता हूँ। जीवित होना पहले से ही प्रत्येक क्षण एन्ट्रॉपी के विरुद्ध व्यवस्था उधार लेना है। प्रत्येक श्वास दूसरे नियम के साथ एक लेन-देन है: आप ऑक्सीजन और भोजन की उच्चतर-कोटि की व्यवस्था ग्रहण करते हैं, आप उसका उपयोग अपनी संरचना बनाए रखने के लिए करते हैं, और आप निम्नतर-कोटि की अव्यवस्था संसार को लौटा देते हैं। यह संरेखण का कोई रूपक नहीं है। यह उसकी शब्दशः क्रियाविधि है। भली-भाँति जीना — धर्म में जीना — इस उधार को स्वच्छता से संचालित करना है, जो संगति आपको आवश्यक है वह लेना और अपशिष्ट को ईमानदारी से विसर्जित करना, बजाय उस प्रवाह को संचित करने, पकड़ने, या उससे लड़ने के जो आपको टिकाता है।

विसंरेखण, इस प्रकाश में, एक बन्द तन्त्र की भाँति आचरण करने का प्रयास है — थामना, स्थिर करना, प्रवाह को अस्वीकार करना। यह एक ऐसी संरचना में स्थायित्व के पीछे आसक्ति है जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व अनित्यता पर, सतत विनिमय पर निर्भर है। जकड़ा हुआ जीवन, संचय और रक्षा का जीवन, एक ऐसा जीवन है जो ठीक उसी नियम का उल्लंघन करने का प्रयास कर रहा है जो उसे श्वास लेते रखता है। यह जीत नहीं सकता, और हारती हुई लड़ाई का घर्षण ठीक वह तनाव और थकान है जिसका हमने विसंरेखण पर अध्यायों में परीक्षण किया। संरेखित जीवन इसका विपरीत करता है। यह ग्रहण करता है, यह रूपान्तरित करता है, यह छोड़ता है। यह नदी को अपने माध्यम से बहते रखता है। और उस गति में, विरोधाभासी रूप से, यह अपनी स्थिरता पाता है — एकमात्र प्रकार की स्थिरता जो किसी सजीव वस्तु के पास कभी रही है।

अतः दूसरा नियम ऋत का शत्रु नहीं है। यह वह क्षेत्र है जिसके भीतर ऋत स्वयं को जीवन के रूप में अभिव्यक्त करता है। ब्रह्माण्ड अव्यवस्था की ओर प्रवृत्त होता है, और उस विशाल प्रवृत्ति के विरुद्ध, जीवन उत्कृष्ट व्यवस्था के द्वीप तराशता है, जो प्रवाह का प्रतिरोध

करके नहीं बल्कि उसमें परिशुद्धता के साथ सहभागी होकर टिकते हैं। आप उन्हीं द्वीपों में से एक हैं। प्रत्येक श्वास उधार को नवीकृत करती है। जीने की कला उसे सुघड़ता से चुकाने की कला है।

"जीवन एन्ट्रॉपी को पराजित नहीं करता; यह उसके साथ नृत्य करता है। आप कोई वस्तु नहीं हैं जो क्षय का प्रतिरोध करती है बल्कि एक प्रतिरूप हैं जिसे प्रवाह पुनर्गठित करता रहता है — ऊर्जा की नदी में व्यवस्था की एक स्थिर तरंग। सरेखण में जीना नदी को अपने माध्यम से स्वच्छता से बहते रखना है।"

अध्याय पचहत्तर

स्वयं-संशोधक शरीर

"आन्तरिक परिवेश की स्थिरता एक स्वतन्त्र और स्वाधीन जीवन की दशा है।"

— क्लोद बर्नार्

इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में, मैंने आपसे स्थिर बैठकर अपने ही शरीर को बिना निर्देश के कार्य करते प्रेक्षित करने को कहा था। हम अब उस प्रेक्षण की ओर तीक्ष्णतर उपकरणों के साथ लौटते हैं, क्योंकि शरीर हम सबको उपलब्ध ऋत की सर्वाधिक सुलभ प्रयोगशाला है, और आधुनिक शरीरक्रियाविज्ञान ने उसकी स्वयं-संशोधक बुद्धिमत्ता का असाधारण विस्तार से मानचित्रण किया है। जिसे वैदिक ऋषियों ने शरीर में स्वयं को अभिव्यक्त करते ऋत के रूप में अन्तर्ज्ञान से जाना, विज्ञान उसे समस्थापन कहता है — और कहानी किसी भी अकेले शब्द के सुझाव से अधिक समृद्ध है।

उन्नीसवीं सदी के शरीरक्रियावैज्ञानिक क्लोद बर्नार् ने कुछ ऐसा लक्षित किया जिसने समस्त जीवविज्ञान को उसके चारों ओर संगठित कर दिया: एक सजीव शरीर अपने अन्तःस्थल की दशाओं को प्रायः पूर्णतः स्थिर रखता है, तब भी जब बाहर का संसार प्रचण्ड रूप से झूलता है। आपका केन्द्रीय तापमान एक या दो डिग्री के भीतर रहता है चाहे आप हिमतूफान में हों या मरुस्थल में। आपके रक्त की अम्लता इतनी संकीर्ण पट्टी में रखी जाती है कि एक छोटा विचलन एक चिकित्सकीय आपात है। आपका रक्त-शर्करा, आपके ऑक्सीजन-स्तर, एक दर्जन महत्वपूर्ण आयनों की सान्द्रता — सब स्थिर रखे गए, क्षण-प्रतिक्षण, एक अचेतन बुद्धिमत्ता द्वारा जो कभी विश्राम नहीं करती और जिसे आपने अभिकल्पित नहीं किया।

*

**

कठोरता नहीं, सुधार द्वारा बनाए रखी गई व्यवस्था

निर्णायक अन्तर्दृष्टि यह है कि यह स्थिरता कैसे प्राप्त की जाती है। यह शरीर को संसार से दीवार उठाकर पृथक् करके प्राप्त नहीं की जाती, न ही हर वस्तु को कठोरता से स्थिर रखकर। यह सतत सुधार द्वारा प्राप्त की जाती है — विचलन को भाँपकर और उसके प्रति प्रत्युत्तर देकर। जब आपका तापमान बढ़ता है, आप पसीना बहाते हैं; जब वह गिरता है, आप काँपते हैं और अपनी बाहिकाएँ सिकोड़ते हैं। जब आपका रक्त अम्लीय होता है, आपकी श्वास अधिक कार्बन डाइऑक्साइड निकालने के लिए गहरी हो जाती है। तन्त्र इसलिए स्थिर नहीं है कि वह स्थैतिक है बल्कि इसलिए कि वह अन्तहीन रूप से, संवेदनशीलता से स्वयं-संशोधक है। स्थिरता, एक सजीव वस्तु में, एक सक्रिय उपलब्धि है, प्रतिपुष्टि के माध्यम से प्रत्येक सेकण्ड नवीकृत।

यह ठीक ऋत की वह संरचना है जैसा ऋषियों ने उसका वर्णन किया: एक स्थिर और भंगुर व्यवस्था नहीं, बल्कि एक गतिशील संगति जो प्रत्युत्तरशीलता के माध्यम से स्वयं को बनाए रखती है। और यह मन और चयन के स्तर पर जिए गए मानव जीवन के लिए एक तत्काल पाठ वहन करती है, जो वह स्तर है जिससे यह सम्पूर्ण पुस्तक सम्बद्ध है। सरेखण कठोरता नहीं है। सरेखित व्यक्ति वह नहीं है जिसने हर वस्तु को यथास्थान स्थिर कर दिया है और गति करने से अस्वीकार करता है। सरेखित व्यक्ति वह है जो विचलन को शीघ्र भाँपता है और सौम्यता से, सतत रूप से सुधार करता है, इससे पूर्व कि छोटे भटकाव बड़े संकट बनें। समस्थापन माँस में लिखा गया धर्म है।

*
**

अपस्थापन: तनाव भर स्थिर रहने का मूल्य

आधुनिक शरीरक्रियाविज्ञान ने एक गहनतर परत जोड़ी है जो तनाव पर इस पुस्तक के अध्यायों से सीधे बोलती है। संकल्पना है अपस्थापन — परिवर्तन के माध्यम से प्राप्त स्थिरता — और इसका सहचर, अपस्थापन-भार, जो दीर्घकालिक तनाव के अधीन स्थिरता बनाए रखने का संचयी मूल्य है। जब आप किसी सच्ची, तीव्र माँग का सामना करते हैं, तो आपका शरीर सुन्दरता से एकजुट होता है: यह रक्तचाप बढ़ाता है, ऊर्जा छोड़ता है, ध्यान को तीक्ष्ण करता है, फिर शान्त होकर पुनर्प्राप्ति करता है। यह तन्त्र है जैसा अभिकल्पित था वैसा कार्य करता हुआ। एकजुटता समस्या नहीं है। शान्त होने में विफलता समस्या है।

जब माँग कभी समाप्त नहीं होती — जब बोधित संकट निरन्तर रहता है, जैसा आधुनिक जीवन में इतने अनेकों के लिए है — तो शरीर को पुनर्प्राप्ति का संकेत कभी नहीं मिलता। वह एकजुटता जिसका संक्षिप्त होना अभिप्रेत था, आधाररेखा बन जाती है। और ठीक वे तन्त्र जो आपातकाल में आपकी रक्षा करते हैं, अविराम सक्रियण के माध्यम से, आपको क्षति पहुँचाने लगते हैं। यह अपस्थापन-भार है: वह क्षरण जो तब संचित होता है जब किसी स्वयं-संशोधक तन्त्र को बिना विश्राम के सुधार करने के लिए बाध्य किया जाता है। यह, शरीरक्रियाविज्ञान की परिशुद्ध भाषा में, सतत विसंरक्षण का मूल्य है — शरीर, अपने ऊतकों में, एक ऐसे मन के लिए चुकाता हुआ जो उसे शान्त नहीं होने देगा।

*
**

मैं इसे सम्पूर्ण पुस्तक के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सेतुओं में से एक पाता हूँ, क्योंकि यह विसंरक्षण के मूल्य को मापनीय बना देता है। पहले मैंने तर्क किया था कि तनाव वास्तविकता का तथ्य होने के बजाय विसंरक्षण का एक संकेत है। अपस्थापन-भार वह संकेत भौतिक रूप में है। इसे तनाव-हार्मोनों में, रक्तचाप-प्रतिरूपों में, प्रदाहक चिह्नों में, उन तन्त्रों के धीमे क्षरण में मापा जा सकता है जिन्हें स्वयं-संशोधक होना चाहिए। शरीर आपके साथ विश्वासघात नहीं कर रहा जब वह दीर्घकालिक तनाव के अधीन टूटता है। यह, पूर्ण ईमानदारी से, सूचना दे रहा है कि उससे एक ऐसे तनाव के विरुद्ध स्थिर रहने को कहा गया जो बहुत पहले समाप्त हो जाना चाहिए था और नहीं हुआ।

और यहाँ इस पुस्तक का व्यावहारिक हृदय स्वयं को पुनः प्रतिष्ठित करता है। इस सम्पूर्ण उपकरण पर आपके पास जो एकमात्र सर्वाधिक प्रत्यक्ष लीवर है वह वही है जिसे ऋषियों ने अपने विज्ञान के केन्द्र में रखा और जिसका हमने श्वास पर अध्यायों में विस्तार से परीक्षण किया। श्वास इन स्वायत्त तन्त्रों में एकमात्र है जो एक साथ स्वचालित और सचेत रूप से नियन्त्रणीय है। यह अपने आप चलती है, आपके हृदय-स्पन्दन और आपके पाचन की भाँति — किन्तु उनके विपरीत, आप इसकी बागडोर इच्छानुसार थाम सकते हैं। यही कारण है कि संरक्षण की प्रत्येक परम्परा, प्रत्येक संस्कृति भर, श्वास पर प्रवेश-बिन्दु के रूप में अभिसरित हुई। यह शरीर का प्रमुख सुधार-डायल है, वह एकमात्र स्थान जहाँ सचेत मंशा सीधे स्वयं-संशोधक यन्त्र-व्यवस्था में पहुँच सकती है और उसे, निःसन्देह रूप से, संकेत दे सकती है कि आपातकाल समाप्त हो गया है और शान्त होना सुरक्षित है।

अतः जब आप श्वास को धीमा और गहरा करते हैं, तो आप कोई शिथिलीकरण-तकनीक नहीं कर रहे। आप शरीर से उस एक भाषा में बोल रहे हैं जिसे उसकी स्वयं-संशोधक बुद्धिमत्ता अनदेखा नहीं कर सकती। आप समस्थापक तन्त्र में पहुँच रहे हैं और उसे वह सत्य बता रहे हैं जिसे चिन्तित मन ने छिपाए रखा: कि कोई बाध नहीं है, कि माँग समाप्त हो सकती है, कि उसे पुनर्प्राप्ति की अनुमति है। शरीर उस संकेत के लिए आरम्भ से ही सुन रहा था। यह ऋत है, माँस में प्रतीक्षा करता हुआ, अपनी ही संगति को पुनर्स्थापित करने की अनुमति के लिए — और श्वास वह है जिससे आप उसे देते हैं।

"शरीर स्वयं को कठोर होकर नहीं बल्कि विचलन को भाँपकर और उसे सुधारकर स्थिर रखता है, अनवरत, समस्त सजगता के नीचे। तनाव बिना विश्राम के सुधार करने का मूल्य है। और श्वास वह एकमात्र डायल है जिससे एक सचेत मन उस प्राचीन यन्त्र-व्यवस्था में पहुँच सकता है और कह सकता है: आपातकाल समाप्त हो गया है। अब तुम शान्त हो सकते हो।"

पूर्वानुमानकारी मन

"हम वस्तुओं को वैसा नहीं देखते जैसी वे हैं; हम उन्हें वैसा देखते हैं जैसे हम हैं।"

— तल्मूद, जैसा प्रायः प्रस्तुत किया जाता है

इस पुस्तक भर में मैंने आग्रह किया है कि बोध वास्तविक रणक्षेत्र है — कि आपके और वास्तविकता के बीच का अन्तराल संसार में कोई अन्तराल नहीं बल्कि इसमें अन्तराल है कि आप उसे कैसे देखते हैं। यह पुस्तक के केन्द्रीय दावों में से एक है, और मानव इतिहास के अधिकांश भाग में यह उन चिन्तकों की साक्षी पर टिका था जिन्होंने अपने ही मनों का बड़ी सावधानी से प्रेक्षण किया था। विगत कुछ दशकों में, तंत्रिकाविज्ञान, एक पूर्णतः स्वतन्त्र मार्ग से, इस विषय में एक उल्लेखनीय रूप से समान चित्र पर पहुँचा है कि बोध कैसे कार्य करता है। मार्ग तकनीकी है और भाषा अपरिचित, किन्तु निष्कर्ष इस पुस्तक का है, क्योंकि यह दावे को एक आध्यात्मिक प्रतिपादन से किसी ऐसी वस्तु में बदल देता है जो क्रियाविधि के वर्णन के अधिक निकट है।

बोध का पुराना, अन्तर्ज्ञानात्मक चित्र यह है कि इन्द्रियाँ खिड़कियाँ हैं: प्रकाश और ध्वनि भीतर उँडेलते हैं, मस्तिष्क उन्हें निष्क्रिय रूप से ग्रहण करता है, और हम संसार को वैसा देखते हैं जैसा वह है। यह चित्र ग़लत है, और जिस ढंग से यह ग़लत है वह प्रकाशकारी है। मस्तिष्क संसार के आने की निष्क्रिय रूप से प्रतीक्षा नहीं करता। यह निरन्तर पूर्वानुमान उत्पन्न करता रहता है — इसका एक सतत, सक्रिय प्रतिमान कि वह आगे किससे मिलने की अपेक्षा करता है — और जो वस्तुतः आपके सचेत अनुभव तक पहुँचता है वह अधिकांशतः वही प्रतिमान है, उस अन्तर से सुधारा हुआ जो पूर्वानुमानित था और जो इन्द्रियाँ सूचित करती हैं उसके बीच। आप संसार को नहीं देखते। आप संसार का अपने मस्तिष्क का सर्वोत्तम पूर्वानुमान देखते हैं, त्रुटि से अद्यतन।

**

नियन्त्रित मतिभ्रम के रूप में बोध

कुछ तंत्रिकावैज्ञानिक इसे उत्तेजक रूप से कहते हैं: बोध एक नियन्त्रित मतिभ्रम है — नियन्त्रित, क्योंकि यह संवेदी आँकड़ों द्वारा वश में रखा जाता है, किन्तु फिर भी एक मतिभ्रम, क्योंकि इसका सार भीतर से उत्पन्न होता है। प्रमाण हर जगह है जब आप देखते हैं। दृष्टि-भ्रम इसलिए काम करते हैं कि वे मस्तिष्क के पूर्वानुमानों का दोहन करते हैं; आप उन्हें अ-देख नहीं सकते तब भी जब आप सत्य जानते हैं, क्योंकि पूर्वानुमान आपकी इच्छा के नीचे कार्य करता है। जब आप तेजी से पढ़ते हैं, आप प्रत्येक अक्षर का बोध नहीं करते; आप शब्दों का पूर्वानुमान करते हैं और कुछ लक्षणों की जाँच करते हैं। जब आप किसी परिचित कक्ष में चलते हैं, आप उसे फोटॉनों से नए सिरे से नहीं बनाते; आप उस प्रतिमान को लोड करते हैं जो आप पहले से धारण किए हैं और केवल उसे समायोजित करते हैं जो बदला है।

यह दक्ष है और सामान्यतः सटीक, और यही कारण है कि आप एक ऐसे संसार में कार्य कर ही सकते हैं जो प्रत्येक क्षण नए सिरे से संसाधित करने के लिए अति समृद्ध है। किन्तु इसका एक गहन परिणाम है, एक जिसे चिन्तक आत्मीय रूप से जानते थे: जो आप बोध करते हैं वह, प्रत्येक क्षण, इससे आकार पाता है कि आप पहले से क्या अपेक्षा करते, विश्वास करते, भय करते, और चाहते हैं। आपका प्रतिमान आपके अतीत से बना है। और इस प्रकार आपका अतीत चुपचाप आपका वर्तमान लिख रहा है, किसी स्मृति के रूप में नहीं जिसका आप स्मरण करते हैं बल्कि ठीक उस लेंस के रूप में जिसके माध्यम से वर्तमान आता है। यह, इस पुस्तक की भाषा में, संस्कार है — और यहाँ यह है, बोध की शब्दशः वास्तुकला के रूप में वर्णित।

*

**

यान्त्रिक रूप दिया गया, विसरेखण के रूप में मिथ्या-बोध

अब इस पुस्तक की केन्द्रीय थीसिस को नई परिशुद्धता से कहा जा सकता है। यदि बोध पूर्वानुमान है, तो विसरेखण, अपने मूल में, पूर्वानुमान-त्रुटि है जिसका उपयोग करने से मन अस्वीकार करता है। एक स्वस्थ बोधात्मक तन्त्र अद्यतन करता है: जब वास्तविकता पूर्वानुमान का खण्डन करती है, तो प्रतिमान संशोधित होता है, और बोध सत्य के निकट आता है। एक संस्कारित, रक्षित, भयभीत मन इसका विपरीत करता है — यह अपने प्रतिमान से आसक्त रहता है और खण्डन करने वाले प्रमाण की उपेक्षा करता है, संसार को पूर्वानुमान में बैठने के

लिए बाध्य करता हुआ, बजाय पूर्वानुमान को संसार में बैठने के लिए सुधारने के। यह अपने शुद्धतम रूप में विसरेखण है: एक ऐसा बोध जिसने वास्तविकता से सीखना बन्द कर दिया है।

विचार कीजिए कि यह ठीक कैसे जिए गए अनुभव से मेल खाता है। जो व्यक्ति आश्वस्त है कि दूसरे उसके साथ विश्वासघात करेंगे वह तटस्थ कर्मों में विश्वासघात का बोध करता है, क्योंकि पूर्वानुमान आँकड़ों को अभिभूत कर देता है। जो व्यक्ति निश्चित है कि वह विफल होगा वह अस्पष्ट परिणामों को पुष्टि के रूप में पढ़ता है, क्योंकि प्रतिमान अद्यतन नहीं हो रहा। आसक्त मन प्रचुरता में अभाव देखता है; भयभीत मन सुरक्षा में संकट देखता है। प्रत्येक स्थिति में दुःख वास्तविक है, किन्तु उसका स्रोत संसार नहीं है। उसका स्रोत एक पूर्वानुमानी प्रतिमान है जिसने स्वयं को सुधार के प्रति बन्द कर लिया है — एक बोध जो अब उससे संरेखित नहीं जो वस्तुतः वहाँ है।

**

और यही कारण है कि सजगता — अपनी व्याख्या से पूर्व अपने प्रत्यक्ष अनुभव पर ध्यान देने की सरल, आमूल क्रिया — वह सुधारक शक्ति है जिसे इस पुस्तक ने उसके होने का दावा किया है। सजगता बोध में कुछ नहीं जोड़ती। यह कुछ सूक्ष्मतर और अधिक शक्तिशाली करती है: यह पूर्वानुमान और प्रत्युत्तर के बीच के अन्तराल को इतना चौड़ा करती है कि पूर्वानुमान-त्रुटि दमित होने के बजाय अनुभव हो सके। उस चौड़े किए गए अन्तराल में, प्रतिमान अद्यतन हो सकता है। आप लक्षित कर सकते हैं कि भयाशंकित विश्वासघात नहीं आया, कि विपदा नहीं आ पहुँची, कि वर्तमान वस्तुतः वह अतीत नहीं है जिसका उसके लिए पूर्वानुमान किया गया था। सजगता वह है जिससे एक बन्द बोधात्मक चक्र उघाड़ा जाता है और पुनः सीखने में समर्थ बनाया जाता है।

ऋषियों ने उस अनुपाधिक, स्पष्ट-दर्शी अवस्था को अनेक नाम दिए — हम एक पश्चातवर्ती भाग में साक्षी की ओर आएँगे, वह सजगता जो बिना विकृति के बोध करती है। तंत्रिकाविज्ञान उसी गति का वर्णन भिन्न रूप से करेगा: एक बोधात्मक तन्त्र जो निम्न पूर्व-कठोरता और ताजे प्रमाण के प्रति उच्च संवेदनशीलता के साथ कार्य करता है, एक प्रतिमान जो इतने हल्के से धारण किया गया कि वास्तविकता द्वारा सतत रूप से सुधारा जा सके। वर्णन तनिक भी एक जैसे नहीं लगते। वे उसी उपलब्धि की ओर संकेत करते हैं। स्पष्ट देखना वास्तविकता को अपने प्रतिमान का सम्पादन करते रहने देना है। यह बोध के स्तर पर संरेखण है, और यह हर अन्य प्रकार की नींव है।

मैं यह स्वाँग नहीं करूँगा कि विज्ञान निर्णीत है; पूर्वानुमानी संसाधन एक युवा और विवादित ढाँचा है, और मैं इसे वैसे ही धारण करता हूँ जैसे ऋषियों ने हमसे हर वस्तु धारण करने को कहा — अनन्तिम रूप से, अनुभव की कसौटी पर परखी जाने वाली एक परिकल्पना के रूप में। किन्तु मैं इसे उल्लेखनीय पाता हूँ कि जब तंत्रिकाविज्ञान यह वर्णन करने का प्रयास करता है कि बोध वस्तुतः कैसे कार्य करता है, तो यह एक ऐसे चित्र पर पहुँचता है जिसमें हमारा दुःख अधिकांशतः एक अ-अद्यतन प्रतिमान का घर्षण है जो एक ऐसी वास्तविकता के विरुद्ध रगड़ रहा है जिसे सुनना उसने बन्द कर दिया है। यह ठीक वही है जो चिन्तकों ने भीतर से सूचित किया। पुनः दो उपकरण। एक भू-भाग।

"आप संसार को नहीं देखते; आप उसका अपने मस्तिष्क का पूर्वानुमान देखते हैं, जो आता है उससे सुधारा हुआ — या न सुधारा हुआ। दुःख अधिकांशतः एक ऐसा प्रतिमान है जिसने वास्तविकता से सीखना बन्द कर दिया है। और सजगता वह क्रिया है जो बन्द चक्र को उघाड़ देती है, ताकि वर्तमान अन्ततः अतीत के रूप में पढ़ा जाना बन्द कर सके।"

वह समग्र जो स्वयं को संगठित करता है

"समग्र अपने भागों से परे और ऊपर कुछ है, न कि केवल उन सबका योग।"

— अरस्तू

हम इस भाग के अन्तिम अध्याय की ओर, और आधुनिक विज्ञान के उस आयाम की ओर आते हैं जो वैदिक दृष्टि से सर्वाधिक गहराई से अनुनादित हो सकता है: जटिल तन्त्रों का, उद्भव का, और स्वयं-संगठन का विज्ञान। अपने अधिकांश इतिहास में, विज्ञान वस्तुओं को अलग-अलग करके आगे बढ़ा — समग्रों को उनके घटकों में न्यून करते हुए, बड़े को छोटे से समझाते हुए। यह विधि विस्मयकारी रूप से सफल थी, और इस पुस्तक में कुछ भी उसकी शक्ति का विवाद नहीं करता। किन्तु बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, विज्ञान परिघटनाओं की एक ऐसी श्रेणी का सामना करने लगा जिसे अलग-अलग करना समझा नहीं सकता था, और उनका सामना करते हुए, इसने कुछ ऐसा पुनः खोज लिया जिसे ऋषि कभी भूले ही नहीं थे: कि समग्र की व्यवस्था सदा उसके भागों में नहीं लिखी होती।

परिघटनाएँ हर जगह हैं जब आपके पास उनके लिए नेत्र हों। तारकपक्षियों का एक झुण्ड साँझ के आकाश में दम-तोड़ देने वाली संगति के प्रतिरूपों में घूमता है, फिर भी कोई नेता नहीं, कोई नृत्य-निर्देशक नहीं, कोई पक्षी नहीं जो योजना धारण करता हो। प्रत्येक पक्षी अपने निकट पड़ोसियों के सम्बन्ध में कुछ सरल नियमों का अनुसरण करता है, और उन स्थानीय अन्योन्यक्रियाओं से, बिना किसी केन्द्रीय आदेश के, एक संगत वैश्विक व्यवस्था उद्भूत होती है। प्रतिरूप वास्तविक है — आप उसे देख सकते हैं — किन्तु यह समग्र के स्तर पर निवास करता है, किसी व्यक्तिगत पक्षी में नहीं। यह, जटिलता-विज्ञान के परिशुद्ध शब्द में, एक उद्भूत व्यवस्था है।

उद्धवः सेनापति के बिना व्यवस्था

यह आधुनिक विज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारों में से एक है, और यह एक मिथ्या चयन को विखण्डित कर देता है जिसने ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के प्रश्न को सदियों से उलझा रखा है। मिथ्या चयन यह है: या तो व्यवस्था किसी आदेश देने वाले अभिकल्पक द्वारा बाहर से आरोपित की जाती है, या कोई वास्तविक व्यवस्था है ही नहीं और जो हम देखते हैं वह भ्रम या संयोग है। उद्धव एक तीसरी सम्भावना प्रकट करता है, और यही वह है जिसका वास्तविकता वस्तुतः उपयोग करती है। व्यवस्था भीतर से उठ सकती है, स्वतःस्फूर्त रूप से, सरल सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले भागों की अन्योन्यक्रिया के माध्यम से — सच्ची, सुदृढ़, कार्यात्मक व्यवस्था, कहीं कोई सेनापति बिना। तारकपक्षी-झुण्ड न अभिकल्पित है और न यादृच्छिक। यह स्वयं-संगठित है।

एक बार जब आप इसे देख लेते हैं, आप इसे प्रत्येक पैमाने पर देखते हैं। किसी केन्द्रीय अधिकार बिना कोशिकाएँ ऊतकों में संगठित होती हैं; ऊतक अंगों में; अंग एक शरीर की स्तब्धकारी संगति में। अलग-अलग चींटियाँ, प्रत्येक स्थानीय संकेतों का अनुसरण करती हुई, एक ऐसी बस्ती उत्पन्न करती हैं जो ऐसी आभासी बुद्धिमत्ता से आचरण करती है जो किसी चींटी के पास नहीं। तंत्रिकाएँ, प्रत्येक एक सरल इकाई, एक मन को जन्म देती हैं। बाज़ार, पारितन्त्र, भाषाएँ, नगर — सब वृहत्-पैमाने की व्यवस्था प्रदर्शित करते हैं जिसे किसी सहभागी ने अभिकल्पित नहीं किया और कोई अधिकार आदेश नहीं देता। ब्रह्माण्ड स्वयं-संगठन से व्याप्त है, ऐसे समग्रों से जो अपने भागों के योग से अधिक, और उससे अन्य, हैं।

*

**

स्वयं-संगठन के सिद्धान्त के रूप में ऋत

यहाँ, मेरा विश्वास है, हमें उपलब्ध ऋत का सर्वाधिक सटीक आधुनिक अनुवाद है। ऋषियों ने ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की कल्पना सृष्टि के बाहर से आदेश जारी करने वाले किसी राजा के अध्यादेश के रूप में नहीं की। उन्होंने इसकी कल्पना अन्तर्भूत के रूप में की — एक ऐसी व्यवस्था जो वास्तविकता स्वयं में रखती है, अपने ही स्वभाव से, परमाणु से आकाशगंगा तक प्रत्येक स्तर पर स्वतःस्फूर्त रूप से स्वयं को अभिव्यक्त करती हुई। यह स्वयं-संगठन की भाषा है, जिस तक ध्यानपूर्ण चिन्तक सहस्राब्दियों पूर्व पहुँचे, इससे पूर्व कि जटिलता-विज्ञान

ने उसे समीकरण दिए। ऋत संसार पर आरोपित व्यवस्था नहीं है। ऋत संसार की अपनी प्रवृत्ति है संगत होने की, प्रतिरूप पाने की, स्वयं को समग्रों में संगठित करने की।

और यह कुछ ऐसा सुलझा देता है जिसने इस पुस्तक के ध्यानपूर्ण पाठक को विचलित किया होगा। यदि ऋत कोई आदेश देने वाला देवता नहीं है जो नियम सौंपता है, तो वह क्या है जो व्यवस्था करता है? उत्तर यह है कि बाहर कुछ भी व्यवस्था नहीं करता; व्यवस्था करना वह है जो वास्तविकता करती है। संगति की ओर की प्रवृत्ति पदार्थ में ऊपर से नहीं जोड़ी जाती। यह इसका एक गुणधर्म है कि पदार्थ, ऊर्जा, और सूचना कैसे अन्योन्यक्रिया करते हैं जब वे ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। ऋषि कहेंगे कि ऋत वास्तविक का स्वभाव है। जटिलता-वैज्ञानिक कहेगा कि स्वयं-संगठन सन्तुलन से बहुत दूर के तन्त्रों का एक अन्तर्भूत गुणधर्म है। वे इतिहास के विपरीत छोरों से उसी वस्तु का वर्णन कर रहे हैं।

**

यह सम्पूर्ण पुस्तक की व्यावहारिक शिक्षा को उसके स्वाभाविक निष्कर्ष तक ले जाता है, और इसे स्पष्ट रूप से धारण करना सार्थक है। यदि व्यवस्था आरोपित होने के बजाय उद्भूत और स्वयं-संगठनकारी है, तो संरक्षण किसी बाह्य अधिकार के प्रति समर्पण नहीं है। यह कभी था ही नहीं। ऋत के साथ संरखित होना किसी सेनापति का आज्ञापालन करना नहीं है। यह एक स्वयं-संगठनकारी समग्र में सम्यक् रूप से सहभागी होना है — अपने चारों ओर के लोगों के सम्बन्ध में अपने ही सरल, सच्चे सिद्धान्तों का अनुसरण करना, और यह विश्वास करना कि समग्र के स्तर पर संगति के लिए आपका उसे नियन्त्रित करना, उसे आदेश देना, या उसे पूर्णतः समझना भी आवश्यक नहीं। तारकपक्षी झुण्ड को नहीं देखता। यह अपने पड़ोसियों पर ध्यान देता है और अपने नियम निभाता है, और झुण्ड अपनी देखभाल स्वयं कर लेता है।

यह, अन्ततः, वह है जिसका धर्म का सदा से अभिप्राय रहा है। आपसे ब्रह्माण्ड का प्रबन्धन करने को नहीं कहा जाता। आपसे उसमें अपना स्थान परिशुद्धता और सत्य के साथ ग्रहण करने को कहा जाता है — अपने स्वधर्म, अपने ही सम्यक् सिद्धान्त का अनुसरण करने को, अपने चारों ओर के प्रति निष्ठावान सम्बन्ध में। जब आप ऐसा करते हैं, तो आप अपने से कहीं बड़ी एक उद्भूत व्यवस्था में योगदान करते हैं, एक ऐसी व्यवस्था जिसे आप कभी अभियान्त्रित नहीं कर सकते थे और जिसकी आवश्यकता आपको नहीं। इसमें राहत अपार है, यदि आप स्वयं को उसे अनुभव करने दें। आपसे कभी समग्र को एक साथ थामे रखने की

अपेक्षा नहीं की गई थी। समग्र स्वयं को संगठित कर लेता है। आपका कार्य केवल, पूर्णता और सत्यता से, वह भाग होना है जो आप हैं।

और इस प्रकार हम इस भाग को वहीं समाप्त करते हैं जहाँ हमने इसे आरम्भ किया था: इस पहचान के साथ कि आधुनिक विज्ञान के गहनतम निष्कर्ष — अपरिवर्त्यता, जीवन की बहती व्यवस्था, स्वयं को सुधारता शरीर, पूर्वानुमानी मन, और स्वयं-संगठनकारी समग्र — ऋत की प्राचीन दृष्टि का खण्डन नहीं करते। वे उसका अनुवाद करते हैं। प्रत्येक उसी भू-भाग पर सधा एक भिन्न उपकरण है, और प्रत्येक, अपनी ही बोली में, वही सूचना लौटाता है: कि वास्तविकता व्यवस्थित है, कि व्यवस्था अन्तर्भूत और सजीव है, और कि मानव जीवन ठीक उस मात्रा तक फलता-फूलता है जिस मात्रा तक वह एक ऐसी व्यवस्था से संरक्षित होता है जिसे उसने रचा नहीं और जिसे आदेश नहीं दे सकता, किन्तु जिसमें, प्रत्येक श्वास, उसे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता है।

"कोई पक्षी झुण्ड को नहीं देखता; प्रत्येक अपने पड़ोसियों पर ध्यान देता है और अपने नियम निभाता है, और झुण्ड अपनी देखभाल स्वयं कर लेता है। आपसे कभी समग्र को एक साथ थामे रखने की अपेक्षा नहीं की गई थी। समग्र स्वयं को संगठित कर लेता है। आपका एकमात्र कार्य, पूर्णता और सत्यता से, वह भाग होना है जो आप हैं।"

भाग अठारह

श्वास-ब्रह्माण्ड समानुरूपता: दिव्य दृष्टि से ऋत तक

श्वास-ब्रह्माण्ड समानुरूपता			
यथा ऊपर, तथा भीतर — एक व्यवस्था, हर पैमाने पर नीहित			
श्वास ऋत की सबसे छोटी इकाई	संगत हृदय मापनीय संरचना	प्राण व्यवस्था का प्रवाह	स्वप्न गुप्त में सम्यक्
सह एक कक्षा: अंतर्गत फिर भी इच्छा के असीम	वीमी श्वास → हृदय, श्वास, दाब एक कक्षा में	सजीव तन्त्र के माध्यम से ऊर्जा और सूचना	सांस्कृतिकता तन्त्र के रूप में, स्वीकृत पदार्थ नहीं
श्वास-दा-श्वास संरक्षित, सब एक साथ नहीं	संगति उपकरणों पर दृश्य	कोई गुप्त इत नहीं — व्यवस्था का प्रवाह	नीच पर क्षेत्र और कम्पन
द्वार, सदा उपलब्ध	वेगस निश्चय: शान्त हो जाओ	श्वास के माध्यम से नियमित	क्षमों के बीच स्थिर बिन्दु पर निराल है

भाग अठारह — दिव्य दृष्टि से ऋत तक

एक व्यवस्था, श्वास से ब्रह्माण्ड तक नीहित

भाग अठारह — सिंहावलोकन

ऋत की लघुतम इकाई के रूप में श्वास

"श्वास शरीर और मन के बीच, दृश्य और अदृश्य के बीच,
स्व और ब्रह्माण्ड के बीच सेतु है।"

— एक पारम्परिक शिक्षा, पुनःकथित

यह भाग पुस्तक में सर्वाधिक व्यक्तिगत है, क्योंकि यह उस प्रेक्षण की ओर लौटता है जिससे सम्पूर्ण जिज्ञासा आरम्भ हुई थी। इससे पूर्व कि कोई ढाँचा हो, इससे पूर्व कि ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के लिए कोई शब्द हो, इससे पूर्व कि पिछले भाग में एकत्रित कोई भी विज्ञान हो, एक अकेली पहचान थी जिसका मैंने एक पूर्व पुस्तक में अनुसरण किया और जिसे मैं अब इस पुस्तक के केन्द्र में रखना चाहता हूँ: कि श्वास केवल कोई वस्तु नहीं है जो शरीर करता है, बल्कि ऋत की सबसे छोटी दृश्य इकाई है — वह स्थान जहाँ ब्रह्माण्डीय व्यवस्था, एक मनुष्य के लिए, प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षणीय और प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध हो जाती है।

मैं इसे शिथिलता से नहीं कहता। विचार कीजिए कि श्वास वस्तुतः क्या है। यह आपके शरीर की वह एक प्रक्रिया है जो ठीक अनैच्छिक और ऐच्छिक के बीच की देहली पर बैठती है। अपने हृदय-स्पन्दन को आप आदेश नहीं दे सकते; अपने पाचन को आप निर्देशित नहीं कर सकते; आपकी तंत्रिकाओं का सक्रियण आपकी अनुमति बिना आगे बढ़ता है। केवल श्वास ही स्वयं चलती है जब आप उसकी उपेक्षा करते हैं और उसी क्षण आपका आज्ञापालन करती है जब आप उस पर ध्यान देते हैं। यह आपके उस भाग के बीच एकमात्र कब्ज़ा है जो ऋत द्वारा चलाया जाता है और आपके उस भाग के बीच जो कल्पना करता है कि वह चीज़ें चला रहा है। यह कोई रूपक नहीं है। यह गहनतम सम्भव निहितार्थों वाला एक शारीरिक तथ्य है, और प्रत्येक परम्परा जिसने कभी सरेखन को गम्भीरता से लिया, उसने इसे स्वतन्त्र रूप से खोजा।

*

**

देहली क्यों महत्त्व रखती है

ध्यानपूर्वक सोचिए कि वह देहली क्या सम्भव बनाती है। यदि श्वास हृदय-स्पन्दन की भाँति विशुद्ध रूप से अनैच्छिक होती, तो आपके शरीर की स्वायत्त व्यवस्था तक आपकी कोई सचेत पहुँच न होती; आप पूर्णतः एक यात्री होते। यदि यह बाँह उठाने की भाँति विशुद्ध रूप से ऐच्छिक होती, तो यह उसी क्षण रुक जाती जब आप सोते, और आप प्रत्येक रात्रि मर जाते। यह कोई भी नहीं है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे गहन व्यवस्था अपने आप निष्ठा से बनाए रखती है, फिर भी उसी क्षण आपकी सचेत सहभागिता को सौंप देती है जब आप भाग लेना चुनते हैं। श्वास, सर्वथा शब्दशः, उस व्यवस्था के बीच की समझौताकृत सीमा है जिसे आपने नहीं बनाया और उस सजगता के बीच जो उसके साथ संरेखित हो सकती है।

यही कारण है कि श्वास, पृथ्वी की प्रत्येक चिन्तन-परम्परा भर, सार्वभौमिक प्रवेश-बिन्दु रही है। योगियों ने इसके चारों ओर एक सम्पूर्ण विज्ञान रचा। बौद्ध ध्यान को सबसे पहले वहीं रखता है। मरुस्थल का चिन्तक उसी की ओर लौटा। उन्होंने समन्वय नहीं किया; वे अभिसरित हुए, क्योंकि मनुष्य की संरचना केवल एक ही द्वार छोड़ती है जो दोनों ओर खुलता है। श्वास के साथ कार्य करना उस एक लीवर पर अपना हाथ रखना है जो एक साथ सचेत मन में और उन स्वायत्त गहराइयों में पहुँचता है जहाँ ऋत शरीर का शासन करता है। आपकी पहुँच में और कुछ भी यह नहीं करता।

*
**

वह इकाई जिसमें संरेखण मापा जाता है

श्वास को ऋत की सबसे छोटी इकाई कहने का एक और कारण है, और यह काव्यात्मक के बजाय व्यावहारिक है। संरेखण, जैसा इस सम्पूर्ण पुस्तक ने तर्क किया है, कोई ऐसी अवस्था नहीं है जिसे आप एक बार प्राप्त करते हैं और सदा के लिए धारण करते हैं। यह सतत रूप से, क्षण-प्रतिक्षण नवीकृत एक सम्बन्ध है, उस समस्थापन की भाँति जिसका हमने शरीर में परीक्षण किया। और श्वास उस नवीकरण की स्वाभाविक इकाई है। आप जीवन भर के लिए संरेखित नहीं होते; आप एक श्वास के लिए संरेखित होते हैं, और फिर अगली के लिए, और फिर अगली। श्वास धर्म का हृदय-स्पन्दन है — वह लय जिस पर संरेखण का कार्य वस्तुतः किया जाता है।

यह अत्यधिक मुक्तिदायक है, और मैं चाहता हूँ कि आप अनुभव करें कि क्यों। यदि संरेखण को बड़े विस्तारों में प्राप्त किया जाना होता — एक वर्ष का अनुशासन, एक दशक का

अभ्यास, एक सम्पूर्ण सुधरा हुआ जीवन — तो यह पक्षाघात की सीमा तक भयप्रद होता। किन्तु ऐसा नहीं है। यह एक अकेली सचेत श्वास में प्राप्त किया जाता है, अभी आपको उपलब्ध, ऐसी किसी वस्तु की आवश्यकता बिना जो आपके पास पहले से न हो। ब्रह्माण्ड आपसे अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को एक साथ संरेखित करने को नहीं कहता। यह आपसे इस श्वास को संरेखित करने को कहता है। और फिर यह आपको एक और देता है। ऋत की विशालता, वह सम्पूर्ण वास्तुकला जिसका हमने आधुनिक विज्ञान के माध्यम से अनुरेखण किया, सजीव मनुष्य के लिए, इतनी छोटी और इतनी निकट किसी वस्तु में सिमट आती है: अगली श्वास, सचेत रूप से ली गई, एक ऐसी व्यवस्था की लय में जिसने एक बार भी आपके माध्यम से श्वास लेना बन्द नहीं किया।

अतः श्वास वह है जहाँ बृहद्-ब्रह्माण्ड लघु-ब्रह्माण्ड बन जाता है, जहाँ नियमों के पीछे का नियम एक ऐसी गति बन जाता है जिसे आप अपनी ही छाती में अनुभव कर सकते हैं। यह ऋत की सबसे छोटी इकाई है क्योंकि यह सबसे छोटी इकाई है जिसमें ऋत से सचेत रूप से मिला जा सकता है। इस भाग में शेष हर वस्तु उस पहचान से अनुसरण करती है। अगले अध्याय में हम देखेंगे कि इस सबसे छोटी इकाई और सबसे बड़ी संरचनाओं के बीच की समानरूपता वस्तुतः कितनी दूर तक पहुँचती है — और इसके विषय में परम्परा के दावे कितनी ईमानदारी से कहे जा सकते हैं।

"श्वास उस व्यवस्था के बीच एकमात्र कब्ज़ा है जिसे आपने नहीं बनाया और उस सजगता के बीच जो उसके साथ संरेखित हो सकती है — इतनी अनैच्छिक कि आपको सोते समय जीवित रखे, इतनी ऐच्छिक कि उसी क्षण आज्ञापालन करे जब आप ध्यान दें। यह ऋत की सबसे छोटी इकाई है क्योंकि यह सबसे छोटी इकाई है जिसमें ऋत से सचेत रूप से मिला जा सकता है।"

अध्याय उनासी

जैसा ऊपर, वैसा भीतर

"जो यहाँ है वह अन्यत्र है; जो यहाँ नहीं वह कहीं नहीं।"

— विश्वसार तन्त्र

चिन्तन-परम्पराओं का सबसे पुराना अन्तर्ज्ञान लघु-ब्रह्माण्ड और बृहद्-ब्रह्माण्ड के बीच की समानरूपता है — यह विश्वास कि समग्र का प्रतिरूप भाग में दोहराया जाता है, कि मनुष्य एक छोटा ब्रह्माण्ड है जो महान ब्रह्माण्ड को प्रतिबिम्बित करता है। दिव्य दृष्टि में मैंने इस अन्तर्ज्ञान का श्वास के माध्यम से अनुसरण किया। यहाँ मैं इसका ध्यान से, और ईमानदारी से, परीक्षण करना चाहता हूँ, क्योंकि यह ठीक उस प्रकार का दावा है जिसे फुलाना सरल है और ठीक-ठीक कहना महत्वपूर्ण है।

परम्परा विशिष्ट संख्यात्मक समानरूपताएँ प्रदान करती है, और उन्हें स्पष्ट रूप से रख देना सार्थक है। मानव श्वास के लिए शास्त्रीय योगिक आँकड़ा लगभग पन्द्रह श्वास प्रति मिनट है, जो एक दिन में लगभग इक्कीस हजार छह सौ श्वास देता है। यह आँकड़ा अजपा अभ्यास में पुनः आता है, जहाँ श्वास की मौन लय को एक सतत स्मरण के रूप में गिना जाता है जो सूर्योदय से सूर्योदय के बीच उसी संख्या में दोहराया जाता है। हृदय, उसी परम्परा की गणना में, विश्राम पर लगभग बहत्तर बार प्रति मिनट स्पन्दित होता है। और वह महान चक्र जिसे प्राचीनों ने आकाश में अनुरेखित किया — पृथ्वी की धुरी का वह धीमा डगमगाना जो विषुवों को राशिचक्र के माध्यम से पीछे की ओर ले जाता है — एक पूर्ण चक्कर उसमें पूरा करता है जिसे उन्होंने महान वर्ष कहा, जो पच्चीस हजार नौ सौ बीस वर्षों के रूप में आदर्शीकृत है, सूर्य प्रत्येक बहत्तर वर्षों में एक डिग्री अयन करता प्रतीत होता है।

*
**

समानरूपता को ईमानदारी से कहना

अब मुझे सटीक होना चाहिए, क्योंकि इस सम्पूर्ण शृंखला की अखण्डता इस पर निर्भर है। आधुनिक मापन विषुवों के वास्तविक अयन को पच्चीस हजार सात सौ बहत्तर वर्षों के निकट रखता है — पारम्परिक आँकड़े के निकट, किन्तु उससे समरूप नहीं। पच्चीस हजार नौ सौ बीस की पूर्ण संख्या एक आदर्शिकरण है, जो तीन सौ साठ डिग्री भर प्रत्येक डिग्री के लिए ठीक बहत्तर वर्ष लेने का उत्पाद है। परम्परा जो समानरूपताएँ खींचती है — बहत्तर स्पन्दन और प्रति डिग्री बहत्तर वर्ष; श्वास-गणना और वर्ष-गणना एक-दूसरे की प्रतिध्वनि करती हुई — परम्परा की अपनी गणना-प्रणाली के भीतर प्रतिरूपों के रूप में वास्तविक हैं। वे, और मैं यह दावा नहीं करूँगा कि वे हैं, भौतिक ब्रह्माण्ड के सटीक मापन नहीं हैं जिन्हें विज्ञान ने स्वतन्त्र रूप से पुष्ट किया हो।

मैं इसे सावधानी से कहता हूँ क्योंकि यहाँ अति-दावा करने का प्रलोभन अपार है, और अति-दावा करना ठीक उस मानक के साथ विश्वासघात होता जिसकी डॉ. कलाम के प्रश्न ने माँग की। ईमानदार स्थिति फुलाई हुई स्थिति से अधिक रोचक है। परम्परा ने जो खोजा वह यह नहीं है कि श्वास गुप्त रूप से अक्षीय अयन की परिशुद्ध यान्त्रिकी संकेतबद्ध करती है। जो उसने खोजा वह यह है कि उसी प्रकार की संरचना — लय, चक्र, एक विशाल में नीहित एक छोटा स्पन्दन — शरीर और आकाशों का समान रूप से शासन करती है, और कि मनुष्य इसलिए, सबसे निकट की लय में, समग्र की लय का एक निष्ठावान बिम्ब पा सकता है। समानरूपता संरचनात्मक और चिन्तनपरक है, कोई गुप्त खगोलीय समीकरण नहीं। यह एक सुरक्षणीय दावा है, और यह पर्याप्त है।

**

प्रतिरूप दोहराता ही क्यों है

और यहाँ पिछला भाग इस भाग से पुनः जुड़ता है, क्योंकि जटिलता-विज्ञान हमें एक कारण देता है कि प्रतिरूप को पैमानों भर दोहराना चाहिए जिसका प्राचीन केवल अन्तर्ज्ञान ही कर सकते थे। स्वयं-संगठनकारी तन्त्र भिन्न पैमानों पर समान संरचनाएँ संयोग से नहीं बल्कि इसलिए उत्पन्न करते हैं कि प्रतिपुष्टि, दोलन, और बाध्यता के वही सिद्धान्त वहाँ कार्य करते हैं जहाँ भी पदार्थ और ऊर्जा अन्योन्यक्रिया करते हैं। लयें लयों के भीतर नीहित होती हैं — धीमे चक्र के भीतर तीव्र स्पन्दन — तंत्रिकाओं के सक्रियण में, हृदयों के स्पन्दन में, ऋतुओं के

परिवर्तन में, लोकों की कक्षा में, क्योंकि दोलन उन मूलभूत ढंगों में से एक है जिनसे व्यवस्था स्वयं को सन्तुलन से बहुत दूर बनाए रखती है। लघु-ब्रह्माण्ड बृहद्-ब्रह्माण्ड से इसलिए मिलता-जुलता है, इसलिए नहीं कि छोटे को बड़े को संकेतबद्ध करने के लिए अभिकल्पित किया गया था, बल्कि इसलिए कि दोनों उन्हीं स्वयं-संगठनकारी सिद्धान्तों की अभिव्यक्तियाँ हैं। दोनों ऋत हैं, प्रत्येक पैमाने पर जिसे यह छूता है स्वयं को प्रतिरूपित करता हुआ।

यह प्राचीन समानुरूपता का परिपक्व रूप है, और मैं इसे शब्दशः अंक-शास्त्र से अधिक सुन्दर पाता हूँ, कम नहीं। वह ऋषि जो बैठकर श्वास देखता था, आकाशों की कोई गुप्त गणना नहीं चला रहा था। वह, सबसे निकट उपलब्ध तन्त्र में, व्यवस्थित लय के सार्वभौमिक व्याकरण का प्रेक्षण कर रहा था — और, सही रूप से, यह पहचान रहा था कि वही व्याकरण तारों में लिखा था। यथा ऊपर, तथा भीतर: इसलिए नहीं कि कोई संकेत उन्हें जोड़ता है, बल्कि इसलिए कि एक व्यवस्था उन दोनों को लिखती है, उसी हाथ से, प्रत्येक पैमाने पर।

*

**

आपके लिए, अपनी ही श्वास के साथ बैठे हुए, इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि आपके सबसे निकट की लय पर ध्यान ब्रह्माण्ड से कोई प्रत्याहरण नहीं बल्कि उसकी ओर एक अभिगमन है। जब आप अपने ही श्वसन के स्थिर स्पन्दन में बैठते हैं, तो आप किसी निजी अन्तःस्थल में पलायन नहीं कर रहे। आप, उस एक लय के माध्यम से जिसे आप प्रत्यक्ष रूप से अनुभव कर सकते हैं, उस प्रतिरूपित व्यवस्था में सुर मिला रहे हैं जो आपकी छाती से आकाश के परिवर्तन तक चलती है। चिन्तक गन्तव्य के विषय में सही थे, वहाँ भी जहाँ वे अंकगणित के विषय में अपरिशुद्ध थे। श्वास समग्र पर एक सच्ची खिड़की है — इसलिए नहीं कि यह ब्रह्माण्ड को किसी संख्या में छिपाती है, बल्कि इसलिए कि यह ब्रह्माण्ड की गहनतम संरचना को साझा करती है: व्यवस्थित लय, ऋत का स्पन्दन, सबसे छोटे पैमाने से सबसे बड़े तक नीहित, और उपलब्ध, अभी, एक अकेली श्वास के उतार-चढ़ाव में।

इसके दोनों आधे भागों को एक साथ धारण कीजिए और आप ग़लत नहीं जाएँगे। परम्परा के अन्तर्ज्ञान का सम्मान कीजिए, जो गहन और अधिकांशतः सही था। इसके कभी-कभार के अति-दावे को अस्वीकार कीजिए, जिसकी ईमानदारी माँग करती है। जब आप ऐसा करते हैं तो जो शेष रहता है वह अनालोचनात्मक विश्वास या उपेक्षापूर्ण अस्वीकृति किसी से भी अधिक सुदृढ़ है: आपके भीतर की लय और समस्त वस्तुओं की लय के बीच एक सच्ची समानुरूपता, उस वास्तविक ढंग में आधारित जिससे व्यवस्था पैमानों भर स्वयं को संगठित

करती है। यही वह समानुरूपता है जिसके अनुसार जीना सार्थक है, और यह आपसे केवल उस पर ध्यान माँगती है जो आपकी अपनी छाती में पहले से ही गति कर रहा है।

"श्वास ब्रह्माण्ड को किसी गुप्त संख्या में नहीं छिपाती। यह ब्रह्माण्ड की गहनतम संरचना को साझा करती है — व्यवस्थित लय, सबसे छोटे पैमाने से सबसे बड़े तक नीहिता। यथा ऊपर, तथा भीतर: इसलिए नहीं कि कोई संकेत उन्हें जोड़ता है, बल्कि इसलिए कि एक व्यवस्था उन दोनों को लिखती है, उसी हाथ से।"

अध्याय अस्सी

संगत हृदय

*"जब हृदय शान्त होता है, तो शरीर अपनी लय पा लेता है,
और मन अपने आप स्थिर हो जाता है।"*

— परम्पराओं भर के साधकों का एक प्रेक्षण

यदि पिछले अध्याय ने आपसे श्वास-ब्रह्माण्ड समानरूपता को ईमानदारी से धारण करने को कहा, तो यह अध्याय पाँव के नीचे कुछ अधिक दृढ़ प्रदान करता है: एक ऐसा स्थान जहाँ श्वास, हृदय, और मन के बीच की कड़ी चिन्तनपरक उपमा नहीं बल्कि मापी गई शरीरक्रिया है। परम्परा ने दीर्घकाल तक आग्रह किया कि श्वास और हृदय और मन साथ-साथ चलते हैं, कि एक को स्थिर करना दूसरों को स्थिर करना है। आधुनिक हृदय-विज्ञान और मनोशरीरक्रियाविज्ञान ने इसकी उपकरणों से पुष्टि की है, और पुष्टि इतनी परिशुद्ध है कि इस पुस्तक में स्थान की योग्य है।

एक ऐसे तथ्य से आरम्भ कीजिए जिसे अधिकांश लोग अपने ही हृदय के विषय में कभी नहीं सीखते: यह किसी मेट्रोनोम की भाँति स्पन्दित नहीं होता, और इसका ऐसा होना भी नहीं चाहिए। एक स्वस्थ हृदय आपके श्वास भीतर लेते समय थोड़ा तेज़ हो जाता है और श्वास छोड़ते समय थोड़ा धीमा, एक सतत सौम्य परिवर्तन जिसे श्वसन-सम्बन्धी साइनस अतालता कहते हैं। इस परिवर्तन की मात्रा — हृदय-गति परिवर्तनशीलता — हमारे पास शारीरिक स्वास्थ्य और प्रत्यास्थता के सर्वाधिक प्रकटकारी मापों में से एक सिद्ध होती है। ऐसा हृदय जो श्वास के साथ समृद्ध रूप से परिवर्तित होता है, वह हृदय है जिसकी तंत्रिका-तन्त्र की दो महान शाखाएँ, सक्रियकारी और शान्तिकारी, प्रत्युत्तरशील सन्तुलन में हैं। ऐसा हृदय जो कठोर और मेट्रोनोम-सदृश हो गया है, विरोधाभासी रूप से, संकटग्रस्त हृदय है — एक ऐसे तन्त्र का चिह्न जिसने अनुकूलित होने का अपना सामर्थ्य खो दिया है।

*

**

मापनीय सरेखण के रूप में संगति

यहाँ यह उल्लेखनीय हो जाता है। जब कोई व्यक्ति धीमे और सहज रूप से श्वास लेता है — लगभग पाँच या छह श्वास प्रति मिनट, विश्रान्त पन्द्रह से कहीं धीमा — तो कुछ मापनीय घटित होता है। हृदय की लय, श्वास की लय, और रक्तचाप-नियमन की धीमी तरंगें एक कला में आ जाती हैं। वे साथ-साथ दोलन करने लगती हैं, समकालित, एक ऐसी अवस्था में जिसे अनुसन्धानकर्ता शारीरिक संगति कहते हैं। शरीर की पृथक् लयें, सामान्यतः प्रत्येक अपना-अपना कार्य करती हुई, एक एकल व्यवस्थित प्रतिरूप में जुड़ जाती हैं। आप इसे एक मॉनिटर पर प्रकट होते देख सकते हैं। यह सरेखण है, एक ग्राफ़ पर दृश्य किया गया।

मैं यहाँ सरेखण शब्द को शिथिलता से उपयोग नहीं करता। यह, उपलब्ध सर्वाधिक शब्दशः शारीरिक अर्थ में, शरीर का ऋत में आना है — अनेक स्वयं-नियामक तन्त्र अपना स्वतन्त्र कोलाहल त्यागकर एक संगत लय में संगठित होते हुए। और इसका प्रवेशद्वार, वह चर जो दूसरों को एक कला में खींचता है, श्वास है, उस धीमी स्थिर गति पर जिस तक चिन्तन-परम्पराएँ प्रयोग द्वारा पहुँचीं, इससे हजारों वर्ष पूर्व कि उसकी पुष्टि के लिए कोई उपकरण हो। वह योगी जिसने अपने मन को बैठाने के लिए अपनी श्वास धीमी की, कोई कर्मकाण्ड नहीं कर रहा था। वह मापनीय हृदयगत और स्वायत्त संगति प्रेरित कर रहा था, और वह इसके प्रभावों को भीतर से आत्मीय रूप से जानता था यद्यपि वह ग्राफ़ नहीं देख सकता था।

*

**

श्वास धीमा करना मन को क्यों बैठा देता है

क्रियाविधि मन तक भी पहुँचती है, और मार्ग अब उचित रूप से भली-भाँति समझा जाता है। धीमी निःश्वास, विशेष रूप से, तंत्रिका-तन्त्र की शान्तिकारी शाखा को संलग्न करती है — वह वेगस-पथ जो शरीर को उद्दीपन से शान्त होने का संकेत देता है, वही शान्त होना जिसकी हमने स्वयं को सुधारते शरीर पर अध्याय में चर्चा की। ज्यों-ज्यों संगति बढ़ती है, तनाव के चिह्नक गिरते हैं, ध्यान स्थिर होता है, और वह भावनात्मक उथल-पुथल जो एक दौड़ती शरीरक्रिया पर निर्वाह करती है, शान्त हो जाती है। मन इसलिए स्थिर नहीं होता कि आपने उसे ऐसा आदेश दिया, जो कभी काम नहीं करता, बल्कि इसलिए कि आपने उस शारीरिक भूमि को बदल दिया जिस पर उसका उद्वेलन खड़ा था। श्वास को स्थिर कीजिए, और हृदय अनुसरण

करता है; हृदय को स्थिर कीजिए, और मन, संकट के शारीरिक ईंधन से वंचित, अपने आप बैठ जाता है।

यह इस सम्पूर्ण भाग का व्यावहारिक रत्न है, और इसका कोई मूल्य नहीं। परम्पराओं ने श्वास को संरेखण के विज्ञान के केन्द्र में रखा क्योंकि श्वास वह एक सचेत रूप से उपलब्ध लीवर है जो हृदय, स्वायत्त तंत्रिका-तन्त्र, और मन तक एक साथ पहुँचता है। जब आप श्वास को धीमा और सहज और लम्बा करते हैं, तो आप केवल शिथिल नहीं हो रहे। आप सोद्देश्य रूप से मापनीय, सम्पूर्ण-शरीर संगति की एक अवस्था प्रेरित कर रहे हैं — अपनी शरीरक्रिया की बिखरी लयों को एक एकल व्यवस्थित प्रतिरूप में खींचते हुए जिसे उपकरण देख सकते हैं और चिन्तक अनुभव कर सकते थे। आप, इस पुस्तक द्वारा प्रस्तुत किए जा सकने वाले सर्वाधिक सटीक अर्थ में, स्वयं को श्वास द्वारा ऋत के साथ संरेखण में ला रहे हैं, और आपका अपना शरीर अभिलेख रख रहा है।

अतः अगली बार जब मन उथल-पुथल में हो, तो मन से आरम्भ मत कीजिए; यह अन्तिम पाँसा है, पहला नहीं। वहाँ से आरम्भ कीजिए जहाँ उत्तोलन है। निःश्वास को लम्बा कीजिए। लय को धीमा कीजिए। हृदय को श्वास पाने दीजिए और तन्त्रों को हृदय पाने दीजिए। संगति कोई मनोदशा नहीं है जिसे आपको आह्वान करना पड़े। यह एक शारीरिक अवस्था है जिसे आप सोद्देश्य रूप से, हमारी प्रजाति को ज्ञात सबसे पुरानी तकनीक से प्रेरित कर सकते हैं — और यह शरीर का अपना प्रदर्शन है कि संरेखण कोई रूपक नहीं बल्कि एक मापनीय दशा है, कुछ धीमी श्वासों के अवकाश में उपलब्ध।

"जब श्वास धीमी होती है, तो हृदय, श्वास, और शरीर की धीमी तरंगें एक कला में आ जाती हैं — एक एकल व्यवस्थित लय जिसे उपकरण संगति कहते हैं। यह एक ग्राफ़ पर दृश्य किया गया संरेखण है, और श्वास इसका प्रवेशद्वार है। वहाँ से आरम्भ कीजिए जहाँ उत्तोलन है।"

अध्याय इक्कासी

प्राणः ऊर्जा, सूचना और व्यवस्था

"यह सब मुझ पर ऐसे परोया हुआ है जैसे धागे पर मोती।"

— भगवद्गीता 7.7

हम वैदिक शब्दावली की सर्वाधिक सूक्ष्म संकल्पनाओं में से एक पर, और सर्वाधिक भ्रान्ति से ग्रस्त में से एक पर पहुँचते हैं: प्राण। इसका अनुवाद सामान्यतः जीवन-शक्ति या प्राणिक ऊर्जा के रूप में किया जाता है, और वे अनुवाद, यद्यपि गलत नहीं, ऐसी छवियाँ आह्वान करने की प्रवृत्ति रखते हैं जो प्रकट करने से अधिक आच्छादित करती हैं — कोई रहस्यमय द्रव, कोई गूढ़ पदार्थ जो विज्ञान को अज्ञात है। मैं प्राण का एक ऐसा पठन प्रस्तुत करना चाहता हूँ जो परम्परा के प्रति निष्ठावान और आधुनिक शब्दों में बोधगम्य हो, क्योंकि मेरा विचार है कि यह संकल्पना, सही रूप से समझी गई, इस विषय में कुछ वास्तविक और महत्वपूर्ण को नाम देती है कि व्यवस्था सजीव तन्त्रों के माध्यम से कैसे गति करती है।

इससे आरम्भ कीजिए कि प्राण के विषय में क्या कहा जाता है कि वह क्या करता है। परम्परा में, प्राण वह है जो सजीव करता है; यह एक सजीव शरीर और एक शव के बीच का अन्तर है, जिनमें समान संरचनाओं में व्यवस्थित समान रसायन होते हैं। यह गति करता है; यह नाड़ियों के अनुदिश बहता है; इसे एकत्रित, निर्देशित, क्षीण, और पुनर्स्थापित किया जा सकता है। यह सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप से — पुनः — श्वास के माध्यम से सुलभ और नियमित किया जाता है, यही कारण है कि श्वास के विज्ञान को प्राणायाम कहते हैं, प्राण का नियमन। प्राण जो भी हो, परम्परा एकमत है कि श्वास उसका प्राथमिक हत्था है।

*

**

व्यवस्था के प्रवाह के रूप में प्राण

यहाँ वह पठन है जिसे मैं सर्वाधिक निष्ठावान और सर्वाधिक सुरक्षणीय पाता हूँ। एन्ट्रोपी और उस व्यवस्था पर अध्याय का स्मरण कीजिए जो जीवन उधार लेता है। एक सजीव तन्त्र अपने परिवेश से निरन्तर उपयोग्य ऊर्जा खींचकर और अव्यवस्था को वापस उसमें विसर्जित करके अपनी उत्कृष्ट व्यवस्था बनाए रखता है। उपयोग्य ऊर्जा का प्रवाह और वह सूचना जो उसे संगठित करती है — स्वयं व्यवस्था का प्रवाह — वह है, मैं सुझाता हूँ, जो परम्परा का प्राण से अभिप्राय था उसके बहुत निकट। प्राण उस ऊर्जा और सूचना से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है जिसे विज्ञान पहले से ही पहचानता है। यह वह नाम है जो ऋषियों ने एक सजीव तन्त्र के माध्यम से व्यवस्था के प्रवाह को दिया, भीतर से प्रेक्षित, सजीव होने के अनुभूत गुण के रूप में।

यह पठन परम्परा के दावों को बिना उन्हें तानें समझा देता है। प्राण श्वास के माध्यम से क्यों सुलभ है? क्योंकि श्वास शरीर का उस ऑक्सीजन का प्राथमिक ग्रहण है जिस पर उसकी सम्पूर्ण ऊर्जा-अर्थव्यवस्था चलती है, और क्योंकि श्वास, जैसा हमने अभी देखा, उस संगति को नियमित करती है जो शरीर की लयों को संगठित करती है। प्राण तनाव से क्यों क्षीण हो सकता है और विश्राम से पुनर्स्थापित? क्योंकि दीर्घकालिक उद्दीपन शरीर के व्यवस्था बनाए रखने के सामर्थ्य को क्षीण करता है, ठीक वही अपस्थापन-भार जिसका हमने परीक्षण किया, जबकि विश्राम और संगति उसे पुनर्स्थापित करते हैं। श्वास पर निर्देशित ध्यान किसी की सजीवता के बोध को क्यों बढ़ाता है? क्योंकि यह संगति बढ़ाता है, आन्तरिक संघर्ष की एन्ट्रोपी-लागत घटाता है, और उपलब्ध ऊर्जा का अधिक भाग घर्षण के बजाय जीवन की ओर जाने देता है। प्राण, व्यवस्था के प्रवाह के रूप में पढ़ा गया, ठीक वैसा आचरण करता है जैसा परम्परा कहती है कि वह करता है।

**

छिपे हुए आधे भाग के रूप में सूचना

किन्तु ऊर्जा इसका केवल आधा है, और सूक्ष्मतर आधा सूचना है। एक सजीव तन्त्र केवल ऊर्जावान नहीं है; यह उत्कृष्ट रूप से सूचित है — प्रत्येक कोशिका समन्वित, प्रत्येक प्रक्रिया समयबद्ध, प्रत्येक प्रत्युत्तर अपने संकेत से मेल खाता हुआ। व्यवस्था केवल ऊर्जा का बहना नहीं है; यह ऊर्जा का ऐसे प्रतिरूपों में बहना है जो सूचना वहन करते हैं, जो संगठित

करते हैं, जो संगत होते हैं। उद्धरण की पंक्ति बिम्ब को ठीक-ठीक प्रस्तुत करती है: समस्त वस्तुएँ एक अकेले धागे पर मोतियों की भाँति पिरोई हुई। मोती दृश्य रूप हैं; धागा वह अदृश्य व्यवस्थाकारी सिद्धान्त है जो उन्हें सम्बन्ध में धारण करता है। प्राण कुछ उस धागे जैसा है, भीतर अनुभव किया गया — वह व्यवस्थाकारी प्रवाह जो एक जीवन की पृथक् प्रक्रियाओं को एक संगत, सजीव समग्र में पिरोता है।

मैं इसे व्याख्या के रूप में प्रस्तुत करता हूँ, और मैं इसे स्पष्ट रूप से वैसा ही चिह्नित करता हूँ; परम्परा की प्राण की संकल्पना समृद्ध और विवादित है, और मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने उसे भौतिकी में न्यून कर दिया है। किन्तु मैं पाता हूँ कि यह पठन वास्तविक कार्य करता है। यह एक आध्यात्मिक जीवन-शक्ति और सजीव ऊर्जा के एक वैज्ञानिक विवरण के बीच मिथ्या विरोध को विलीन कर देता है, उन्हें दो दृष्टिकोणों से वर्णित एक ही परिघटना दिखाकर — एक ऐसे तन्त्र के माध्यम से ऊर्जा और व्यवस्थाकारी सूचना का प्रवाह जो उसका उपयोग क्षय की सार्वभौमिक धारा के विरुद्ध अपनी व्यवस्था बनाए रखने के लिए करता है। बाहर से, उपकरणों के साथ, हम इसे उपापचय और संकेतन और संगति कहते हैं। भीतर से, ध्यान के साथ, ऋषियों ने इसे प्राण कहा। एक प्रवाह। दो सूचनाएँ।

और व्यावहारिक परिणाम हमें, जैसे इस भाग में हर वस्तु करती है, आपकी छाती की श्वास की ओर लौटाता है। श्वास को नियमित करना अपने तन्त्र के माध्यम से व्यवस्था के प्रवाह को नियमित करना है — बिखरे हुए को एकत्रित करना, उद्बेलित को स्थिर करना, अपने जीवन की उपलब्ध ऊर्जा को आन्तरिक घर्षण से दूर और संगत जीवन की ओर निर्देशित करना। यही वह है जो प्राणायाम के आचार्यों ने समझा। वे किसी गूढ़ द्रव का हस्तकौशल नहीं कर रहे थे। वे, बड़ी परिशुद्धता के साथ, एक सजीव सत्ता के माध्यम से व्यवस्था के प्रवाह की देखभाल कर रहे थे — वह प्राण, वह धागा जिस पर एक जीवन के मोती पिरोए हुए हैं। और वह स्थान जहाँ वह धागा हाथ में आता है, जहाँ आप उसे थाम सकते हैं और उसे स्थिर कर सकते हैं, वह है, जैसा यह इस पुस्तक भर रहा है, श्वास।

"प्राण कोई पदार्थ नहीं है जिससे विज्ञान चूक गया हो। यह एक सजीव तन्त्र के माध्यम से ऊर्जा और व्यवस्थाकारी सूचना का प्रवाह है — स्वयं व्यवस्था का प्रवाह, भीतर से सजीव होने के गुण के रूप में अनुभव किया गया। श्वास को नियमित करना उस धागे को थामना और उसे स्थिर करना है।"

अध्याय बयासी

स्पन्दः वस्तुओं के मर्म में स्पन्दन

"सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक अकेले स्पन्दन से धड़कता है;
उसे स्वयं में अनुभव करना समस्त वस्तुओं में घर पर होना है।"

— स्पन्द-परम्परा की एक शिक्षा, भावानुवादित

भारतीय परम्परा की अधिक परिष्कृत धाराओं में से एक में एक शब्द है जो उस हर वस्तु को समेट लेता है जिसके चारों ओर यह भाग घूमता रहा है: स्पन्द। इसका अर्थ है कम्पन, धड़कन, स्पन्दन — समस्त अभिव्यक्ति के मूल में वह सूक्ष्म, आदिम स्फुरण। इस परम्परा के ऋषियों ने माना कि वास्तविकता अपने गहनतम में स्थैतिक सत्ता नहीं बल्कि लयबद्ध स्पन्दन है, एक सतत संकुचन और प्रसार, वस्तुओं के हृदय में एक शाश्वत संकुचन और प्रसार। अस्तित्व, इस दृष्टि में, केवल लय धारण नहीं करता; अस्तित्व लय है, नीचे तक।

मैं इसे भाग के इस अन्तिम अध्याय में उठाता हूँ क्योंकि आधुनिक भौतिकी, अपने ही मार्ग से, एक स्तब्धकारी रूप से अनुनादित चित्र पर पहुँची है। पदार्थ की नींवों पर, हमारे पास जो सर्वाधिक मूलभूत वर्णन है वह स्थिर बैठे ठोस कणों की बात नहीं करता। यह क्षेत्रों की बात करता है, और उन क्षेत्रों में उद्दीपनों की — कम्पन, दोलन, आवृत्ति की। जिसे हम कण कहते हैं वह, इस विवरण में, एक अन्तर्निहित क्षेत्र में कम्पन का एक स्थिर प्रतिरूप है। संसार छोटी गतिहीन ईंटों से नहीं बना। यह स्पन्दन के स्थिर प्रतिरूपों से बना है, आवृत्ति के भीतर निहित आवृत्ति, दोलन स्वयं को उन स्थिर रूपों में संगठित करता हुआ जिन्हें हम ठोस वस्तुएँ समझ बैठते हैं।

**

गहनतम परत के रूप में लय

दोनों चित्रों को एक-दूसरे के समीप रखिए और अनुनाद को अनदेखा करना कठिन है। स्पन्द-ऋषि कहता है कि वास्तविकता की भूमि स्पन्दन है, और कि जो रूप हम देखते हैं वे उसकी स्थिरीकृत लयें हैं। भौतिकविद कहता है कि वास्तविकता की भूमि क्षेत्र-उद्दीपन है, और कि जो कण हम संसूचित करते हैं वे उसके स्थिर कम्पनीय प्रतिरूप हैं। मैं यह स्वाँग नहीं करूँगा कि ये एक ही कथन हैं; एक चिन्तनपरक तत्त्वमीमांसा है और दूसरा गणितीय भौतिकी, और उनके बीच की ईमानदार दूरी का सम्मान किया जाना चाहिए। किन्तु वे तुक मिलते हैं, और तुक तुच्छ नहीं है। दोनों परम्पराएँ, वास्तविक की तलस्थ परत तक पहुँचती हुई, स्थिरता नहीं बल्कि लय पाई — कोई वस्तु नहीं, बल्कि एक धड़कन।

यह इस पुस्तक में हर वस्तु को एक अन्तिम प्रकाश में डाल देता है। हम ऋत की अदृश्य व्यवस्था से, जीवन की बहती व्यवस्था के माध्यम से, शरीर की स्वयं-संशोधक लयों, मन के पूर्वानुमानी स्पन्दन, स्वयं-संगठनकारी समग्र, व्यवस्था की इकाई के रूप में श्वास, छोटी लय और बड़ी की समानुरूपता, हृदय और श्वास की संगति, और प्राण के प्रवाह से होकर बढ़े हैं। इनमें से प्रत्येक के बीच से चलने वाला धागा लय है — व्यवस्थित स्पन्दन, पैमानों भर नीहिता। स्पन्द उस धागे की गहनतम परत के लिए परम्परा का नाम है: यह पहचान कि जिस व्यवस्था का हम अनुरक्षण करते रहे हैं वह, अपने मूल में, एक अकेला स्पन्दन है, स्वयं को उस हर वस्तु के रूप में अभिव्यक्त करता हुआ जो स्पन्दित होती है, एक क्वाण्टम क्षेत्र से एक स्पन्दित हृदय से एक श्वास तक।

*

**

स्वयं में स्पन्दन का अनुभव

और स्पन्द-परम्परा की शिक्षा, अन्ततः, सैद्धान्तिक नहीं है। इसका दावा है कि इस सार्वभौमिक स्पन्दन को स्वयं में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया जा सकता है — कि श्वासों के बीच के अन्तराल में, उस स्थिर बिन्दु में जहाँ अन्तःश्वास निःश्वास में मुड़ती है, एक व्यक्ति वस्तुओं के मूल में उस धड़कन को छू सकता है और उसे उसी स्पन्दन के रूप में पहचान सकता है जो ब्रह्माण्ड को गति देता है। यह लघु-बृहद् ब्रह्माण्ड समानुरूपता का अपने सर्वाधिक परिष्कृत रूप में है: कोई संख्या नहीं, कोई संरचनात्मक उपमा भी नहीं, बल्कि आदिम लय के

साथ एक प्रत्यक्ष अनुभूत सम्पर्क, सबसे निकट के स्थान में पाया गया — किसी की अपनी श्वास का परिवर्तन-बिन्दु।

मैं इसे बिना आग्रह के प्रस्तुत करता हूँ, जैसे परम्परा स्वयं करती है। अनुभव की कसौटी के लिए आपको किसी तत्त्वमीमांसा को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं। बैठिए, और श्वास का अनुसरण कीजिए, और विशेषकर स्थिर बिन्दुओं पर ध्यान दीजिए — अन्तःश्वास के शिखर पर छोटा ठहराव, निःश्वास के तल पर छोटा ठहराव। कुछ गढ़िए मत; केवल लक्षित कीजिए। अनेक जो ऐसा करते हैं, देर-सवेर, एक ऐसी पहचान बताते हैं जिसे शब्दों में रखना कठिन है: कि जिस लय को वे देख रहे हैं वह उनकी नहीं है, कि वे श्वास लेने वाले नहीं बल्कि कुछ शान्ततर हैं जिसमें श्वसन घटित होता है, और कि यह शान्ति एक वृहत्तर शान्ति से सतत है जो शरीर तक कभी सीमित थी ही नहीं। चाहे कोई उसे स्पन्द कहे, या ऋत, या केवल वस्तुओं का होने का ढंग, सम्पर्क वही है, और यह किसी के लिए भी उपलब्ध है जो बैठने और ध्यान देने को तत्पर है।

अतः हम इस भाग को परम्परा द्वारा किए गए गहनतम दावे और विज्ञान द्वारा प्रस्तुत गहनतम अनुनाद की देहली पर समाप्त करते हैं: कि जिस समस्त व्यवस्था का हमने अनुरेखण किया उसके नीचे एक अकेला स्पन्दन है, और कि उस स्पन्दन से मिला जा सकता है। उससे आकाशों में नहीं, किसी समीकरण में नहीं, इस पुस्तक में भी नहीं, बल्कि आपके अपने श्वसन के उतार-चढ़ाव में, और बीच के स्थिर बिन्दुओं में मिला जाता है, जहाँ ऋत की सबसे छोटी इकाई, यदि आप पर्याप्त रूप से शान्त हों, समस्त वस्तुओं की व्यवस्था पर खुलती है। ब्रह्माण्ड एक अकेले स्पन्दन से धड़कता है। आप उसे अपने सम्पूर्ण जीवन भर अनुभव करते रहे हैं। जो एकमात्र कार्य शेष रहता है वह है लक्षित करना।

"जिस समस्त व्यवस्था का इस पुस्तक ने अनुरेखण किया उसके नीचे एक अकेला स्पन्दन है, और उस स्पन्दन से मिला जा सकता है — आकाशों में या किसी समीकरण में नहीं, बल्कि आपके अपने श्वसन के उतार-चढ़ाव में, और बीच के स्थिर बिन्दुओं में। ब्रह्माण्ड एक ही लय से धड़कता है। आप उसे अपने सम्पूर्ण जीवन भर अनुभव करते रहे हैं।"

भाग उन्नीस

गीता: अनुप्रयुक्त ऋत — कर्म का विज्ञान

गीता: अनुप्रयुक्त ऋत	
भगवद्गीता का कर्म-विज्ञान, संरेखण के माध्यम से पढ़ा गया	
1 विभुक्ति	स्वधर्म वह संरेखण जो केवल आपका है वह विशेष आकार जो ऋत आपके जीवन के माध्यम से लेता है — एक ऐसा ऋतव जिसे कोई अन्य नहीं जी सकता।
2 कर्म	निष्काम कर्म फल को पकड़े बिना कर्म केवल अनासक्त मन वर्तमान को इनका स्वरूप देखा है कि उसके भीतर सम्यक् कर्म से कर्म कर सके।
3 मन	स्थितप्रज्ञ स्थिरता में प्रतिष्ठित मन गहरा जल: सलह हर वायु के साथ चलती है, गहरावर्षा स्थिर रहती है।
4 अर्पण	यज्ञ अर्पण के रूप में जीवन कर्म जलकृत्र नहीं बल्कि अर्पित किया गया — अस्तित्व के खुले-तन प्रवाह के साथ संरेखित होते हुए।
5 अवस्थाएँ	त्रिगुण सत्त्व, रजस्, तमस् प्रत्येक अवस्था का एक कार्यकारी मानचित्र; मार्ग स्पष्टता से होकर जाता है, मनस्व उससे धरे।

भाग उन्नीस — कर्म का विज्ञान

संरेखण के विज्ञान के रूप में गीता की केन्द्रीय शिक्षाएँ
भाग उन्नीस — सिंहावलोकन

अध्याय तिरासी

स्वधर्म: वह संरेखण जो केवल आपका है

"अपना धर्म, यद्यपि अपूर्ण रूप से किया गया,
दूसरे के भली-भाँति किए गए धर्म से श्रेष्ठ है।"

— भगवद्गीता 3.35

अब हम उस ग्रन्थ की ओर मुड़ते हैं जो इस सम्पूर्ण पुस्तक के पीछे खड़ा रहा है, और जिसे जिस परम्परा का मैं अनुसरण करता हूँ — परमहंस स्वामी अङ्गड़ानन्द जी महाराज की यथार्थ गीता — पुराकथा के रूप में नहीं बल्कि आन्तरिक रूपान्तरण की एक परिशुद्ध नियमावली के रूप में पढ़ती है। भगवद्गीता, इस पठन में, अनुप्रयुक्त ऋत का सर्वाधिक सम्पूर्ण विवरण है जो परम्परा ने उत्पन्न किया: एक रणक्षेत्र-संवाद जिसमें संरेखण का सम्पूर्ण विज्ञान इस अत्यावश्यक प्रश्न में सम्पीडित है कि मनुष्य को कैसे कर्म करना चाहिए। इस भाग में मैं उसकी केन्द्रीय शिक्षाओं को एक-एक करके लेना चाहता हूँ और दिखाना चाहता हूँ कि प्रत्येक इस पुस्तक का ढाँचा है, गीता की अपनी भाषा में कहा गया।

उद्धरण की पंक्ति से आरम्भ कीजिए, जो सम्पूर्ण ग्रन्थ में सर्वाधिक भ्रान्ति से ग्रस्त में से एक है। सतह पर यह एक प्रकार के त्याग की सलाह देती प्रतीत होती है — अपनी राह में रहो, अपना नियत कर्तव्य करो, आकांक्षा मत करो। ऋत के झरोखे से पढ़ी गई, यह कुछ कहीं गहनतर और कहीं अधिक मुक्तिदायक कहती है। स्वधर्म — किसी का अपना धर्म — बाहर से आरोपित कोई सामाजिक भूमिका नहीं है। यह वह विशेष आकार है जो संरेखण आपके विशिष्ट जीवन में लेता है, आपकी प्रकृति, आपकी परिस्थिति, आपके सामर्थ्य, उस स्थान को देखते हुए जहाँ आप वस्तुतः खड़े हैं। गीता एक संरचनात्मक दावा कर रही है: कि संरेखण सामान्य नहीं है। वास्तविकता की व्यवस्था के आपके माध्यम से अभिव्यक्त होने का एक ढंग है जो वह ढंग नहीं है जिससे वह किसी अन्य के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।

*
**

उधार लिया गया धर्म क्यों विफल होता है

यह पंक्ति विशेष रूप से दूसरे का धर्म भली-भाँति करने के विरुद्ध चेतावनी देती है। यह एक सामान्य आधुनिक रोग का परिशुद्ध निदान है। हम देखते हैं कि संरेखण किसी अन्य व्यक्ति में कैसे अभिव्यक्त होता है — उसका आह्वान, उसका मार्ग, उसका संसार के साथ यथार्थ होने का ढंग — और हम उसकी नकल करने का प्रयास करते हैं, प्रायः बड़े कौशल और अनुशासन के साथ। और यह विफल होता है, इसलिए नहीं कि हम उसे बुरी तरह निष्पादित करते हैं, बल्कि इसलिए कि वह कभी वह आकार था ही नहीं जो ऋत हमारे माध्यम से लेता है। एक उधार लिया गया धर्म, चाहे कितना ही भली-भाँति किया गया हो, फिर भी एक विसंरेखण है, क्योंकि यह एक ऐसे प्रतिरूप के अनुसार जिया गया जीवन है जो उसे जीने वाले व्यक्ति की वास्तविक संरचना से मेल नहीं खाता। घर्षण सूक्ष्म है, दृढ़ है, और ठीक वही असहजता है जिसका इस पुस्तक के प्राक्कथन ने वर्णन किया।

मैंने इसे कार्य के संसार में तीन दशकों तक देखा है, और यह हर जगह है। वह प्रतिभाशाली अभियन्ता जो एक ऐसी नेतृत्व-भूमिका में पदोन्नति से दुःखी बना दिया गया जो एक भिन्न प्रकृति के अनुकूल थी। वह व्यक्ति जिसने एक गुरु के मार्ग की पग-पग नकल की और कभी समझ न सका कि वह उसे कोई शान्ति क्यों नहीं लाया। तुलना और अनुकरण का वह सम्पूर्ण उपकरण जो इतने अधिक आधुनिक प्रयास को संचालित करता है, गीता के शब्दों में, दूसरे के बेहतर दिखने वाले धर्म के लिए स्वधर्म का व्यवस्थित परित्याग है। और ग्रन्थ का निर्णय असंदिग्ध है: आपका अपना, अपूर्ण रूप से जिया गया, आपको संरेखित करता है; दूसरे का, पूर्ण रूप से जिया गया, नहीं करता।

**

वह आकार खोजना जो आपका है

तब, कोई अपना स्वधर्म कैसे खोजता है? गीता कोई सूत्र प्रदान नहीं करती, और न ही मैं करूँगा, क्योंकि उत्तर अर्जित की जाने वाली सूचना का एक टुकड़ा नहीं बल्कि उद्घाटित की जाने वाली एक पहचान है। किन्तु विधि इस सम्पूर्ण पुस्तक की विधि है: ध्यान। आपका स्वधर्म किसी दूरस्थ आह्वान में छिपा नहीं है जिसे आपको खोजने के लिए संसार छानना पड़े। यह आपके अपने प्रत्युत्तरों की बुनावट में दृश्य है — उसमें कि क्या, जब आप उसे करते हैं, आन्तरिक घर्षण बढ़ाने के बजाय घटाता है; उसमें जिसे आप स्वयं को क्षीण किए बिना टिका

सकते हैं; उन कर्मों में जिनके पश्चात् आप अधिक विभाजित के बजाय अधिक संरेखित अनुभव करते हैं। स्वधर्म स्वयं को संगति के रूप में घोषित करता है। कार्य इतनी ईमानदारी से ध्यान देना है कि उस कर्म के बीच का अन्तर अनुभव हो सके जो बैठता है और उस कर्म के जो केवल प्रभावित करता है।

यह प्रयोजन के चिन्तित आधुनिक प्रश्न को पुनः ढालता है। आपको कोई प्रयोजन गढ़ने या किसी ऐसे व्यक्ति से आयात करने की आवश्यकता नहीं जिसकी आप प्रशंसा करते हैं। आपको उसे लाँघना बन्द करने की आवश्यकता है जिसे आपकी अपनी प्रकृति की संरचना पहले से ही इंगित कर रही है। स्वधर्म प्राप्त की जाने वाली किसी वस्तु से कम, प्रतिरोध करना बन्द की जाने वाली कोई वस्तु अधिक है — जो ठीक वही है जो इस पुस्तक ने अपने पहले पृष्ठ से संरेखण के विषय में कहा है। गीता केवल इसे व्यक्तिगत बना देती है: एक ढंग है जिससे ऋत आपके माध्यम से विशेष रूप से गति करता है, और आपके सम्पूर्ण सम्यक् कर्म का गठन उस ढंग को खोजने और उससे लड़ना बन्द करने में है। आपका संरेखण केवल आपका है। कोई अन्य उसे नहीं जी सकता, और आप किसी अन्य का नहीं जी सकते।

अतः अनुप्रयुक्त ऋत की पहली शिक्षा सर्वाधिक आत्मीय भी है। ब्रह्माण्डीय व्यवस्था, विशाल और अवैयक्तिक, स्वयं को आपके माध्यम से कुछ सर्वथा विशिष्ट के रूप में अभिव्यक्त करती है — एक ऐसा आकार जो किसी अन्य पर नहीं बैठता। उस आकार का सम्मान करना, अपूर्ण रूप से भी, संरेखित होना है। उसे किसी अधिक भव्य दिखने वाले जीवन के लिए त्यागना, चाहे कितना ही सफल हो, चुपचाप और स्थायी रूप से यथार्थ से बाहर होना है। वह रणक्षेत्र जिस पर गीता कही जाती है, अन्ततः, यही है: उस जीवन के बीच चयन जो वस्तुतः आपका है और उस जीवन के जो केवल विजय जैसा दिखता है।

"स्वधर्म बाहर से आरोपित कोई भूमिका नहीं है। यह वह विशेष आकार है जो वास्तविकता की व्यवस्था आपके विशिष्ट जीवन के माध्यम से लेती है — एक ऐसा आकार जो किसी अन्य पर नहीं बैठता। उसका सम्मान करना, अपूर्ण रूप से भी, संरेखण है। उसे किसी अधिक भव्य दिखने वाले जीवन के लिए त्यागना विसंरेखण है, चाहे कितना ही सफल हो।"

निष्काम कर्म: फल को पकड़े बिना कर्म

"तुम्हारा अधिकार केवल कर्म पर है, उसके फलों पर कभी नहीं।"

— भगवद्गीता 2.47

यदि कोई एक शिक्षा है जिसके लिए गीता सार्वभौमिक रूप से जानी जाती है, तो वह यह है: कर्म के फलों के प्रति आसक्ति के बिना कर्म करो। यह पंक्ति हर जगह उद्धृत की जाती है, प्रायः भावुकता से, कठिन परिश्रम करने और परिणामों की चिन्ता न करने की सलाह के रूप में। इस पुस्तक द्वारा निर्मित सरेखण के विज्ञान के माध्यम से पढ़ी गई, निष्काम कर्म — निष्काम कर्म — स्वयं को विरक्ति की सलाह से कहीं अधिक परिशुद्ध और कहीं अधिक शक्तिशाली किसी वस्तु के रूप में प्रकट करता है। यह इसका वर्णन है कि ऋत के विरुद्ध के बजाय उसके अनुसार कैसे कर्म किया जाए।

पहले यह समझिए कि पंक्ति क्या नहीं कह रही। यह यह नहीं कह रही कि परिणाम महत्व नहीं रखते, या कि आपको परिणामों के प्रति उदासीन होना चाहिए, या कि प्रयास और उत्कृष्टता निरर्थक हैं। गीता शास्त्रों में सर्वाधिक कर्म-उन्मुख है; यह एक व्यक्ति को कर्म करने के लिए मनाने के लिए कही जाती है, प्रत्याहरण के लिए नहीं। शिक्षा इससे सम्बद्ध नहीं कि आप कर्म करते हैं या नहीं या कितना भली-भाँति, बल्कि उस आन्तरिक सम्बन्ध से जो आप कर्म करते समय फल के प्रति धारण करते हैं। और वह सम्बन्ध, यह सिद्ध होता है, इसका परिशुद्ध निर्धारक है कि आपका कर्म वास्तविकता से सरेखित होता है या उसे विकृत करता है।

*

**

परिणाम को पकड़ना कर्म को क्यों भ्रष्ट करता है

यहाँ क्रियाविधि है, उन शब्दों में जो इस पुस्तक ने स्थापित किए हैं। जब आप परिणाम को पकड़ते हुए कर्म करते हैं — उसकी आवश्यकता रखते हुए, उसकी अनुपस्थिति से भय

करते हुए, उस पर अपने स्व के बोध को दाँव पर लगाते हुए — तो वर्तमान कर्म का आपका बोध वांछित भविष्य की सेवा के लिए मुड़ जाता है। आप परिस्थिति को वैसा देखना बन्द कर देते हैं जैसी वह है और उसे उस परिणाम के साधन के रूप में देखने लगते हैं जिसकी आप तृष्णा करते हैं। यह ठीक वह पूर्वानुमानी विकृति है जिसका हमने पूर्वानुमानी मन पर अध्याय में परीक्षण किया: वांछित भविष्य एक इतना प्रबल पूर्वधारणा बन जाता है कि वह वर्तमान के आँकड़ों को अभिभूत कर देता है। आसक्त मन स्पष्ट नहीं देख सकता, और क्योंकि वह स्पष्ट नहीं देख सकता, वह क्षण के सच्चे अनुसार कर्म नहीं कर सकता। फल के प्रति आसक्ति उस कर्म के गुण को क्षीण करती है जिसे उसे उत्पन्न करना चाहिए।

अतः जिस विरोधाभास की ओर गीता संकेत करती है वह रहस्यमय नहीं बल्कि यान्त्रिक है: प्रभावी रूप से कर्म करने का सबसे निश्चित उपाय परिणाम पर पकड़ छोड़ना है, क्योंकि केवल अनासक्त मन ही वर्तमान का इतना सटीक बोध करता है कि उसके भीतर सम्यक् रूप से कर्म कर सके। वह शल्य-चिकित्सक जिसे अपने ही सत्यापन के लिए शल्यक्रिया के सफल होने की आवश्यकता है, उससे बुरी शल्यक्रिया करता है जो स्वयं प्रक्रिया में पूर्णतः लीन है। प्रशंसा के लिए व्याकुल कलाकार उससे बुरा कार्य करता है जो कार्य में खोया हुआ है। परिणाम तब सुधरते हैं जब आप वर्तमान का भविष्य से गला घोटना बन्द करते हैं। निष्काम कर्म विरक्ति के लिए प्रभावशीलता का बलिदान नहीं है। यह प्रभावशीलता की दशा है।

**

तृष्णा के बजाय ऋत से कर्म करना

एक और भी गहनतर परत है, और यह इस पुस्तक में हर वस्तु से जुड़ती है कि वस्तुतः कर्म कौन कर रहा है। जब आप परिणाम पकड़ते हुए कर्म करते हैं, तो कर्ता तृष्णारत स्व है — वह गढ़ा हुआ, चिन्तित अहं जिसे संसार से अपनी पुष्टि की आवश्यकता है। जब आप परिणाम छोड़ देते हैं और स्वयं को उस कर्म को पूर्णता से दे देते हैं जो वर्तमान क्षण वस्तुतः माँगता है, तो कुछ और आपके माध्यम से कर्म करता है: परिस्थिति की अपनी बुद्धिमत्ता, वह सम्यक् प्रत्युत्तर जिसे क्षण स्वयं इंगित करता है, जिसे गीता व्यक्तिगत तृष्णा के बजाय दिव्य व्यवस्था के साथ संरेखण से उठने वाला कर्म कहेगी। यह कर्ता का विलय है, जिसका हमने पहले परीक्षण किया — कर्म का लोप नहीं, बल्कि उस आसक्त का लोप जिसने उस पर दावा किया।

और यही कारण है कि यह शिक्षा अनुप्रयुक्त ऋत का ठीक हृदय है। फल के प्रति आसक्ति के बिना कर्म करना अपने कर्म को अहं की माँगों के बजाय परिस्थिति की व्यवस्था से शासित होने देना है। यह प्रत्येक क्षण में पूछना है, यह नहीं कि मुझे इससे क्या पाना है, बल्कि यह कि यह क्षण वस्तुतः क्या माँगता है — और फिर वह करना, पूर्णता से, और उसे छोड़ देना। फल कारणों के उस विशाल जाल के अनुसार आएगा या नहीं आएगा जिस पर परिणाम वस्तुतः निर्भर है, जिनमें से प्रायः कोई भी आपके नियन्त्रण में नहीं। जो आपके नियन्त्रण में है वह कर्म है और वह आन्तरिक अवस्था जिससे आप उसे करते हैं। उनकी देखभाल कीजिए, और फल को ऋत पर छोड़ दीजिए, जो आपके आने से बहुत पहले से परिणाम संभालता आ रहा है।

जिया गया, यह शिक्षा मानव दुःख की एक अपार मात्रा को विलीन कर देती है, क्योंकि हमारी पीड़ा का अधिकांश हमारे कर्मों में नहीं बल्कि उनके परिणामों पर हमारी आसक्ति में है — पहले की चिन्ता, दौरान की आसक्ति, बाद का विध्वंस या खोखली विजया पकड़ छोड़िए, और कर्म शेष रहता है, प्रायः सुधरा हुआ, जबकि परिणाम से जुड़ा दुःख केवल झड़ जाता है। आप वह करते हैं जो आपका करना है, पूर्ण देखभाल और पूर्ण कौशल के साथ, और आप परिणाम को उस व्यवस्था का होने देते हैं जो उसे सदा निर्धारित करने वाली थी। यह कर्म के मध्य स्वतन्त्रता है, और यह किसी के लिए भी गीता का केन्द्रीय उपहार है जो परिणामों के एक ऐसे संसार में संरेखित जीने का प्रयास कर रहा है जिन्हें वह आदेश नहीं दे सकता।

"फल को पकड़े बिना कर्म करना परिणामों के प्रति उदासीनता नहीं है। यह भली-भाँति कर्म करने की दशा है — क्योंकि केवल अनासक्त मन ही वर्तमान को इतना स्पष्ट देखता है कि उसके भीतर सम्यक् रूप से कर्म कर सके। कर्म की और उस अवस्था की देखभाल कीजिए जिससे आप कर्म करते हैं; फल को उस व्यवस्था पर छोड़ दीजिए जो उसे सदा निर्धारित करने वाली थी।"

अध्याय पचासी

स्थितप्रज्ञः स्थिरता में प्रतिष्ठित मन

"जब मनुष्य अपने मन की समस्त इच्छाओं को त्याग देता है,
और स्वयं में सन्तुष्ट रहता है — तब वह स्थिर प्रज्ञा वाला कहलाता है।"

— भगवद्गीता 2.55

अपने दूसरे अध्याय के मध्य में, गीता एक चित्र खींचने के लिए ठहरती है। अर्जुन पूछता है कि ऐसा संरेखित व्यक्ति वस्तुतः कैसा होता है — वह कैसे बैठा है, कैसे चलता है, कैसे बोलता है। उत्तर स्थितप्रज्ञ का वर्णन है, स्थिर प्रज्ञा वाला, समता में प्रतिष्ठित मन। यह गीता का पूर्णतः संरेखित मनुष्य का बिम्ब है, और यह ग्रन्थ में ठीक वैसे ही कार्य करता है जैसे एक गन्तव्य मानचित्र पर कार्य करता है: पालन किया जाने वाला नियम नहीं बल्कि इसकी पहचान कि सम्पूर्ण मार्ग कहाँ ले जाता है। मैं इस चित्र को उस हर वस्तु के लिए गए परिणाम के रूप में पढ़ना चाहता हूँ जिसका इस पुस्तक ने वर्णन किया है।

स्थितप्रज्ञ का परिभाषक गुण स्थिरता है — दमन की कठोरता नहीं, बल्कि एक ऐसे मन की स्थिरता जो अब तृष्णा और विद्वेष के झूले से इधर-उधर नहीं फेंका जाता। सुख उसे फुलाता नहीं; पीड़ा उसे ढहाती नहीं; लाभ उल्लसित नहीं करता, हानि विध्वस्त नहीं करती। इसे बार-बार शीतलता या उदासीनता के रूप में, अनुभूति के एक मृत चपटेपन के रूप में गलत पढ़ा जाता है। यह इसका विपरीत है। स्थिर मन पूर्णता से अनुभव करता है, किन्तु जो वह अनुभव करता है उससे अस्थिर नहीं होता। यह गहरे जल की भाँति है: सतह हर वायु के साथ चलती है, किन्तु गहराइयाँ स्थिर रहती हैं, और व्यक्ति सतह के बजाय गहराइयों से जीता है।

*
**

सरेखण के फल के रूप में स्थिरता

यह स्थिरता कहाँ से आती है? शान्त होने के प्रयास से नहीं, जो केवल मुखौटा पहने उद्वेलन है। यह सरेखण के उपोत्पाद के रूप में स्वाभाविक रूप से उठती है। उसका स्मरण कीजिए जो हमने पूर्वानुमानी मन और आसक्ति के विषय में स्थापित किया: साधारण अनुभव की उथल-पुथल अधिकांशतः एक ऐसे स्व से आती है जो परिणामों को पकड़ता है, इस प्रतिमान की रक्षा करता है कि चीजें कैसे होनी चाहिए, और बार-बार स्तब्ध होता है जब वास्तविकता अनुपालन से अस्वीकार करती है। आसक्ति हटाइए — जो निष्काम कर्म करता है — और स्तब्धताएँ अपना बल खो देती हैं। मन इसलिए स्थिर नहीं होता कि उसे स्थिरता में अनुशासित किया गया है बल्कि इसलिए कि उसके उद्वेलन का कारण छोड़ दिया गया है। स्थिरता वह है जैसा समता भीतर से अनुभव होती है; समता वह है जो सरेखण उत्पन्न करता है।

गीता क्रियाविधि के विषय में परिशुद्ध है। यह वर्णन करती है कि इच्छा के विषयों पर मनन कैसे आसक्ति उत्पन्न करता है, आसक्ति तृष्णा उत्पन्न करती है, तृष्णा वह उथल-पुथल उत्पन्न करती है जो स्पष्ट विवेक को नष्ट कर देती है — एक कारणात्मक शृंखला जो विवेचन के विनाश में समाप्त होती है। स्थितप्रज्ञ ने इस शृंखला का दमन नहीं किया है; उसने पहली कड़ी पर ही उससे पाँव हटा लिया है, अब मन को उस आसक्ति पर नहीं खिला रहा जो सम्पूर्ण झरने को गति में लाती है। यह विसरेखण की वही कारणात्मक संरचना है जिसका इस पुस्तक ने सरल भाषा में वर्णन किया: तृष्णा द्वारा अधिकृत एक बोध, घर्षण उत्पन्न करता हुआ, स्पष्टता को क्षीण करता हुआ, दुःख उत्पन्न करता हुआ। स्थिर मन केवल वह मन है जिसने उस झरने को आरम्भ करना बन्द कर दिया है।

*

**

कछुआ और इन्द्रियाँ

गीता इस अवस्था के लिए एक प्रसिद्ध बिम्ब देती है: स्थितप्रज्ञ अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से वैसे ही समेट लेता है जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने खोल में समेट लेता है। इस बिम्ब को सरलता से संसार से प्रत्याहरण के रूप में, एक रक्षित अन्तःस्थल में पलायन के रूप में गलत समझा जाता है। किन्तु कछुआ जीना बन्द नहीं करता; यह पूर्णतः उपस्थित रहता है, केवल अब प्रत्येक गुजरते उद्दीपन की ओर असहाय रूप से विस्तृत नहीं रहता। ऐसा ही स्थिर

मन के साथ है। यह संसार से पूर्णतः संलग्न होता है, किन्तु इच्छा या विद्वेष के प्रत्येक विषय द्वारा बाहर की ओर घसीटा नहीं जाता। यह बाध्यता के बजाय अपने ही स्थिर चयन से ध्यान दे सकता है, या न दे सकता है। यह प्रभुत्व है, पलायन नहीं — एक ऐसे मन के बीच का अन्तर जिसे संसार एक हजार डोरियों पर इधर-उधर झटकता है और एक ऐसे मन के जो संसार से अपने ही केन्द्र से मिलता है।

मैं ईमानदार रहना चाहता हूँ कि यह चित्र एक ऐसी ऊँचाई का वर्णन करता है जिसे विरले ही टिकाते हैं, और गीता यह जानती है; स्थितप्रज्ञ एक दिशा है, सदस्यता-पत्र नहीं। किन्तु दिशा ही मुख्य बात है, और यह किसी के लिए भी मात्राओं में पहुँचने योग्य है। आपने इसे क्षणों में अनुभव किया है — घंटों का एक विस्तार जब आसक्ति शान्त हो गई और आप अपने जीवन के माध्यम से सतही मौसम के नीचे की एक स्थिरता से, उपस्थित और अनुभव करते हुए फिर भी अविचलित, चले। वे क्षण संयोग नहीं हैं। वे आपकी अपनी प्रकृति की झलकें हैं जब संरेखण उच्च होता है, स्थितप्रज्ञ झलकता हुआ। इस पुस्तक का मार्ग केवल उन क्षणों का क्रमिक दीर्घीकरण है, ज्यों-ज्यों आसक्ति छोड़ी जाती है और वह स्थिर गहराई जो सदा वहाँ थी उसे वह स्थान बनने का अवकाश दिया जाता है जिससे आप जीते हैं, बजाय उस स्थान के जहाँ आप कभी-कभार जाते हैं।

अतः स्थिर-मन वाले का चित्र नीचे से सराहे जाने वाला कोई दूरस्थ आदर्श नहीं है। यह इसका वर्णन है कि आप ठीक उस मात्रा तक क्या बन जाते हैं जिस मात्रा तक आप संरेखित होते हैं — उस मात्रा तक कि आप अपना धर्म जीते हैं, फल का गला घोंटे बिना कर्म करते हैं, और बोध को वास्तविकता के विरुद्ध सुधारते रहने देते हैं। स्थिरता संरेखण का मूल्य नहीं है। यह उसका आस्वाद है। और परम्परा ने इस चित्र को गीता में आरम्भ में रखा, उस लम्बी शिक्षा से पूर्व जो उसके बाद आती है, ताकि साधक आरम्भ से ही जान ले कि संरेखण को जीना वस्तुतः कैसा अनुभव होता है: कोई तनाव नहीं, कोई कठोरता नहीं, बल्कि एक गहरी और अविचल स्थिरता, हर वस्तु के मध्य उपस्थित, स्वयं बने रहने के लिए संसार से कुछ न माँगती हुई।

"स्थिर मन शीतल या प्रत्याहृत नहीं है। यह पूर्णता से अनुभव करता है किन्तु जो वह अनुभव करता है उससे अस्थिर नहीं होता — गहरा जल जिसकी सतह हर वायु के साथ चलती है जबकि गहराइयाँ स्थिर रहती हैं। स्थिरता संरेखण का मूल्य नहीं है। यह उसका आस्वाद है।"

यज्ञः अर्पण के रूप में जीवन

"सम्पूर्ण कर्म, अपनी समग्रता में, ज्ञान में परिणत होता है।"

— भगवद्गीता 4.33

गीता एक प्राचीन शब्द लेती है — यज्ञ, वैदिक कर्मकाण्ड के केन्द्र की अग्नि-आहुति — और उसे पूर्णतः रूपान्तरित कर देती है। जहाँ पुरानी परम्परा का अभिप्राय ज्वालाओं में आहुति का एक शब्दशः अनुष्ठान था, गीता उसका अन्तःकरण करती है, यह घोषित करते हुए कि भली-भाँति जिया गया समस्त जीवन स्वयं एक यज्ञ है, एक सतत आहुति। यह ग्रन्थ की सर्वाधिक आमूल गतियों में से एक है, और संरक्षण के विज्ञान के माध्यम से पढ़ी गई यह इसका एक सम्पूर्ण पुनर्ढाँचा बन जाती है कि कर्म किसलिए है। मैं उस पुनर्ढाँचे को बाहर निकालना चाहता हूँ, क्योंकि यह इस भाग की शिक्षाओं को जीने के प्रति एक एकल अभिविन्यास में समेट लेता है।

आहुति क्या है? अपने मूल में, यह एक ऐसी क्रिया है जिसमें कुछ पकड़े जाने के बजाय दिया जाता है — स्व के लिए जकड़े जाने के बजाय एक वृहत्तर व्यवस्था में छोड़ा जाता है। वैदिक अग्नि-आहुति ने इसे भौतिक रूप से अभिनीत किया: जो ज्वाला में आहुत किया गया वह त्याग दिया गया, लौटा दिया गया, ब्रह्माण्डीय विनिमय में भेज दिया गया। गीता की अन्तर्दृष्टि यह है कि यह भाव-भंगिमा — पकड़ने के बजाय देना, उससे निष्कर्षण के बजाय समग्र में योगदान करना — प्रत्येक कर्म की आन्तरिक संरचना बन सकती है, ताकि एक सम्पूर्ण जीवन एक सतत अर्जन के बजाय एक सतत आहुति बन जाए। और यहाँ इस पुस्तक के गहनतम विज्ञान से सम्बन्ध स्तब्धकारी रूप से सटीक हो जाता है।

आहुति और व्यवस्था का प्रवाह

एन्ट्रॉपी पर अध्याय का स्मरण कीजिए, जहाँ हमने देखा कि एक सजीव वस्तु अपनी व्यवस्था केवल एक प्रवाह में सहभागी होकर बनाए रखती है — उपयोग्य ऊर्जा ग्रहण करके, उसका उपयोग करके, और अव्यवस्था को परिवेश में लौटाकर। जीवन संवैधानिक रूप से एक खुला तन्त्र है, एक विशाल विनिमय में एक गाँठ, पूर्णतः उससे टिका हुआ जो उसके माध्यम से गुजरता है, बजाय उसके जो वह संचित करता है। जीवन का यज्ञ-प्रतिमान ठीक इसी संरचना का सचेत, स्वैच्छिक आलिङ्गन है। आहुति के रूप में जीना अपने आन्तरिक अभिविन्यास को अपने अस्तित्व की वास्तविक भौतिकी के साथ संरेखित करना है: आप एक ऐसा स्थान हैं जहाँ व्यवस्था का प्रवाह गुजरता है और लौटाया जाता है, और भली-भाँति जीना उस गुजरने को स्वच्छता से संचालित करना है, जकड़ने के बजाय लौटाना, उसे बाँधने के प्रयास के बजाय विनिमय में योगदान करना।

इस प्रकार देखा गया, गीता का अन्तःकृत यज्ञ धार्मिक रूपक नहीं बल्कि सटीक वर्णन है। आसक्त जीवन — संचय का, निष्कर्षण का, प्रवाह के विरुद्ध थामने का जीवन — वह जीवन है जो अपनी ही प्रकृति को गलत समझता है, एक ऐसी वास्तविकता में एक बन्द तन्त्र की भाँति आचरण करने का प्रयास करता हुआ जहाँ केवल खुले तन्त्र जीते हैं। आहुति का जीवन वह जीवन है जिसने समझ लिया है। यह जो उसे आवश्यक है वह ग्रहण करता है और शेष को वृहत्तर व्यवस्था में लौटा देता है, और ऐसा करते हुए यह आसक्ति के उस घर्षण को घटाता है जो, जैसा इस सम्पूर्ण पुस्तक ने तर्क किया है, मानव दुःख का मूल है। यज्ञ ऋत के प्रवाह के साथ संरेखण है, कर्मकाण्ड के रूप में नहीं बल्कि एक जीवन के क्षण-दर-क्षण अभिविन्यास के रूप में किया गया।

*

**

आहुति ज्ञान में क्यों परिणत होती है

उद्धरण एक ऐसा दावा करता है जो विचित्र लग सकता है: कि समस्त कर्म ज्ञान में परिणत होता है। आहुति के रूप में किया गया कर्म जानने में क्यों समाप्त होना चाहिए? क्योंकि आहुति की क्रिया उत्तरोत्तर उस आसक्त स्व को विखण्डित करती है जिसकी माँगें बोध को विकृत करती हैं। प्रत्येक सच्ची आहुति — पकड़े जाने के बजाय दिया गया प्रत्येक कर्म — अहं की पकड़ को कुछ और ढीला करती है, और ज्यों-ज्यों वह पकड़ ढीली होती है, बोध स्पष्ट होता

है, और वास्तविकता अधिक वैसी देखी जाती है जैसी वह है। यज्ञ के रूप में किया गया कर्म इसलिए स्वयं-शुद्धकारी है: यह केवल संसार में वस्तुएँ सम्पन्न नहीं करता, यह क्रमशः बोधकर्ता को सुधारता है, जब तक कि कर्म करने वाला उस स्पष्टता से देखने न लगे जिसे इस पुस्तक ने सरेखण कहा है। आहुति किया गया कर्म अर्जित किया गया ज्ञान बन जाता है। आहुति की अग्नि, अन्ततः, वह अग्नि है जो विकृति को जला देती है।

यही कारण है कि गीता दो ऐसी वस्तुओं को एक साथ धारण कर सकती है जो विरोधी प्रतीत होती हैं — कर्म के लिए एक आवेगपूर्ण आह्वान और मुक्तिदायक ज्ञान का एक मार्ग। वे विरोधी नहीं हैं। आहुति के रूप में किया गया कर्म ज्ञान का मार्ग है। आपको संसार में पूर्णता से जीने और गहनतम समझ खोजने के बीच चयन नहीं करना पड़ता; सम्यक् रूप से अभिविन्यस्त, पहला दूसरे का साधन बन जाता है। प्रत्येक कार्य, प्रत्येक कर्तव्य, प्रत्येक साक्षात्कार, अर्जन के बजाय आहुति के रूप में किया गया, एक छोटी अग्नि बन जाता है जो उसे करने वाले को स्पष्ट करती है। इस प्रकार जिया गया एक सम्पूर्ण जीवन एक सतत यज्ञ है जिसका संचित फल सम्पत्तियों का ढेर नहीं बल्कि एक स्पष्ट किया गया दर्शन है — वह ज्ञान जिसकी ओर, गीता कहती है, समस्त कर्म सदा प्रवृत्त था।

अतः यज्ञ की शिक्षा इस भाग के अभिविन्यास को पूर्ण करती है। स्वधर्म आपको आपके कर्म का आकार बताता है; निष्काम कर्म आपको कर्म करते समय धारण करने योग्य आन्तरिक सम्बन्ध बताता है; स्थितप्रज्ञ उस स्थिरता का वर्णन करता है जो वह उत्पन्न करता है; और यज्ञ नाम देता है कि सम्पूर्ण वस्तु किसलिए है। यह एक आहुति है — एक जीवन जो व्यवस्था में दिया गया, उससे निष्कर्षित नहीं किया गया, प्रवाह के एक स्वच्छ गुजरने के रूप में संचालित किया गया, उसके विरुद्ध एक संचय के रूप में नहीं। ऐसे जिएँ, और आपका कर्म आपको केवल वास्तविकता की संरचना के साथ ही नहीं बल्कि उसकी गति के साथ भी सरेखित करता है, और उस सरेखण का दीर्घ फल वह स्पष्ट दर्शन है जिसमें, गीता वचन देती है, समस्त सम्यक् कर्म अन्ततः परिणत होता है।

"आहुति के रूप में जीना अपने आन्तरिक अभिविन्यास को अपने अस्तित्व की वास्तविक भौतिकी के साथ सरेखित करना है: आप एक ऐसा स्थान हैं जहाँ व्यवस्था का प्रवाह गुजरता है और लौटाया जाता है। पकड़े जाने के बजाय दिया गया कर्म स्व की पकड़ ढीली करता है — और इस प्रकार समस्त कर्म, सम्यक् रूप से किया गया, स्पष्ट दर्शन में परिणत होता है।"

गुणः प्रत्येक अवस्था के तीन तन्तु

"प्रकृति से उत्पन्न तीन गुण — सत्त्व, रजस्, और तमस् —
शरीर में अविनाशी वासी को बाँधते हैं।"

— भगवद्गीता 14.5

गीता एक प्रतिमान प्रस्तुत करती है कि मन और समस्त प्रकृति किससे गठित हैं, और यह सम्पूर्ण परम्परा के सर्वाधिक व्यावहारिक रूप से उपयोगी ढाँचों में से एक है: तीन गुण। ये तीन मूलभूत गुण या तन्तु हैं जिनके विषय में कहा जाता है कि वे समस्त प्रकृति और प्रत्येक मानसिक अवस्था के बीच से बुनते हैं — सत्त्व, स्पष्टता, सामंजस्य, और प्रभा का गुण; रजस्, सक्रियता, उद्वेलन, और तृष्णा का गुण; और तमस्, जड़ता, मन्दता, और प्रतिरोध का गुण। प्रत्येक मनःस्थिति, गीता सिखाती है, इन तीनों का एक विशेष मिश्रण है, और संरक्षण के कार्य को, बड़ी परिशुद्धता के साथ, अन्यो पर एक के क्रमिक संवर्धन के रूप में समझा जा सकता है।

इन्हें नैतिक श्रेणियों के रूप में पढ़ने से पूर्व, जो वे नहीं हैं, इन्हें उन अवस्थाओं के वर्णन के रूप में ग्रहण कीजिए जिन्हें आप पहले से ही आत्मीय रूप से जानते हैं। तमस् वह भारी, धुँधली, अटकी अवस्था है — उस प्रातःकाल की मन्दता जिससे आप स्वयं को जगा नहीं सकते, वह जड़ता जो समस्त गति का प्रतिरोध करती है, वह मानसिक कुहासा जिसमें कुछ भी स्पष्ट नहीं और कुछ भी नहीं बदलता। रजस् वह उद्वेलित, प्रेरित, बेचैन अवस्था है — वह तृष्णा जो स्थिर बैठ नहीं सकती, वह महत्वाकांक्षा जो विश्राम नहीं कर सकती, एक ऐसे मन की उथल-पुथल जो पीछा करता और पकड़ता और बैठने में असमर्थ है। सत्त्व वह स्पष्ट, शान्त, प्रभामय अवस्था है — वे प्रातःकाल जब मन उज्ज्वल और स्थिर होता है, जब देखना सरल होता है और कर्म बहता है, जब आप उद्वेलित हुए बिना जाग्रत और मन्द हुए बिना शान्त होते हैं। आप तीनों में लिए हैं। गुण केवल इन्हें नाम देते और इनकी संरचना प्रकट करते हैं।

*

**

संरेखण के मानचित्र के रूप में गुण

यहाँ कारण है कि यह प्रतिमान इस पुस्तक द्वारा वर्णित मार्ग के लिए इतना उपयोगी है। तीन गुण एक परिशुद्ध मानचित्र बनाते हैं कि विसंरेखण कहाँ बैठ सकता है और किस दिशा में संरेखण है। तमस् और रजस् विसंरेखण के दो मुख हैं: अटका हुआ और उद्वेलित, जड़ और आसक्त। दोनों स्पष्ट दर्शन को आच्छादित करते हैं — तमस् उसे धुँधलाकर, रजस् उसे मथकर। सत्त्व स्वयं संरेखण का गुण है: वह स्पष्टता जिसमें वास्तविकता वैसी देखी जाती है जैसी वह है और कर्म सम्यक् रूप से उठता है। मार्ग की सम्पूर्ण गति को इसलिए गुणों की भाषा में सत्त्व के संवर्धन के रूप में कहा जा सकता है — तमस् का क्रमिक हल्का होना और रजस् का बैठना, जब तक कि स्पष्ट और प्रभामय गुण मन की अभ्यस्त भूमि न बन जाए।

और निर्णायक रूप से, गुण प्रत्येक प्रकार के विसंरेखण के लिए सम्यक् उपचार की ओर संकेत करते हैं, क्योंकि दोनों मुख विपरीत सुधार माँगते हैं। तमस् का उपचार विश्राम नहीं बल्कि सक्रियण है — गति, संलग्नता, ऊर्जा का जगाना; आप जड़ता को शान्त नहीं करते, आप उसे हिलाते हैं। रजस् का उपचार अधिक सक्रियता नहीं बल्कि बैठना है — स्थिरता, आसक्ति का त्याग, वह धीमी श्वास जिसका हमने परीक्षण किया जो उद्वेलन को संगति में खींचती है; आप उथल-पुथल को अधिक चलाने से बाहर नहीं निकालते। बहुत-सा विफल आत्म-सुधार गलत उपचार लागू करने से आता है: एक तामसिक मन्दता को विश्राम देने का प्रयास जिसे जगाने की आवश्यकता थी, या एक राजसिक उद्वेलन को धकेलकर पार करने का प्रयास जिसे बैठने की आवश्यकता थी। गुण-प्रतिमान निदान करता है कि आप वस्तुतः किस अवस्था में हैं, और इसलिए जहाँ आप खड़े हैं वहाँ से संरेखण किस दिशा में है।

**

गुणों से परे

किन्तु गीता सत्त्व की अनुशंसा पर नहीं रुकती, और यह इसका गहनतम मोड़ है। सत्त्व भी, यह सिखाती है, प्रकृति का एक तन्तु है, एक गुण जो बाँधता है — अन्यो से अधिक प्रभामय, किन्तु फिर भी एक अवस्था जो उठती और बीतती है, फिर भी कुछ ऐसा जिससे शरीर में वासी मुक्त होने के बजाय तदात्म होता है। शिक्षा की अन्तिम गति तीनों गुणों का साक्षी बनना है — यह पहचानना कि स्पष्टता, उद्वेलन, और मन्दता सब एक ऐसी सजगता के भीतर उठते और बीतते हैं जो स्वयं उममें से कोई नहीं। जो गुणों को गति करते देखता है, अब उनके

उतार-चढ़ाव को अपनी पहचान नहीं समझता, वह उस तक पहुँच गया है जिसे गीता गुणातीत होना कहती है: स्थायी सत्त्व की उपलब्धि नहीं, जो असम्भव है, बल्कि जो भी तन्तु वर्तमान में प्रबल हो उससे परिभाषित होने से स्वतन्त्रता।

यह सीधे उस साक्षी चेतना से जुड़ता है जिसका इस पुस्तक ने पहले परीक्षण किया और जिसकी ओर लौटेगी। व्यावहारिक मार्ग सत्त्व से होकर जाता है — आप स्पष्टता विकसित करते हैं, आप मन्दता को हल्का करते और उद्वेलन को बैठाते हैं, क्योंकि स्पष्ट मन ही वह है जो उस पहचान में समर्थ है। किन्तु गन्तव्य वह सजगता है जिसमें स्पष्टता भी एक बीतती अवस्था के रूप में देखी जाती है। वहाँ से, गुण अपनी बन्धनकारी शक्ति खो देते हैं, इसलिए नहीं कि वे उठना बन्द कर देते हैं — मन्दता और उद्वेलन और स्पष्टता किसी भी देहधारी जीवन के बीच से गति करती रहेंगी — बल्कि इसलिए कि आप अब उनसे तदात्म नहीं रह जाते। वे मौसम बन जाते हैं, एक ऐसे आकाश से प्रेक्षित जिसे मौसम छू नहीं सकता। यह वह स्वतन्त्रता है जिसकी ओर गीता संकेत करती है: कोई स्थायी अच्छी मनोदशा नहीं, बल्कि अपनी मनोदशाओं से परिभाषित होने से ही स्वतन्त्रता।

अतः गुण गीता के अनुप्रयुक्त ऋत के रूप में इस भाग के पठन को पूर्ण करते हैं। वे आपको आपकी अपनी अवस्थाओं का एक कार्यकारी मानचित्र देते हैं, इसका एक परिशुद्ध निदान कि आप किस प्रकार के विसरेखण में हैं, प्रत्येक के लिए सम्यक् उपचार, और अन्ततः सम्पूर्ण प्रणाली से परे उस साक्षी सजगता में एक द्वार जिसमें गहनतम संरेखण विश्राम करता है। अपने में गुणों को देखिए — एक दिन भर, मन्दता का उठना, उद्वेलन का उभार, स्पष्टता के क्षण लक्षित कीजिए — और आप अपने हाथ में उन सर्वाधिक व्यावहारिक उपकरणों में से एक धारण करते हैं जिसे परम्परा ने कभी उस कार्य के लिए रचा जिसका यह सम्पूर्ण पुस्तक वर्णन करती रही है: तन्तु-दर-तन्तु और श्वास-प्रतिश्वास, उस व्यवस्था के साथ संरेखण में आने का कार्य जो आप हैं।

“तीन गुण — स्पष्टता, उद्वेलन, और मन्दता — आपके द्वारा कभी ज्ञात प्रत्येक अवस्था के बीच से बुनते हैं। मार्ग स्पष्टता के संवर्धन से होकर जाता है; किन्तु गन्तव्य वह सजगता है जिसमें स्पष्टता भी बीतती हुई देखी जाती है। गुण मौसम बन जाते हैं, एक ऐसे आकाश से प्रेक्षित जिसे मौसम छू नहीं सकता।”

भाग बीस

आपत्तियाँ, सीमाएँ, और ईमानदार जिज्ञासा

तीन प्रकार के दावे, परखने के तीन मानक		
एक ईमानदार दाँचा अपने ही जोड़ों को परीक्षण के सम्मुख कैसे खोलता है		
परखने योग्य प्रमाण पर परखा गया	व्याख्यात्मक जवाबदाता पर परखा गया	अनुभवपरक प्रधान-तुल्य परीक्षण पर परखा गया
दीर्घी भास संगति बढ़ाती है	स्वयं-संगठन के रूप में ऋत	गुणों के पीछे का साक्षी
दीर्घिकतिका तनाव अवरुध्दापन-भार सहन करता है	व्यवस्था के प्रभाव के रूप में प्राम	आसों के बीच का स्थिर बिन्दु
तलत सिद्ध किया जा सकता है — और अधिकांशतः टिका है	इससे अँका गया कि यह किनन भली-भाँति संगठित करता है, प्रमाण से नहीं	अपनी ही प्रयोगशाला में सत्यपति कीजिए, श्रद्धा पर नहीं

भाग बीस — आपत्तियाँ, सीमाएँ, और ईमानदार जिज्ञासा

तीन प्रकार के दावे, प्रत्येक अपने ही मानक पर परखा गया

भाग बीस — सिंहावलोकन

प्रतिरूप-मिलान का आरोप

"पहला सिद्धान्त यह है कि आपको स्वयं को मूर्ख नहीं बनाना चाहिए — और आप मूर्ख बनाने के लिए सबसे सरल व्यक्ति हैं।"

— रिचर्ड फ़ाइनमैन

एक ऐसी पुस्तक जो ऋग्वेद और ऊष्मागतिकी के बीच, प्राणायाम और स्वायत्त तंत्रिका-तन्त्र के बीच, स्पन्द और क्वाण्टम क्षेत्र सिद्धान्त के बीच रेखाएँ खींचती है, एक गम्भीर और न्यायसंगत आपत्ति को आमन्त्रित करती है, और इसका डटकर सामना किए बिना अन्त तक बढ़ना मेरे लिए बेईमानी होगी। आपत्ति यह है: कि मैं प्रतिरूप-मिलान कर रहा हूँ। कि मानव मन सादृश्यों का एक अविराम खोजी है, कि वह यदि पर्याप्त रूप से चाहे तो प्रायः किन्हीं भी दो क्षेत्रों पर एक सन्तोषजनक समानुरूपता ओढ़ा सकता है, और कि जिसे मैंने प्राचीन ज्ञाता और आधुनिक विज्ञान के बीच अभिसरण कहा है वह बादलों में चेहरे देखने के एक परिष्कृत संस्करण से अधिक कुछ नहीं। यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण आलोचना है जिसका यह पुस्तक सामना करती है, और यह सर्वाधिक ध्यानपूर्ण उत्तर की योग्य है।

मुझे पहले उस सब को स्वीकार करने दीजिए जो इसमें सत्य है, क्योंकि बहुत कुछ है। मानव मन वस्तुतः एक बाध्यकारी प्रतिरूप-खोजी है, और यह प्रवृत्ति गहन विषयवस्तु की उपस्थिति में बन्द नहीं होती — यदि कुछ है, तो यह तीव्र हो जाती है। आध्यात्मिकता और विज्ञान का विवाह कराने के प्रयासों का इतिहास लज्जाओं से भरा है: जो भी लेखक पहले से विश्वास करता था उसे न्यायसंगत ठहराने के लिए क्वाण्टम यान्त्रिकी का दुरुपयोग, वे अंक-शास्त्रीय खेल जो किसी भी संख्या में ब्रह्माण्डीय महत्त्व पा लेते हैं जिसे पर्याप्त देर तक देखा जाए, वे अस्पष्ट सादृश्य जो गहन सुनाई देते हैं और कुछ अर्थ नहीं रखते। मैंने ये पुस्तकें पढ़ी हैं। उनमें से कुछ को मैंने कभी प्रेरक पाया और अब पीड़ादायक पाता हूँ। इस विधा ने अपनी बुरी

प्रतिष्ठा अर्जित की है, और जो पाठक इस पुस्तक के प्रति सन्देह के साथ पहुँचता है वह बौद्धिक रूप से उत्तरदायी हो रहा है, संकीर्णमना नहीं। मैं ऐसा ही पाठक चाहता हूँ, भोला नहीं।

**

वास्तविक समानरूपता को प्रक्षेपित से कैसे भेदें

अतः प्रश्न परिशुद्ध हो जाता है: कोई एक सच्ची संरचनात्मक समानरूपता को एक प्रक्षेपित से कैसे भेदता है? मैं तीन परीक्षण प्रस्तावित करता हूँ, और मैंने इस पुस्तक को उन पर परखने का प्रयास किया है। पहला है बैठाव की दिशात्मकता। एक प्रक्षेपित प्रतिरूप प्रेक्षक द्वारा आरोपित किया जाता है, जो उन लक्षणों का चयन करता है जो मेल खाते हैं और उनकी उपेक्षा करता है जो नहीं खाते। एक सच्ची समानरूपता प्रेक्षक को बाध्य करती है — यह उन लक्षणों की स्वीकृति को विवश करती है जिन्हें कोई न देखना चाहे, खण्डन करने वालों सहित। यही कारण है कि, श्वास-ब्रह्माण्ड समानरूपता पर अध्याय में, मैंने यह कहने पर आग्रह किया कि 25,920 वर्षों का पारम्परिक महान वर्ष 25,772 के मापे गए अयन से मेल नहीं खाता, और कि श्वास-गणना अंक-शास्त्र भौतिकी के रूप में जाँच में नहीं टिकता। एक प्रतिरूप-मिलानकर्ता ऐसी विसंगतियाँ छिपाता है। एक ईमानदार जिज्ञासा उन्हें सूचित करती है, क्योंकि विसंगतियाँ आँकड़े हैं।

दूसरा परीक्षण है स्वतन्त्र आगमन। एक समानरूपता के वास्तविक होने की कहीं अधिक सम्भावना है यदि दो परम्पराएँ उस तक सच्चे रूप से स्वतन्त्र मार्गों से पहुँचीं, किसी ने दूसरे को प्रभावित नहीं किया, भिन्न विधियों का उपयोग करते हुए। जब नोएदर का प्रमेय, शुद्ध गणित से व्युत्पन्न, संरक्षण-नियमों के नीचे एक अपरिवर्त्यता का स्थान बताता है, और वैदिक ऋषि, सतत अन्तर्निरीक्षी ध्यान से कार्य करते हुए, समस्त परिवर्तन के नीचे एक स्थिर व्यवस्था का स्थान बताते हैं — ये एक-दूसरे से उधार लेने वाले एक ही लोग नहीं हैं। वे महाद्वीपों, सहस्राब्दियों, और विधि से पृथक् हैं। उसी संरचना तक स्वतन्त्र आगमन एक बार लिया गया दुर्बल प्रमाण है और बार-बार लिया गया प्रबलतर प्रमाण, और इस पुस्तक के अभिसरण स्वतन्त्र आगमनों के एक प्रतिरूप के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, एक अकेले उल्लेखनीय संयोग के रूप में नहीं।

तीसरा परीक्षण, और सर्वाधिक महत्वपूर्ण, यह है कि क्या समानरूपता कार्य करती है — क्या यह कुछ ऐसा पूर्वानुमान करती, समझाती, या उपलब्ध कराती है जो कोई भी अकेला

क्षेत्र प्रदान नहीं करता। एक केवल सजावटी सादृश्य निष्क्रिय बैठा रहता है; आप उसे हटा सकते हैं और कुछ नहीं खोते। एक कार्यकारी समानुरूपता के परिणाम होते हैं। यह दावा कि धीमी श्वास मापनीय शारीरिक संगति प्रेरित करती है, सजावटी नहीं है; यह एक ऐसे परिणाम का पूर्वानुमान करता है जिसे आप एक उपकरण पर सत्यापित कर सकते हैं, और यह समझाता है कि चिन्तक जिस अभ्यास तक अनुभव से पहुँचे वह उन प्रभावों को क्यों उत्पन्न करता है जिनकी उन्होंने सूचना दी। यह कार्य करती हुई एक समानुरूपता है। जहाँ इस पुस्तक की समानुरूपताएँ सजावटी हैं, उन्हें त्याग देना चाहिए। जहाँ वे कार्य करती हैं, उन्होंने अपना स्थान अर्जित किया है।

*
**

मैं क्या दावा कर रहा हूँ और क्या नहीं

इन परीक्षणों को प्रस्तुत कर चुकने पर, मुझे अपने दावे की सीमा यथासम्भव सटीक रूप से कहने दीजिए, क्योंकि प्रतिरूप-मिलान का अधिकांश आरोप अति-दावे से उठता है, और मैं केवल उसके लिए दोषी ठहराने योग्य होना चाहता हूँ जो मैंने वस्तुतः कहा है। मैं यह दावा नहीं कर रहा कि वैदिक ऋषियों के पास संकेतबद्ध रूप में आधुनिक भौतिकी थी। मैं यह दावा नहीं कर रहा कि प्राचीन ग्रन्थों ने गुप्त रूप से क्वाण्टम क्षेत्र सिद्धान्त या ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का पूर्वानुमान किया। मैं यह दावा नहीं कर रहा कि विज्ञान ने किसी परम्परा की तत्त्वमीमांसा सिद्ध की है। इनमें से प्रत्येक एक प्रतिरूप-मिलानकर्ता का अतिरेक होता, और मैं उन्हें उतनी ही दृढ़ता से अस्वीकार करता हूँ जितनी आलोचक करता।

जो मैं दावा कर रहा हूँ वह संकीर्णतर और, मेरे विचार से, सुरक्षणीय है। यह कि वास्तविकता का एक गहन संरचनात्मक लक्षण है — यह व्यवस्थित है, व्यवस्था आरोपित और स्थैतिक के बजाय अन्तर्भूत और गतिशील है, और वह व्यवस्था ब्रह्माण्डीय से दैहिक तक प्रत्येक पैमाने पर प्रतिबिम्बित होती है। और कि दो महान मानवीय परियोजनाओं, चिन्तनपरक और वैज्ञानिक, दोनों गम्भीर, दोनों अनुशासित, दोनों अपने ही ढंगों से स्वयं-संशोधक, ने स्वतन्त्र रूप से इस लक्षण का वर्णन किया है, प्रत्येक अपनी ही भाषा में। अभिसरण इसका प्रमाण नहीं है कि कोई पूर्णतः सही है। यह इसका प्रमाण है कि दोनों किसी वास्तविक वस्तु की ओर संकेत कर रहे हैं जिसे किसी ने आविष्कृत नहीं किया। यही मेरे दावे का सम्पूर्ण है, और मैं इसके द्वारा आँके जाने में सन्तुष्ट हूँ, बजाय उस फुलाए हुए संस्करण के जिस पर आलोचक आक्रमण करना पसन्द कर सकता है।

जिस आलोचक ने इतनी दूर तक ध्यानपूर्वक पढ़ा है वह अब भी असहमत हो सकता है, और यह पूर्णतः वैध है; विवेकशील लोग तीनों परीक्षणों को भिन्न रूप से तौलेंगे और रेखा को भिन्न स्थानों पर खींचेंगे। किन्तु मुझे आशा है कि मैंने दिखाया है कि प्रतिरूप-मिलान का आरोप, यद्यपि सदा उठाने योग्य, यहाँ कोई वार्तालाप-समापक नहीं है। यह एक मानक है जिसे पूरा किया जाना है, और मैंने उसे पूरा करने का प्रयास किया है विसंगतियों की सूचना देकर, स्वतन्त्र आगमनों पर टेक लगाकर, और उन समानुरूपताओं को जो केवल प्रसन्न करती हैं उनके ऊपर उन समानुरूपताओं को प्राथमिकता देकर जो कार्य करती हैं। उद्धरण में फ़ाइनमैन की चेतावनी निकट रखने योग्य सही है: मूर्ख बनाने के लिए सबसे सरल व्यक्ति स्वयं है। मैंने न बनाने का प्रयास किया है। जहाँ मैं विफल हुआ हूँ, जो परीक्षण मैंने अभी प्रस्तावित किए हैं वे वे उपकरण हैं जिनसे एक पाठक मुझे पकड़ सकता है, और मैं ग़लत कारणों से विश्वास किए जाने के बजाय पकड़ा जाना अधिक पसन्द करूँगा।

"प्रतिरूप-मिलान का आरोप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसका यह पुस्तक सामना करती है, और यह कोई वार्तालाप-समापक नहीं बल्कि एक मानक है जिसे पूरा किया जाना है। एक वास्तविक समानुरूपता अपने ही खण्डनों की सूचना देती है, स्वतन्त्र परम्पराओं से उठती है, और वह कार्य करती है जो कोई अकेला क्षेत्र नहीं कर सकता था। पुस्तक को उस मानक से आँकिए — और जहाँ मैं उसमें विफल होऊँ वहाँ मुझे पकड़िए।"

'है' से 'होना चाहिए' तक: अन्तराल की समस्या

'कोई है' से 'चाहिए' व्युत्पन्न नहीं कर सकता।"

— डेविड ह्यूम के अनुसार

एक दूसरी आपत्ति है, पहली से पुरानी और अधिक कठोर, और यह इस पुस्तक के तर्क के ठीक जोड़ पर प्रहार करती है। मैंने दावा किया है कि वास्तविकता व्यवस्थित है — यह एक वर्णनात्मक कथन है, इस विषय में एक दावा कि चीजें कैसी हैं। और मैंने दावा किया है कि आपको उस व्यवस्था के साथ सरेखित होना चाहिए — यह एक विधायक कथन है, इस विषय में एक दावा कि आपको कैसे जीना चाहिए। दार्शनिक डेविड ह्यूम ने प्रसिद्ध रूप से प्रेक्षित किया कि इन दो प्रकार के कथनों को एक ऐसे अन्तराल से पृथक् किया गया है जिसे अकेले तर्क से पार नहीं किया जा सकता: चीजें कैसी हैं इसका कितना भी वर्णन, स्वयं में, इस विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकता कि चीजें कैसी होनी चाहिए। यदि ह्यूम सही है, तो ऋतु से धर्म तक की सम्पूर्ण गति — उस व्यवस्था से जो है उस सरेखण तक जो आपको खोजना चाहिए — ठीक वही त्रुटि करती है जिसके विरुद्ध उसने चेतावनी दी। यह एक गम्भीर आरोप है और मैं इसे टालूँगा नहीं।

मुझे अन्तराल को परिशुद्ध रूप से कहने दीजिए, क्योंकि इसके बल को केवल अस्पष्ट रूप से अनुभव करना सरल है। मान लीजिए मैंने सन्देह से परे स्थापित कर दिया है कि ब्रह्माण्ड व्यवस्थित है, कि जीवन ऊर्जा के प्रवाहों के साथ सरेखण से स्वयं को बनाए रखता है, कि श्वास संगति को नियमित करती है, कि आसक्ति बोध को क्षीण करती है। यह सब वर्णन है — इस विषय में तथ्य कि चीजें कैसे कार्य करती हैं। अब मैं निष्कर्ष निकालता हूँ: इसलिए आपको सरेखित होना चाहिए। किन्तु आपको क्यों चाहिए? एक आलोचक प्रत्येक तथ्यात्मक आधार-वाक्य को स्वीकार कर सकता है और केवल उत्तर दे सकता है: तो क्या? सम्भवतः मैं विसरेखण पसन्द करता हूँ। सम्भवतः मैं उस सहज कार्य से कुछ भिन्न को मूल्य देता हूँ जिसकी आपका

वर्णन अनुशंसा करता है। तथ्य, चाहे कितने ही सम्पूर्ण हों, स्वयं मुझे सरेखण को मूल्य देने का आदेश नहीं देते। 'चाहिए' को चोरी से भीतर लाया गया है। यह कहाँ से आया?

**

तीन ईमानदार प्रत्युत्तर

मेरे पास तीन प्रत्युत्तर हैं, और मैं उन्हें बल के आरोही क्रम में प्रस्तुत करता हूँ, यह स्वाँग करने के बजाय कि उनमें से कोई एक समस्या को पूर्णतः विलीन कर देता है। पहला है तार्किक बिन्दु को पूर्णतः स्वीकार करना और दावे को संकीर्ण करना। कठोरता से, यह पुस्तक यह सिद्ध नहीं करती कि आपको किसी निरपेक्ष, मूल्य-रहित अर्थ में सरेखित होना चाहिए। जो यह दिखाती है वह सापेक्ष है: यदि आप अनावश्यक दुःख घटाना चाहते हैं, यदि आप प्रभावी रूप से कर्म करना चाहते हैं, यदि आप वह स्थिरता चाहते हैं जिसे स्थितप्रज्ञ मूर्त करता है — तो सरेखण उन लक्ष्यों का साधन है, क्योंकि वास्तविकता इसी प्रकार संरचित है। 'चाहिए' काल्पनिक है, श्रेणीगत नहीं। यह आपको केवल उस मात्रा तक बाँधता है जिस मात्रा तक आप पहले से ही वह चाहते हैं जो सरेखण देता है। यह पुस्तक की वाक्पटुता द्वारा कभी-कभी मुझाए गए से एक दुर्बलतर दावा है, और बौद्धिक ईमानदारी मुझसे ऐसा स्पष्ट रूप से कहने की माँग करती है।

किन्तु — और यह दूसरा प्रत्युत्तर है — शर्त यादृच्छिक नहीं है, और यहाँ अन्तराल एक रोचक ढंग से संकीर्ण होता है। जिन इच्छाओं पर काल्पनिक 'चाहिए' निर्भर है वे विलक्षण रुचियाँ नहीं हैं जो कुछ के पास हैं और अन्यो के पास नहीं। दुःख का परिहार, स्वयं-पराजयकारी घर्षण के बिना कर्म करने की इच्छा, स्थिरता की अभिलाषा — ये सचेत जीवन के प्रायः सार्वभौमिक लक्षण हैं, वैकल्पिक रुचियाँ नहीं। एक ऐसी सत्ता जो सच्चे रूप से अपने ही दुःख को मूल्य देती, जो घर्षण को स्वयं के लिए पसन्द करती, जो अस्थिरता को एक अन्त के रूप में खोजती, इतनी विरल होती कि रुग्णा अतः जबकि यह तार्किक रूप से सत्य रहता है कि तथ्य अपने ही फलने-फूलने में कोई दाँव न रखने वाली सत्ता को सरेखण का आदेश नहीं देते, यह भी सत्य है कि प्रायः कोई वास्तविक सत्ता उस स्थिति में नहीं है। काल्पनिक 'चाहिए', तर्क में सापेक्ष, व्यवहार में प्रायः निरपेक्ष है, क्योंकि प्रायः हर कोई पहले से ही वह चाहता है जिस पर यह सापेक्ष है।

**

परम्परा 'चाहिए' का स्थान कहाँ बताती है

तीसरा प्रत्युत्तर गहनतम है, और यह वह है जहाँ वैदिक दृष्टि चुपचाप उस ढाँचे से विचलित होती है जिसके भीतर ह्यूम ने समस्या रखी। ह्यूम का अन्तराल तथ्यों और मूल्यों के बीच, संसार के जैसा वह है और उस स्व के बीच जो मूल्यांकन करता है, एक तीक्ष्ण पृथक्करण मान लेता है — एक ऐसा स्व जो व्यवस्था के बाहर खड़ा है, भीतर देखता हुआ, जो वह देखता है उसे मूल्य देने या न देने के लिए स्वतन्त्र। किन्तु इस पुस्तक का सम्पूर्ण भार यह रहा है कि आप व्यवस्था के बाहर नहीं हैं। आप इसकी एक अभिव्यक्ति हैं। मूल्यांकन करने वाला स्व स्वयं ऋत का एक उत्पाद और एक अंग है, इसका समर्थन करना है या नहीं यह चुनने वाला कोई बाह्य प्रेक्षक नहीं। और यह अन्तराल को पुनः ढालता है। प्रश्न यह नहीं कि क्या किसी बाह्य प्रेक्षक को व्यवस्था को मूल्य देना चाहिए। प्रश्न यह है कि क्या एक ऐसी सत्ता जो स्वयं व्यवस्था की एक अभिव्यक्ति है, ठीक उस सिद्धान्त के विरुद्ध संगति से जी सकती है जिसका वह एक उदाहरण है।

परम्परा का उत्तर यह है कि वह नहीं जी सकती — तार्किक निष्पत्ति के विषय के रूप में नहीं, बल्कि इस विषय के रूप में कि स्व किस प्रकार की वस्तु है। विसरेखित होना कोई अनुमत्य वैकल्पिक चयन करना नहीं है; यह अपनी ही प्रकृति के साथ युद्ध में होना है, क्योंकि किसी की प्रकृति स्वयं उस व्यवस्था की एक अभिव्यक्ति है जिसके विरुद्ध युद्ध किया जा रहा है। 'चाहिए', इस दृष्टि में, अनुमान से 'है' से व्युत्पन्न नहीं किया जाता। यह इस पहचान से उद्धाटित होता है कि जो संरेखण को अस्वीकार करेगा वह ठीक उसी पदार्थ से बना है जिसे संरेखण नाम देता है। आप ऋत के साथ उस ढंग से संरेखित नहीं होते जिस ढंग से आप किसी बाह्य नियम का पालन करना चुन सकते हैं जिसकी आप समान रूप से अवज्ञा कर सकते थे। आप उसके साथ उस ढंग से संरेखित होते हैं जिस ढंग से एक तरंग जल के साथ संरेखित होती है — आदेश से नहीं, बल्कि इसलिए कि, अन्ततः, और कुछ है ही नहीं जो आप हैं।

मैं यह दावा नहीं करता कि यह तीसरा प्रत्युत्तर ह्यूम को उसकी अपनी शर्तों पर खण्डित करता है; उसकी अपनी शर्तों पर, तार्किक अन्तराल टिका रहता है, और मैं उसका सम्मान करता हूँ। मैं कुछ सूक्ष्मतर दावा करता हूँ: कि ह्यूम का ढाँचा एक पृथक्करण को पूर्वकल्पित करता है — एक ओर मूल्यांकन करने वाला स्व, दूसरी ओर मूल्यांकित संसार — जिसे वैदिक दृष्टि अस्वीकार करती है, और कि यदि वह अस्वीकृति सही है, तो वह अन्तराल जो पृथक्करण पर निर्भर है अपनी पकड़ खो देता है। क्या वह अस्वीकृति सही है यह प्रश्न तर्क सुलझा नहीं

सकता; यह एक प्रश्न है जिसका कोई उत्तर, अन्ततः, उस प्रकार की प्रत्यक्ष पहचान से देता है जिसकी ओर यह पुस्तक भर संकेत करती रही है। अतः मैं आपत्ति को आंशिक रूप से टिका हुआ छोड़ देता हूँ, जैसा ईमानदारी माँग करती है। 'है' से 'चाहिए' तक की गति कोई प्रमाण नहीं है। यह यह खोजने का एक आमन्त्रण है कि जिसे आमन्त्रित किया जा रहा है और जो व्यवस्था आमन्त्रित कर रही है वे कभी दो वस्तुएँ थीं ही नहीं।

"कठोरता से, वास्तविकता कैसी है इसका कोई वर्णन यह सिद्ध नहीं कर सकता कि आपको उसके साथ सरेखित होना चाहिए। किन्तु जो इच्छाएँ सरेखण को खोजने योग्य बनाती हैं वे प्रायः सार्वभौमिक हैं, वैकल्पिक नहीं — और अधिक गहराई से, वह स्व जो व्यवस्था को अस्वीकार करेगा वह स्वयं इसकी एक अभिव्यक्ति है। आप ऋत के साथ उस ढंग से सरेखित नहीं होते जिस ढंग से आप किसी बाह्य नियम का पालन करते हैं, बल्कि उस ढंग से जिस ढंग से एक तरंग जल के साथ सरेखित होती है।"

क्या इसमें से कुछ भी मिथ्याकरणीय है?

"जो सिद्धान्त हर वस्तु को समझाता है वह कुछ नहीं समझाता।"

— वैज्ञानिक पद्धति का एक सिद्धान्त

एक तीसरी आपत्ति विज्ञान के दर्शन से आती है, और यह वह है जिसका सामना करना मैं सर्वाधिक स्फूर्तिदायक पाता हूँ, क्योंकि यह पूछती है कि क्या यह पुस्तक उस प्रकार के दावे कर रही है जिन्हें परखा ही जा सकता है, या क्या यह केवल एक इतनी लचीली व्याख्या प्रस्तुत कर रही है कि कुछ भी कभी इसके विरुद्ध न गिना जा सके। आपत्ति के पीछे का सिद्धान्त ठोस है और मैं इसका समर्थन करता हूँ: ऐसा दावा जो प्रत्येक सम्भव प्रेक्षण के अनुकूल है, जो किसी भी परिणाम को पुष्टि के रूप में आत्मसात् कर सकता है, आपको संसार के विषय में कुछ नहीं बताता। यदि ऋतु सरेखण और विसरेखण, सफलता और विफलता, व्यवस्था और अव्यवस्था को समान रूप से समझाता है — यदि कोई कल्पनीय प्रेक्षण नहीं है जो इसके विरुद्ध गिना जाए — तो अपने समस्त सौन्दर्य के बावजूद यह वास्तविकता के विषय में कोई दावा है ही नहीं। यह एक लेंस है जो हर वस्तु को पुनः रंग देता है और कुछ पूर्वानुमान नहीं करता।

मैं इसे इतनी गम्भीरता से लेता हूँ कि अपने ही दावों को ईमानदारी से उनमें छाँटूँ जो परखने योग्य हैं और उनमें जो नहीं, क्योंकि वे सब एक ही प्रकार के नहीं हैं, और अन्यथा स्वाँग करना ठीक वही टालमटोल होती जिसके विरुद्ध आपत्ति चेतावनी देती है। इस पुस्तक का कुछ जो प्रतिपादित करता है वह सीधे-सीधे वैज्ञानिक है और प्रमाण पर टिकता या गिरता है। कुछ व्याख्यात्मक ढाँचा है जो नवीन पूर्वानुमान किए बिना अनुभव को संगठित करता है। और कुछ चिन्तनपरक दावा है, केवल प्रत्यक्ष अनुभव की प्रथम-पुरुष प्रयोगशाला में परखने योग्य और तृतीय-पुरुष उपकरणों से नहीं। इन तीनों को घालमेल करना अपरिचित को परिचित से विश्वसनीयता उधार लेने देता, और यही ठीक वह गति है जिससे मैं सर्वाधिक बचना चाहता हूँ।

**

वे दावे जो परखने योग्य हैं

सच्चे रूप से मिथ्याकरणीय दावों से आरम्भ कीजिए, जिनकी संख्या एक आलोचक की अपेक्षा से अधिक है। यह कि लगभग छह श्वास प्रति मिनट पर धीमी श्वास हृदय-गति परिवर्तनशीलता बढ़ाती है और मापनीय शारीरिक संगति प्रेरित करती है, एक परखने योग्य पूर्वानुमान है; इसे परखा गया है, और यह अन्यथा निकल सकता था। यह कि दीर्घकालिक तनाव विशिष्ट शारीरिक चिह्नों के साथ मापनीय अपस्थापन-भार उत्पन्न करता है, परखने योग्य और मिथ्याकरणीय है। यह कि सतत ध्यान के अभ्यास मस्तिष्क में मापनीय परिवर्तन उत्पन्न करते हैं, परखने योग्य है। यह कि बोध पूर्वानुमानी रूप से कार्य करता है, त्रुटि से सुधारे गए प्रतिमान उत्पन्न करता हुआ, ऐसे पूर्वानुमान करता है जिन्हें प्रयोग जाँच सकते और जाँचते हैं। ये दावे खण्डन से सुरक्षित नहीं हैं; यदि मापन चपटे निकलते, तो दावे मिथ्या होते, और मुझे उन्हें त्यागना पड़ता। यह कि वे अधिकांशतः टिके हैं उनके पक्ष में प्रमाण है, और यह कि वे विफल हो सकते थे वही है जो उन्हें कुछ भी मूल्यवान बनाता है।

जहाँ इस प्रकार का कोई दावा विवादित या प्रारम्भिक है — पूर्वानुमानी संसाधन, उदाहरण के लिए, एक युवा और विवादित ढाँचा है — मैंने उसे निर्णीत के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय वैसा ही चिह्नित करने का प्रयास किया है। परख्य परत की अखण्डता उसे अति-कथित न करने पर निर्भर है। एक पाठक को सम्बद्ध विज्ञान तक जाने, यह जाँचने कि ये विशिष्ट दावे टिकते हैं या नहीं, और तदनुसार अपना विश्वास संशोधित करने में समर्थ होना चाहिए। यह ठीक वैसा ही है जैसा होना चाहिए। पुस्तक की यह परत प्रमाण से जीती या मरती है, और मैं चाहता हूँ कि इसे उस मानक पर परखा जाए।

**

वे दावे जो व्याख्यात्मक हैं, और वे दावे जो अनुभवपरक हैं

फिर व्याख्यात्मक परत है — ऋत का स्वयं-संगठन के सिद्धान्त के रूप में, प्राण का व्यवस्था के प्रवाह के रूप में, विसरेखण का अ-अद्यतन पूर्वानुमान के रूप में पठना। ये कठोर अर्थ में मिथ्याकरणीय नहीं हैं, और मैं स्वाँग नहीं करूँगा कि वे हैं। ये ढाँचे हैं: तथ्यों को संगठित करने के ढंग जो स्वयं अन्य आधारों पर स्थापित हैं। एक ढाँचे को सत्य या मिथ्या नहीं आँका जाता बल्कि अधिक या कम प्रकाशकारी, अधिक या कम फलप्रद, उन परिघटनाओं के प्रति अधिक या कम निष्ठावान जिन्हें वह संगठित करता है। इस परत के लिए ईमानदार दावा यह

नहीं कि यह सिद्ध है बल्कि यह कि यह अपना हक कमाती है — कि विसंरक्षण को अ-अद्यतन पूर्वानुमान के रूप में देखना, उदाहरण के लिए, अनुभव को अर्थपूर्ण बनाता है और एक ऐसे ढंग से उपयोगी प्रत्युत्तर सुझाता है जैसे वैकल्पिक ढाँचे नहीं करते। आलोचक सही है कि इस परत को मिथ्याकृत नहीं किया जा सकता; आलोचक केवल तभी ग़लत है यदि वह यह निष्कर्ष निकाले कि यह इसलिए मूल्यहीन है, क्योंकि जो ढाँचे संसार को भली-भाँति संगठित करते हैं वे ही वह हैं जिनसे समझ आगे बढ़ती है, वहाँ भी जहाँ प्रमाण उपलब्ध नहीं।

अन्ततः चिन्तनपरक परत है — यह दावा कि कोई गुणों को उठते प्रत्यक्ष रूप से साक्षी कर सकता है, कि श्वासों के बीच का स्थिर बिन्दु किसी ऐसी वस्तु पर खुलता है जो एक वृहत्तर व्यवस्था से सतत है, कि आसक्त स्व को देखा जा सकता है। ये परखने योग्य हैं, किन्तु केवल एक विशेष प्रयोगशाला में: अपने ही अनुभव का अनुशासित प्रथम-पुरुष अन्वेषण। परम्परा ने सदा आग्रह किया है कि इन दावों को विश्वास करने के बजाय व्यक्तिगत रूप से सत्यापित किया जाए, और मैं भी इस पर आग्रह करता हूँ। ये तृतीय-पुरुष मिथ्याकरणीय नहीं हैं; कोई उपकरण इन्हें निर्णीत नहीं करता। किन्तु वे इसलिए यादृच्छिक नहीं हैं, क्योंकि प्रशिक्षित प्रेक्षकों का एक लम्बा, अन्तर-सांस्कृतिक अभिलेख है जो इस प्रयोगशाला से उल्लेखनीय रूप से सुसंगत निष्कर्ष सूचित करते हैं, और क्योंकि आप स्वयं उसमें प्रवेश कर और जाँच सकते हैं। मैं इन दावों से ठीक वही माँगता हूँ जो परम्परा माँगती है: विश्वास नहीं, बल्कि व्यक्तिगत सत्यापन, उसी कठोरता के साथ किया गया जो एक वैज्ञानिक प्रयोगपीठ पर लाता है।

**

अतः आपत्ति के प्रति मेरा उत्तर प्रश्न की छिपी पूर्वधारणा को अस्वीकार करना है — कि एक दावा या तो तृतीय-पुरुष मिथ्याकरणीय होना चाहिए या मूल्यहीन। पुस्तक तीन प्रकार के दावे करती है, और प्रत्येक को अपने ही उपयुक्त मानक पर परखा जाना चाहिए: वैज्ञानिक दावे प्रमाण पर, व्याख्यात्मक दावे फलप्रदता पर, अनुभवपरक दावे प्रथम-पुरुष सत्यापन पर। जिस त्रुटि से बचना है, और जिसे आपत्ति सही रूप से लक्षित करती है, वह है उन्हें घुलने-मिलने देना — एक व्याख्या को एक निष्कर्ष के रूप में सजाना, या एक अनुभवपरक सूचना को एक मापे गए तथ्य के रूप में। मैंने भर तीनों को भिन्न रखने और चिह्नित करने का प्रयास किया है कि कौन कौन है। जहाँ मैं सफल हुआ हूँ, पुस्तक कोई अमिथ्याकरणीय लेंस नहीं है जो हर वस्तु को पुनः रंगता है। यह दावों का एक स्तरित समुच्चय है, जिनमें से कुछ कल ग़लत

दिखाए जा सकते हैं, कुछ अपना स्थान इससे कमाते हैं कि वे कितने भली-भाँति संगठित करते हैं, और कुछ आपके अपने अन्वेषण की प्रतीक्षा करते हैं।

मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि एक पाठक इन दावों को परखे और उनमें से कुछ को न्यून पाए, बजाय इसके कि सम्पूर्ण पुलिन्दा उसके सौन्दर्य के बल पर स्वीकार कर ले। ऐसा ढाँचा जो केवल इसलिए टिकता है कि वह अपने ही परीक्षण को वर्जित करता है, रखने योग्य नहीं है। यह, मुझे आशा है, प्रत्येक परत पर अपने ही परीक्षण को आमन्त्रित करता है — और, उन परतों में जिन्हें परखा जा सकता है, उसमें टिकने के लिए पर्याप्त प्रबल है। यही सर्वाधिक है जो इस प्रकार की पुस्तक ईमानदारी से प्रस्तुत कर सकती है, और यही है जो मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ।

"पुस्तक तीन प्रकार के दावे करती है — वैज्ञानिक, व्याख्यात्मक, और अनुभवपरक — और प्रत्येक को अपने ही मानक पर परखा जाना चाहिए: प्रमाण, फलप्रदता, प्रथम-पुरुष सत्यापन। जिस त्रुटि से बचना है वह है उन्हें घुलने-मिलने देना। ऐसा ढाँचा जो केवल अपने ही परीक्षण को वर्जित करके टिकता है मूल्यहीन है; यह प्रत्येक परत पर परीक्षण को आमन्त्रित करता है।"

अध्याय इक्यानवे

हरण का प्रश्न

"कठोरता से रखी गई परम्परा एक संग्रहालय है; लापरवाही से साझा की गई परम्परा एक अफ़वाह है। जीवित मार्ग दोनों के बीच चलता है।"

— उत्तराधिकार पर एक चिन्तन

एक भिन्न प्रकार की आपत्ति है, तर्क के विषय में कम और सम्यक् सम्बन्ध के विषय में अधिक, और इसे छोड़ देना अखण्डता की एक विफलता होती। यह पुस्तक एक जीवित परम्परा से गहन गहराई की संकल्पनाएँ लेती है — ऋत, धर्म, प्राण, गुण, गीता की शिक्षाएँ — और उन्हें आधुनिक विज्ञान और समकालीन जीवन के झरोखे से पढ़ती है। कुछ को, यह अपहरण जैसा दिखेगा: सन्दर्भ से पवित्र संकल्पनाओं का निष्कर्षण, उस अनुशासन, परम्परा, और भक्ति से रहित जिसने उन्हें अर्थ दिया, एक धर्मनिरपेक्ष श्रोतावर्ग के लिए पुनः पैक किया गया जो प्रतिबद्धता के बिना अन्तर्दृष्टि चाहता है। यह आरोप एक गम्भीर और व्यक्तिगत उत्तर का योग्य है, रक्षात्मक का नहीं।

मुझे उस वास्तविक हानि को स्वीकार करके आरम्भ करने दीजिए जिसकी ओर आरोप संकेत करता है, क्योंकि एक है। परम्पराएँ खोखली की जा सकती हैं। पवित्र संकल्पनाएँ कल्याण-नारों में न्यून की जा सकती हैं, उनकी गहराई चपटी, उनकी माँगें चुपचाप हटाई हुई, एक ऐसे बाज़ार को वापस बेची हुई जो बलिदान के बिना शान्ति चाहता है। उन नैतिक और सामुदायिक ढाँचों से फाड़े गए अभ्यास जिन्होंने उन्हें धारण किया, व्यक्तिगत अनुकूलन की मात्र तकनीकें बन सकते हैं, और उस न्यूनीकरण में कुछ अनिवार्य खो जाता है — कभी-कभी कुछ ऐसा जिसे परम्परा ने सहस्राब्दियों तक संरक्षित किया। जो पाठक इसकी चिन्ता करता है वह किसी वास्तविक वस्तु की चिन्ता कर रहा है, और मैं इसके गलत पक्ष पर नहीं होना चाहता। जो प्रश्न मुझे उत्तर देना है वह यह है कि क्या यह पुस्तक जो करती है वह उस खोखला करने वाले प्रकार का निष्कर्षण है, या कुछ और।

**

निष्कर्षण नहीं, परम्परा

यहाँ मैं केवल व्यक्तिगत रूप से बोल सकता हूँ, और बोलूँगा। मैं इन संकल्पनाओं से खनन किए जाने वाले कच्चे माल के रूप में नहीं मिला। मैंने इन्हें एक परम्परा के माध्यम से प्राप्त किया — सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप से परमहंस स्वामी अङ्गद्वानन्द जी महाराज की यथार्थ गीता के माध्यम से, जो, जैसा मैंने आरम्भ में कहा, मेरे जीवन का और इस पुस्तक का गहनतम कम्पास रही है। मैं उस परम्परा से निष्कर्षण करने वाले एक बाहरी व्यक्ति के रूप में नहीं लिखता जिसे मैं प्रेक्षित करता हूँ, बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति के रूप में जो उसकी एक धारा के भीतर गढ़ा गया, जो प्राप्त किया उसे उस संसार की भाषा में ले जाने का प्रयास करता हुआ जिसमें मैं भी निवास करता हूँ, विज्ञान और तन्त्रों और आधुनिक कार्य का संसार। क्या मैंने ऐसा निष्ठा से किया है यह अन्यो के आँकने के लिए है। किन्तु मुद्रा निष्कर्षण नहीं है। यह संचरण है — एक ऐसे व्यक्ति का प्रयास जिसने प्राप्त किया, उसे आगे बढ़ाने का, अपने को उपलब्ध मुहावरे में, जो दिया गया था।

और मुहावरों भर संचरण किसी जीवित परम्परा के साथ विश्वासघात नहीं है; यह वह है जिससे एक जीवित परम्परा जीवित रहती है। वैदिक संकल्पनाएँ जमी हुई आगे नहीं सौंपी गईं। गीता स्वयं एक पुनः-अभिव्यक्ति है, यज्ञ की पुरानी कर्मकाण्डीय शब्दावली लेकर और उसे आन्तरिक जीवन के लिए पुनर्व्याख्यायित करते हुए, जैसा हमने देखा। प्रत्येक महान भाष्यकार ने, जिस परम्परा का मैं अनुसरण करता हूँ उसे सहित, शिक्षा को अपने ही युग और श्रोतावर्ग के लिए पुनःकथित किया। एक ऐसी परम्परा जो समस्त पुनः-अभिव्यक्ति से अस्वीकार करती, संरक्षित नहीं होती; वह सुगन्धित-लेपित कर दी जाती। अपहरण-आरोप जिस खतरे की पहचान करता है वह वास्तविक है, किन्तु इसका उपचार परम्परा को केवल दीक्षितों द्वारा छुए जाने योग्य एक संग्रहालय-वस्तु में जमा देना नहीं है। उपचार निष्ठावान संचरण है — गहराई को पार ले जाना, गहराई को पीछे न छोड़ना।

**

निष्ठावान संचरण की कसौटी

तो कोई निष्ठावान संचरण को खोखला करने वाले निष्कर्षण से कैसे भेदता है? मेरा विचार है कि कसौटी यह है कि क्या माँगें उपहार के साथ यात्रा करती हैं। खोखला करना माँगें

हटा देता है: यह शान्ति रखता है और बलिदान त्याग देता है, तकनीक रखता है और नैतिकता त्याग देता है, शान्ति रखता है और आसक्त स्व के उस विलय को त्याग देता है जिसकी शान्ति को आवश्यकता मानी जाती थी। निष्ठावान संचरण माँगों को अक्षुण्ण पार ले जाता है, तब भी जब वह भाषा बदलता है। तब इस पुस्तक की कसौटी यह है कि क्या इसने कठिन मर्म रखा है या उसे सरलतर उपभोग के लिए रगड़कर हटा दिया है।

मैंने मर्म रखने का प्रयास किया है, और पाठक जाँच सकता है। यह पुस्तक आसक्ति के समर्पण के बिना संरक्षण का वचन नहीं देती; यह बार-बार आग्रह करती है कि परिणामों पर अहं की जकड़ छोड़ी जानी चाहिए, जो सबसे कठिन माँग है जो परम्परा करती है। यह स्थितप्रज्ञ की स्थिरता को एक शिथिलीकरण-तकनीक के रूप में प्रस्तुत नहीं करती; यह उसे इसकी एक वास्तविक और मूल्यवान पुनर्व्यवस्था के फल के रूप में प्रस्तुत करती है कि कोई सम्पूर्ण जीवन को कैसे धारण करता है। यह अभ्यासों को उनके नैतिक आधार से पृथक् नहीं करती; अहिंसा, सत्य, सेवा, सम्बन्धों में सत्य का धर्म — ये पुस्तक भर आन्तरिक कार्य के अविभाज्य सहचरों के रूप में चलते हैं। यदि मैंने शान्तिदायक भागों को रखा होता और माँगपूर्ण भागों को त्याग दिया होता, तो खोखला करने का आरोप चिपकता। मैंने इसका विपरीत करने का प्रयास किया है: पूर्ण भार को पार ले जाने का, उन भागों सहित जो भली-भाँति नहीं बिकते।

मैं यह दावा नहीं करूँगा कि मैंने इसे पूर्णता से किया है; कोई संचरण पूर्ण नहीं होता, और परम्परा में पगा एक पाठक भली-भाँति ऐसे स्थान पा सकता है जहाँ आधुनिक मुहावरे में अनुवाद ने कुछ ऐसा गँवाया है जिसे लक्षित करने में मैं विफल रहा। मैं उन आलोचनाओं को खुला और स्वागतयोग्य रखता हूँ, क्योंकि वे ही वह हैं जिनसे संचरण सुधारा जाता है। किन्तु मैं इस आधार-वाक्य को अस्वीकार करता हूँ कि प्रयास स्वयं अवैध है — कि ये संकल्पनाएँ अपनी मूल भाषा के भीतर सीलबन्द रहनी चाहिए, केवल उनको उपलब्ध जो उन तक केवल पारम्परिक मार्ग से पहुँचते हैं। डॉ. कलाम, जन्म से एक मुसलमान, एक हिन्दू ग्रन्थ में विज्ञान के विषय में पूछते हुए, अपहरण नहीं कर रहे थे; वे एक गम्भीर मन थे जो एक ऐसे सत्य की ओर एक सीमा के पार पहुँच रहे थे जिसके सार्वभौमिक होने का उन्हें सन्देह था। वह पहुँचना, सम्मान के साथ और माँगों को अक्षुण्ण रखते हुए किया गया, चोरी नहीं है। यह वह ढंग है जिससे प्रज्ञा सदा यात्रा करती आई है — और वह ढंग जिससे उसे यात्रा करनी ही चाहिए, यदि वह मृतकों की एक धरोहर के बजाय जीवितों के लिए प्रज्ञा बनी रहनी है।

"अपहरण-आरोप जिस खतरे को नाम देता है वह वास्तविक है: परम्पराएँ कल्याण-नारों में खोखली की जा सकती हैं, उनकी माँगें हटाई हुई। किन्तु उपचार किसी जीवित परम्परा को एक संग्रहालय-वस्तु में जमा देना नहीं है। यह निष्ठावान संचरण है — गहराई और माँगों को पार ले जाना, नई भाषा में भी। कसौटी यह है कि क्या कठिन मर्म उपहार के साथ यात्रा करता है।"

श्वास की सीमाएँ

"द्वार को घर मत समझ लीजिए।"

— साधकों के लिए एक सावधानी

मैंने श्वास को इस पुस्तक के केन्द्र में रखा है — ऋत की सबसे छोटी इकाई, प्रमुख सुधार-डायल, वह एक सचेत रूप से उपलब्ध लीवर जो हृदय और स्वायत्त गहराइयों तक एक साथ पहुँचता है। मेरा विश्वास है कि यह बल सही है। किन्तु एक ईमानदार जिज्ञासा को अपने ही केन्द्रीय उपकरण की सीमाओं को नाम देना चाहिए, और वास्तविक सीमाएँ हैं, और जो पाठक श्वास को सर्व-रोग-निवारक समझ ले वह मेरे उत्साह से भ्रमित होकर उसकी अपेक्षा करने लगेगा जो कोई श्वास नहीं दे सकती। अतः यह अध्याय मेरे अपने बल का एक सोद्देश्य सुधार है, इस प्रकार लिखा गया कि उपहार, अतिरेक द्वारा, एक निराशा में न बदल जाए।

पहली और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सीमा चिकित्सकीय है, और मैं इसे बिना किसी हिचक के कहता हूँ। श्वास-अभ्यास गम्भीर रोग का उपचार नहीं हैं, और वे चिकित्सकीय या मनोरोग-चिकित्सकीय देखभाल का विकल्प नहीं हैं। गम्भीर अवसाद, आघात-विकार, मनोविक्षिप्ति, प्रमुख चिन्ता-दशाएँ, और भौतिक रोगों की एक विशाल श्रेणी को व्यावसायिक उपचार की आवश्यकता होती है, और यह सुझाव कि कोई इनसे श्वास द्वारा बाहर निकल सकता है, केवल मिथ्या ही नहीं बल्कि सम्भावित रूप से हानिकारक है, क्योंकि यह उस देखभाल को विलम्बित कर सकता है जो वस्तुतः आवश्यक है। कुछ दशाओं के लिए, कुछ सघन श्वास-अभ्यास निश्चित रूप से प्रतिनिर्दिष्ट हैं और लक्षणों को बिगाड़ सकते हैं। श्वास एक साधारण मन की साधारण उथल-पुथल के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है। यह नैदानिक दशाओं के लिए कोई चिकित्सा नहीं है, और मैं नहीं चाहता कि कोई पाठक एक को दूसरा समझ ले या इस पुस्तक में किसी वस्तु के बल पर वास्तविक सहायता को स्थगित करे।

**

जहाँ अकेली श्वास पर्याप्त नहीं

चिकित्सकीय सीमा से परे, एक सूक्ष्मतर सीमा है जो स्वयं मार्ग के लिए महत्व रखती है। श्वास आपकी शारीरिक अवस्था को बदल सकती है — विश्वसनीय रूप से, मापनीय रूप से, कभी-कभी गहन रूप से। जो यह स्वयं नहीं कर सकती वह है संस्कार, विश्वासों, बोध के उन जड़ जमाएँ प्रतिरूपों को बदलना जो सर्वप्रथम विसंरक्षण उत्पन्न करते हैं। आप स्वयं को श्वास द्वारा संगति में ला सकते हैं, और फिर अपने जीवन के विषय में उसी विकृत कहानी में वापस चल सकते हैं और मिनटों के भीतर संगति खो सकते हैं। श्वास विसंरक्षण की शारीरिक परत को प्रत्यक्ष रूप से और संज्ञानात्मक परत को केवल अप्रत्यक्ष रूप से सम्बोधित करती है। एक व्यक्ति श्वास द्वारा शान्त अवस्थाएँ प्रेरित करने में अत्यधिक कुशल हो सकता है और भीतर ही भीतर, पहले की भाँति ही आसक्त, उतना ही संस्कारित, उतना ही अजाग्रत बना रह सकता है। अवस्था वास्तविक है किन्तु यह रूपान्तरण के समान नहीं है।

यही कारण है कि परम्परा ने कभी अकेली श्वास प्रस्तुत नहीं की, और कि इस पुस्तक ने भी नहीं की। प्राणायाम एक वृहत्तर वास्तुकला के भीतर बैठता है — नैतिक नींवें, विवेक का संवर्धन, आसक्त स्व को देखने का कार्य, सजगता का दीर्घ अनुशासन। श्वास द्वार है, और द्वार सच्चे रूप से भीतर जाने का मार्ग है; किन्तु द्वार घर नहीं है, और जो साधक द्वार में खड़ा सुन्दरता से श्वास लेता है, देहली को निवास समझते हुए, वह पहुँचा नहीं है। श्वास एक ऐसी अवस्था तक पहुँच खोलती है जिसमें गहनतर कार्य सम्भव हो जाता है। यह गहनतर कार्य नहीं करती। इसे मार्ग के प्रवेश के बजाय सम्पूर्ण मार्ग के रूप में प्रस्तुत करना ठीक उस खोखला करने को दोहराना होता जिसके विरुद्ध इस पुस्तक ने अभी तर्क किया — सरल, सुखद तकनीक रखना और चुपचाप उस माँगपूर्ण रूपान्तरण को छोड़ देना जिसकी सेवा के लिए वह अभिप्रेत थी।

*

**

ईमानदार अपेक्षाएँ

व्यक्तिगत विविधता का मामला भी है, जिसे उत्साही साहित्य अनदेखा करने की प्रवृत्ति रखता है। श्वास-अभ्यास हर किसी को एक ही ढंग से प्रभावित नहीं करते। अधिकांश लोगों के लिए, धीमी श्वास शान्तिकारी और सुरक्षित है। कुछ के लिए, विशेषकर उनके लिए जिनके पास कुछ चिन्ता-प्रतिरूप या आघात-इतिहास हैं, श्वास पर निकट ध्यान आरम्भ में संकट को घटाने के बजाय बढ़ा सकता है, ज्यों-ज्यों अन्तर्ग्राही केन्द्रण उसे सतह पर लाता है जो दबाया जा रहा

था। इसका अर्थ यह नहीं कि अभ्यास उनके लिए गलत है; प्रायः इसका अर्थ है कि उसके प्रति भिन्न रूप से, अधिक सौम्यता से, कभी-कभी मार्गदर्शन के साथ, कभी-कभी अन्य आधार-कार्य के पश्चात् पहुँचा जाना चाहिए। किन्तु एक ऐसी पुस्तक जो समस्त पाठकों को एकसमान शान्ति का वचन देती, झूठ बोल रही होती, और मैं नहीं बोलूँगा। यदि श्वास आपको तत्काल शान्त नहीं करती, तो आप विफल नहीं हो रहे; आप उन अनेकों में से एक हैं जिनके लिए द्वार भिन्न रूप से खुलता है, और यह काम में लाई जाने वाली सूचना है, आप पर कोई निर्णय नहीं।

श्वास के प्रति इतनी समर्पित पुस्तक में इन समस्त सीमाओं पर आग्रह क्यों? क्योंकि एक फुलाया हुआ दावा, जब वह किसी पाठक को विफल करता है, अतिशयोक्ति के साथ सच्चे उपहार को भी बदनाम कर देता है। यदि मैं आपको बताऊँ कि श्वास हर वस्तु ठीक कर देगी, और यह हर वस्तु ठीक नहीं करती — जो यह नहीं करेगी — तो आप निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सम्पूर्ण ढाँचा खोखला था, और मेरे अतिरेक के साथ वास्तविक और सत्यापनीय अच्छाई को त्याग सकते हैं। मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि आपको ठीक-ठीक बताऊँ कि श्वास क्या कर सकती है, जो बहुत कुछ है, और ठीक-ठीक क्या नहीं कर सकती, जो भी बहुत कुछ है, ताकि जो आप उससे प्राप्त करते हैं वह संक्षिप्त रूप से मोहक और फिर निराशाजनक होने के बजाय सुदृढ़ और स्थायी हो। श्वास मनुष्य को उपलब्ध संरेखण में सर्वाधिक सुलभ प्रवेश है। यह सम्पूर्ण संरेखण नहीं है। अपने सच्चे आकार पर रखी गई, यह उन सर्वाधिक मूल्यवान् वस्तुओं में से एक बनी रहती है जो इस पुस्तक के पास प्रस्तुत करने को हैं। उससे परे फुलाई गई, यह एक ऐसे क्षेत्र में एक और टूटा वचन बन जाती है जो पहले से ही उनसे भरा है।

अतः श्वास को वैसा ही लीजिए जैसी वह है: एक वास्तविक, शक्तिशाली, तत्काल उपलब्ध द्वार एक ऐसी अवस्था में जिससे संरेखण का गहनतर कार्य आगे बढ़ सकता है। इसका दैनिक उपयोग कीजिए; जो यह कर सकती है उस पर विश्वास कीजिए; इससे वह मत माँगिए जो यह नहीं दे सकती। और जब आप द्वार से होकर उस स्थिरतर अवस्था में गुजर चुके हों जिसे यह खोलती है, तो वहीं रुककर अपने श्वसन पर स्वयं को बधाई मत दीजिए। घर में आगे चलिए — आसक्ति को देखने, वास्तविकता के विरुद्ध बोध को सुधारने, अपना धर्म जीने और अपने कर्म को जकड़ने के बजाय उसे अर्पित करने का धैर्यपूर्ण कार्य। श्वास आपको द्वार से ले आई। यह कभी वह स्थान होने के लिए अभिप्रेत नहीं थी जहाँ आप रहते हैं।

"श्वास एक द्वार है, और सच्चे रूप से भीतर जाने का मार्ग — किन्तु द्वार घर नहीं है। यह आपकी शारीरिक अवस्था को विश्वसनीय रूप से बदलती है; यह, अकेली, नीचे के संस्कार को नहीं बदल सकती। यह गम्भीर रोग का उपचार नहीं है। इसे ठीक वैसा ही लीजिए जैसी वह है: सरैखण का सर्वाधिक सुलभ प्रवेश, और इसका सम्पूर्ण नहीं।"

मेरा मन क्या बदलेगा

*"किसी विचार को बिना स्वीकार किए मनन कर सकना
एक शिक्षित मन का चिह्न है।"*

— अरस्तू के अनुसार

मैं इस भाग को उस सर्वाधिक माँगपूर्ण अभ्यास के साथ समाप्त करना चाहता हूँ जिसे इस जैसी पुस्तक का एक लेखक कर सकता है, और जो एक विचारशील पाठक का विश्वास अर्जित करने की सर्वाधिक सम्भावना रखता है: स्पष्ट रूप से कहना कि क्या मेरा मन बदलेगा। एक विश्वदृष्टि को आगे बढ़ाना सरल है। उन दशाओं को निर्दिष्ट करना कठिनतर है, और कहीं विरलतर, जिनके अन्तर्गत कोई उसे त्याग देगा। इतनी शिथिलता से धारण की गई स्थिति कि कुछ भी उसे हिला न सके मात्र रुचि है; इतनी कठोरता से धारण की गई स्थिति कि कुछ भी उसे हिला न सके मात्र हठधर्म है। एक गम्भीर स्थिति वह है जिसका धारक कह सकता है कि उसे कैसे पराजित करें। अतः मुझे, ईमानदारी से, इस पुस्तक के केन्द्रीय दावों के लिए ऐसा कहने का प्रयास करने दीजिए।

यह अभ्यास वाक्पटुतापूर्ण नहीं है। मैंने स्वयं को, इस जिज्ञासा के वर्षों में, उन स्थितियों को त्यागते देखा है जिन्हें मैंने कभी विश्वासपूर्वक धारण किया था — उनमें प्रमुख श्वास-ब्रह्माण्ड समानुरूपता का शब्दशः अंक-शास्त्र, जिसे मैंने कभी प्रेरक पाया और अब एक आदर्शिकरण मानता हूँ जो मापन में नहीं टिकता। मैं इसका उल्लेख करता हूँ क्योंकि यह इसका प्रमाण है कि मेरा मन वस्तुतः बदलता है जब विचार उसे न्यायसंगत ठहराते हैं, और कि निम्नलिखित सूची इस विश्वास में प्रस्तुत की गई कोई सुरक्षित गीदड़भभकी नहीं है कि दशाएँ कभी पूरी न होंगी। उनमें से कुछ, छोटे ढंगों से, पहले ही पूरी हो चुकी हैं, और मैंने तदनुसार संशोधन किया है।

*
**

परख्य परत

वैज्ञानिक दावों से आरम्भ कीजिए, जो निर्दिष्ट करने में सबसे सरल हैं। मैं इस दावे को त्याग दूँगा कि धीमी श्वास मापनीय शारीरिक संगति प्रेरित करती है यदि भली-भाँति संचालित अध्ययन सुसंगति से प्रभाव पाने में विफल रहें — यदि हृदय-गति परिवर्तनशीलता न बढ़े, यदि लयें समकालित न हों, यदि स्वायत्त चिह्नक न बदलें। मैं इस दावे को त्याग दूँगा कि दीर्घकालिक विसरेखण एक मापनीय शारीरिक मूल्य वहन करता है यदि अपस्थापन-भार के चिह्नक सतत तनाव से असम्बद्ध सिद्ध हों। मैं बोध के पूर्वानुमानी-संसाधन पठन को त्याग दूँगा यदि उसके पीछे का प्रायोगिक कार्यक्रम ढह जाए, जैसे युवा ढाँचे कभी-कभी ढहते हैं। ये निष्क्रिय रियायतें नहीं हैं; प्रत्येक एक वास्तविक परिणाम को नाम देती है जो एक वास्तविक पीछे हटने को विवश करता। यह तथ्य कि मैं इन्हें नाम दे सकता हूँ वही है जो दावों को अब धारण करने योग्य बनाता है।

व्याख्यात्मक परत पर, मानक भिन्न है किन्तु फिर भी वास्तविक। मैं ऋत के स्वयं-संगठन के रूप में, या प्राण के व्यवस्था के प्रवाह के रूप में पठन को त्याग दूँगा यदि वे ढाँचे कार्य करना बन्द कर दें — यदि वे प्रकाशित करने से अधिक आच्छादित करते दिखाए जाएँ, समझ के बजाय उलझन उत्पन्न करते, किसी अन्य ढाँचे द्वारा प्रतिस्थापित किए जाते जो उन्हीं परिघटनाओं को अधिक निष्ठा और अधिक फलप्रदता से संगठित करता। एक ढाँचा अप्रमाणित होकर विफल नहीं होता, क्योंकि यह कोई नवीन पूर्वानुमान नहीं करता; यह अधिष्ठित होकर विफल होता है, उन्हीं तथ्यों के एक बेहतर संगठन द्वारा। मैं इन ढाँचों को सर्वोत्तम के रूप में धारण करता हूँ जो मैंने पाए हैं, अन्तिम शब्द के रूप में नहीं, और मैं इनमें से किसी को भी कल किसी ऐसे के लिए बदल दूँगा जो कार्य को बेहतर करता।

*

**

सबसे कठिन मामला

गहनतम दावे उनके लिए दशाएँ निर्दिष्ट करना सबसे कठिन हैं, और मुझे उस कठिनाई के विषय में उसे ढाँपने के बजाय ईमानदार होना चाहिए। यह दावा कि वास्तविकता का एक अन्तर्भूत व्यवस्था है, कि स्व इसकी एक अभिव्यक्ति है, कि सरेखण उसके विरुद्ध स्व-उत्पन्न घर्षण का हास है जो है — ये तृतीय-पुरुष मिथ्याकरणीय नहीं हैं, जैसा मिथ्याकरणीयता पर अध्याय ने स्वीकार किया। तब, इनके विषय में क्या मेरा मन बदलेगा? यहाँ मैं केवल परम्परा

की अपनी शर्तों में उत्तर दे सकता हूँ: सतत, अनुशासित प्रथम-पुरुष अन्वेषण जो सुसंगति से उसे पाने में विफल रहे जिसे संस्कृतियों भर के चिन्तकों ने पाया सूचित किया है। यदि गम्भीर साधक, अपने ही अनुभव को वर्षों तक कठोरता से अन्वेषण करते हुए, विश्वसनीय रूप से खोज लें कि उथल-पुथल के नीचे कोई स्थिरता नहीं, गुणों के पीछे कोई साक्षी नहीं, आसक्ति के त्याग में दुःख का कोई हास नहीं — यदि प्रथम-पुरुष प्रयोगशाला सुसंगति से एक शून्य परिणाम लौटाए — तो इस पुस्तक का अनुभवपरक मर्म खोखला होता, और मुझे ऐसा कहना पड़ता।

मेरा विश्वास नहीं कि ऐसा होगा, क्योंकि उस प्रयोगशाला का अन्तर-सांस्कृतिक अभिलेख बहुत लम्बे समय से उल्लेखनीय रूप से सुसंगत रहा है, और क्योंकि मैंने स्वयं उसमें देखा है। किन्तु मैं इसे भी खुला रखता हूँ, क्योंकि विकल्प — समस्त सम्भव खण्डन से, प्रत्यक्ष अन्वेषण के खण्डन सहित, विलगित एक दावा — ठीक वही हठधर्म होता जिससे बचने के लिए यह सम्पूर्ण भाग कार्य करता रहा है। चिन्तनपरक दावे गलत होने से सुरक्षित नहीं हैं। वे केवल एक विशेष प्रकार के परीक्षण से सुरक्षित हैं, तृतीय-पुरुष यान्त्रिक प्रकार, जबकि उस प्रथम-पुरुष परीक्षण के प्रति पूर्णतः उद्धाटित बने रहते हैं जिस पर परम्परा ने सदा आग्रह किया है। स्वयं प्रयोगशाला में प्रवेश कीजिए। यदि आप वहाँ कुछ न पाएँ, वास्तविक और धैर्यपूर्ण देखने के पश्चात्, तो आपके लिए दावा अपने उचित परीक्षण में विफल हुआ, और आपको उसे रख देना चाहिए।

**

यह, अन्ततः, वह है जो मेरा ईमानदार जिज्ञासा से अभिप्राय है, और कि क्यों यह भाग, मेरे मत में, एक गम्भीर पाठक का विश्वास अर्जित करने के प्रयोजन के लिए पुस्तक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। एक विश्वदृष्टि जो यह नहीं कह सकती कि क्या उसे पराजित करेगा, श्रद्धा माँगती है, सम्मति नहीं। मैंने सम्मति माँगने का प्रयास किया है — अनन्तिम, परखने योग्य, संशोधनीय सम्मति, उस प्रकार की जो एक वैज्ञानिक एक अच्छे सिद्धान्त को देता है और जब प्रमाण मुड़ता है तब वापस ले लेता है। मैंने प्रतिरूप-मिलान के आरोप और उसे पूरा करने वाले परीक्षणों को कहा है। मैंने 'है'-'चाहिए' अन्तराल को स्वीकार किया है और 'चाहिए' का स्थान यथासम्भव सटीक रूप से बताया है। मैंने अपने दावों को उस प्रकार के परीक्षण से छाँटा है जिसे प्रत्येक स्वीकार करता है। मैंने अपने केन्द्रीय उपकरण की सीमाओं को नाम दिया है। और अब मैंने कहा है कि क्या मेरा मन बदलेगा। यदि, यह सब कर चुकने पर, ढाँचा अब भी टिकता है,

तो यह इसलिए टिकता है, इसलिए नहीं कि मैंने उसे जाँच से सुरक्षित रखा है बल्कि इसलिए कि यह, अब तक, उसमें टिका है।

यही सब है जो कोई ईमानदार ढाँचा दावा कर सकता है, और यही है जो मैं इसके लिए दावा करता हूँ। यह नहीं कि यह निश्चित रूप से सत्य है — मैं उसका अधिकारी नहीं हूँ, और न कोई है। बल्कि यह कि इसे खुले रूप से प्रस्तुत किया गया है, इसके जोड़ उघाड़े हुए और इसकी पराजय-दशाएँ नामित, और कि यह उस परीक्षण में टिका है जिसे मैं लागू करना जानता हूँ, उस परीक्षण सहित जो मैंने अपनी ही इच्छाओं के विरुद्ध लागू किया है। इसे उन शर्तों पर लीजिए। इसे उन शर्तों पर परखिए। और जहाँ यह उन परीक्षणों में विफल हो जिन्हें मैंने नाम दिया है, जो भी विफल हो उसे रख दीजिए, और जो भी टिके उसे रखिए। वह छानना पुस्तक के लिए कोई खतरा नहीं है। यह स्वयं के लिए पुस्तक की गहनतम आशा है — कि जो ईमानदार जाँच के पश्चात् शेष रहता है वह इतना सत्य, और इतना उपयोगी है, कि जीने योग्य हो।

"एक ऐसी स्थिति जिसका धारक यह नहीं कह सकता कि उसे कैसे पराजित किया जाए, श्रद्धा माँगती है, सम्मति नहीं। मैंने सम्मति माँगने का प्रयास किया है — अनन्तिम, परखने योग्य, संशोधनीय। मैंने प्रत्येक परत पर नाम दिया है कि क्या मेरा मन बदलेगा। यदि ढाँचा अब भी टिकता है, तो यह इसलिए टिकता है, इसलिए नहीं कि मैंने उसे जाँच से सुरक्षित रखा बल्कि इसलिए कि यह उसमें टिका। वह छानना स्वयं के लिए पुस्तक की गहनतम आशा है।"

भाग इक्कीस

ऋत व्यवहार में: संसार में संरेखण

ऋत व्यवहार में: हर पैमाने पर संरेखण		
वही व्यवस्था, एकल जीवन से सम्पूर्ण समाज तक		
व स रे ख ति	1 स्व	नैता संरेखण को परिणामकारी बनाया छोटी गई अवधि सच्चा बोध करने देती है और ऐसी दशाएँ रचती है जहाँ अन्य संरेखित होते हैं।
	2 संगठन	संगठन एक राजीव तन्त्र संसाधनों की नदी में एक स्थिर तंत्र — अपनी वास्तविकता से संरेखित, या उससे लड़ती हुई।
	3 माज़न	अर्थव्यवस्था प्रतिगुणि और सत्य स्वयं-संगठनकारी, फिर भी वहाँ अभी जहाँ मूल्य उन वास्तविकताओं को छोड़ देता है जिन्हें वह अनुभव नहीं कर सकती।
	4 उपकरण	तकनीक महान प्रयत्नक जो भी अत्यधिक अवस्था इसे निर्दिष्ट करती है उसे प्रवर्धित करती है — स्फुटता, या गड़ी गई तुल्य।
	5 सब	समाज साझा बोध केवल तभी संरेखित होता है यदि यह वास्तविकता का साझा बोध कर सके; विद्यापन स्वयं-संशोधन को असमर्थ कर देता है।

भाग इक्कीस — संसार में संरेखण

वही व्यवस्था, एकल जीवन से सम्पूर्ण समाज तक
भाग इक्कीस — सिंहावलोकन

"एक संस्था किसी सिद्धान्त की — या
उसकी अनुपस्थिति की — लम्बी हुई छाया है।"
— संगठनों पर एक चिन्तन

मैंने तीन दशक संगठनों के भीतर बिताए हैं — उन्हें बनाते हुए, उनके भागों का नेतृत्व करते हुए, उन्हें फलते-फूलते देखते हुए और उन्हें विफल होते देखते हुए — और मैं उस अनुभव को अब प्रत्यक्ष रूप से काम में लाना चाहता हूँ, क्योंकि एक संगठन ऋत की सर्वाधिक स्पष्ट प्रयोगशालाओं में से एक है जो किसी को भी उपलब्ध है जिसके पास उसे देखने के नेत्र हैं। एक संगठन एक सजीव तन्त्र है: एक खुली संरचना जिसके माध्यम से ऊर्जा, सूचना, धन, प्रतिभा, और ध्यान निरन्तर बहते हैं। किसी भी सजीव तन्त्र की भाँति, यह या तो उस वास्तविकता से संरखित होता है जिसमें यह कार्य करता है या नहीं होता, और विसंरखण के परिणाम एक कम्पनी में उतने ही अपरिहार्य हैं जितने एक शरीर में। संरखण के विज्ञान में कुछ भी केवल व्यक्तिगत नहीं है। यह पैमाने पर बढ़ता है।

विचार कीजिए कि एक संगठन वस्तुतः क्या है, अपने चार्टों और पदनामों से रहित। यह एक प्रतिरूप है जो केवल इसलिए बना रहता है कि संसाधन उसके माध्यम से बहते हैं — ठीक उस मोमबत्ती की ज्वाला और कोशिका की भाँति जिनका हमने एन्ट्रॉपी पर अध्याय में परीक्षण किया। राजस्व, प्रतिभा, या प्रासंगिकता का प्रवाह रोकिए, और रूप विलीन हो जाता है, प्रायः स्तब्धकारी गति से। एक संगठन कोई वस्तु नहीं है; यह एक प्रक्रिया है, निवेशों और उत्पादों की एक नदी में एक स्थिर तरंग, अपनी संगति को क्षण-प्रतिक्षण बनाए रखती या खोती हुई। यह जीवविज्ञान से शिथिलता से उधार लिया गया कोई रूपक नहीं है। यह वही प्रवाह-द्वारा-बनाए-रखी-गई-व्यवस्था का सिद्धान्त है, मानव उद्यम के पैमाने पर कार्यरत।

*

**

निगम-काया में विसरेखण

एक बार जब आप किसी संगठन को इस प्रकार देख लेते हैं, तो उसके रोग विसरेखण के रूपों के रूप में सुपाठ्य हो जाते हैं, और वही नैदानिक श्रेणियाँ जो इस पुस्तक ने व्यक्तियों के लिए उपयोग की हैं विलक्षण परिशुद्धता से लागू होती हैं। आसक्ति का संगठनात्मक समतुल्य है: वह कम्पनी जो किसी वांछित परिणाम पर इतनी टिकी है — एक त्रैमासिक संख्या, एक स्टॉक मूल्य, एक संस्थापक की दृष्टि — कि वह अब अपने बाज़ार की वास्तविकता का बोध नहीं कर सकती, ठीक वही पूर्वानुमानी विकृति जिसका हमने परीक्षण किया, हजारों लोगों के पैमाने तक बढ़ाई गई जो सब एक वांछित भविष्य की सेवा के लिए अपना बोध मोड़ रहे हैं। संगठनात्मक रजस् है: वह उन्मत्त, उद्वेलित उद्यम जो सतत गति में है, आरम्भ करता, मुड़ता, पुनर्संगठित करता, स्पष्ट देखने के लिए कभी पर्याप्त स्थिर नहीं। और संगठनात्मक तमस्: वह जड़ संस्था, अपनी ही विगत सफलता से धुँधलाई, एक बदली वास्तविकता के प्रति स्वयं को जगाने में असमर्थ जब तक वास्तविकता उसे अभिभूत न कर दे।

इनमें से प्रत्येक आने वाले प्रमाण के विरुद्ध एक प्रतिमान को अद्यतन करने की विफलता है — वही बन्द बोधात्मक चक्र जो व्यक्तिगत दुःख उत्पन्न करता है, अब एक सामूहिक में मूर्त। वह कम्पनी जिसने उस तकनीक की उपेक्षा की जो उसे नष्ट कर देती, उसके पास आँकड़ों का अभाव नहीं था; आँकड़े वहाँ थे, प्रायः भीतर प्रस्तुत किए गए और खारिज किए गए। उसके पास जिसका अभाव था वह थी वास्तविकता को अपना प्रतिमान सुधारने देने की तत्परता, क्योंकि प्रतिमान पहचान बन गया था, और जो लोग उसकी रक्षा कर रहे थे वे स्वयं की रक्षा कर रहे थे। संगठनात्मक विसरेखण व्यक्तिगत विसरेखण है, समुचित और संस्थागत, संरचना और प्रोत्साहन द्वारा टिकाऊ बनाया गया ताकि किसी एक व्यक्ति को उसे धारण करने की आवश्यकता न हो और फिर भी समग्र उसके द्वारा अधिकृत हो जाए।

**

संरखित संगठन भिन्न रूप से क्या करता है

इसके विपरीत, संरखित संगठन ने सजगता की सुधारक शक्ति को अपनी ही संरचना में बना लिया है। ऐसा नहीं कि उसके लोग अधिक सद्गुणी हैं; ऐसा है कि तन्त्र वास्तविकता का सटीक बोध करते रहने और उस बोध को सुविधाजनक प्रतिमान का अतिक्रमण करने देने के लिए अभिकल्पित है। यह, सोद्देश्य रूप से, उन माध्यमों को बनाए रखता है जिनसे

असुविधाजनक सत्य निर्णय तक पहुँचता है — संगठनात्मक पैमाने पर, उस समस्थापक प्रतिपुष्टि का समतुल्य जो एक शरीर को अपना ही विचलन भाँपते रखती है। यह विफलता को छिपाई जाने वाली किसी वस्तु के बजाय प्रतिपुष्टि के रूप में मानता है, ठीक वैसे ही जैसे विफलता पर अध्याय ने तर्क किया कि सरेखित व्यक्ति को मानना चाहिए। यह अपनी रणनीति को वैसे धारण करता है जैसे स्थितप्रज्ञ एक योजना धारण करता है: पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ और उस आसक्ति के बिना जो वास्तविकता के बोलने पर संशोधन को रोकती है।

और यह, अपने सर्वोत्तम रूप में, एक प्रकार का संगठनात्मक निष्काम कर्म करता है — पूर्ण कौशल और देखभाल के साथ कर्म करना जबकि परिणामों को इतने हल्के से धारण करना कि परिस्थिति का सच्चा बोध हो सके। यह उस संस्कृति को विरोधाभासी लगता है जो अविराम परिणाम-केन्द्रण की पूजा करती है, किन्तु वस्तुओं को बनाने का अनुभव इसे ठीक-ठीक सिद्ध करता है: वह दल जो किसी लक्ष्य का अपनी पकड़ में गला घोटता है उससे बुरा निष्पादन करता है जो उस कार्य में पूर्णतः लीन है जो क्षण वस्तुतः माँगता है। मैंने दोनों को, अनेक बार देखा है। सरेखित संगठन परिणामों को हल्के से धारण करने के बावजूद नहीं बल्कि उसके कारण प्रभावी है, क्योंकि केवल अनासक्त संस्था ही अपनी वास्तविकता का इतना स्पष्ट बोध करती है कि उसके भीतर सम्यक् रूप से कर्म कर सके। वह सिद्धान्त जो एक व्यक्ति को मुक्त करता है एक उद्यम को मुक्त करता है, उसी यान्त्रिक कारण से।

मैं यहाँ कोई प्रबन्धन-तकनीक प्रस्तुत नहीं कर रहा, और मैं इस विषय में सावधान रहना चाहता हूँ, क्योंकि यह ठीक वह क्षेत्र है जहाँ सरेखण की प्रज्ञा एक उत्पादकता-युक्ति में खोखली की जाती है। बात यह नहीं कि सरेखण उच्चतर लाभ का एक चतुर मार्ग है, यद्यपि सरेखित संगठन टिकने की प्रवृत्ति रखते हैं। बात गहनतर है: कि एक संगठन ऋत की एक वास्तविक अभिव्यक्ति है या उसके विरुद्ध एक वास्तविक युद्ध, कि वही व्यवस्था एक कम्पनी की संगति का शासन करती है जो एक कोशिका या एक मन की संगति का शासन करती है, और कि जो लोग संगठनों का नेतृत्व करते हैं वे, चाहे वे यह जानें या न जानें, एक ऐसे पैमाने पर सरेखण का अभ्यास कर रहे हैं या उसके विपरीत का जो अनेक जीवनों को छूता है। एक संगठन का भली-भाँति नेतृत्व करना एक सजीव तन्त्र के वास्तविकता के साथ सम्बन्ध की देखभाल करना है — अर्थात्, यह धर्म है, उस एक स्थान पर अभ्यासित जहाँ हममें से अधिकांश अपने जाग्रत जीवन का अधिकांश बिताते हैं।

"एक संगठन एक सजीव तन्त्र है — संसाधनों की एक नदी में एक स्थिर तरंग, वास्तविकता से संरेखित होती या उससे लड़ती हुई। उसके रोग पैमाने पर बढ़ा हुआ विसंरेखण हैं: आसक्ति, उद्वेलन, जड़ता, वह बन्द चक्र जो प्रमाण के विरुद्ध अद्यतन नहीं होगा। एक का भली-भाँति नेतृत्व करना धर्म है, वहाँ अभ्यासित जहाँ हममें से अधिकांश अपना जाग्रत जीवन बिताते हैं।"

संरचित अर्थव्यवस्था

"एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो यह नहीं देख सकती कि उसका क्या मूल्य चुकता है,
एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो देख ही नहीं सकती।"

— मूल्य पर एक चिन्तन

यदि एक संगठन एक सजीव तन्त्र है, तो एक अर्थव्यवस्था उनका एक पारितन्त्र है — विनिमय का एक विशाल, स्वयं-संगठनकारी जाल, व्यवस्था के उस प्रवाह की सबसे बड़ी मानवीय अभिव्यक्ति जिसका हम अनुरेखण करते रहे हैं। और किसी भी जटिल तन्त्र की भाँति, एक अर्थव्यवस्था उस वास्तविकता से अधिक या कम संरचित हो सकती है जिसके भीतर यह कार्य करती है। यह पिछले अध्याय से लिखने में अधिक नाज़ुक अध्याय है, क्योंकि अर्थशास्त्र विवादित भूमि है जहाँ विवेकशील लोग गहराई से विरोधी विचार रखते हैं, और मेरा कोई राजनीतिक कार्यक्रम आगे बढ़ाने का अभिप्राय नहीं। मेरा अभिप्राय कुछ संकीर्णतर और, मुझे आशा है, अधिक व्यापक रूप से स्वीकार्य है: यह दिखाना कि ऋत का झरोखा इस विषय में क्या प्रकट करता है कि आर्थिक विसंरक्षण कहाँ बैठता है, किसी की राजनीति का विचार किए बिना।

इससे आरम्भ कीजिए कि एक अर्थव्यवस्था क्या भली-भाँति करती है, क्योंकि स्वयं-संगठन का झरोखा बाज़ारों को सच्चा श्रेय देता है जिसे रोका नहीं जाना चाहिए। एक बाज़ार मानवता के उद्भूत व्यवस्था के सर्वाधिक शक्तिशाली उदाहरणों में से एक है — स्तब्धकारी जटिलता का एक समन्वय जो बिना किसी केन्द्रीय योजनाकार के उठता है, उस ढंग से जैसे तारकपक्षी-झुण्ड बिना किसी नेता के उठता है। कोई किसी नगर को रोटी की आपूर्ति अभिकल्पित नहीं करता; यह सरल सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले असंख्य स्थानीय विनिमयों से उद्भूत होती है, और यह एक ऐसी विश्वसनीयता से काम करती है जो किसी को भी विस्मित कर देती है जो उस पर विचार करने के लिए ठहरता है। यह मानव विनिमय के

माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करता ऋत है: सेनापति के बिना व्यवस्था, स्थानीय अन्योन्यक्रिया से संगति। बाजारों को थोक रूप में तुच्छ समझना इस विषय में कुछ वास्तविक से चूकना है कि वितरित व्यवस्था कैसे बनती है, और इस पुस्तक के झरोखे को किसी को उन्हें खारिज करने में धीमा बनाना चाहिए, तीव्र नहीं।

**

जहाँ संकेत टूटा है

किन्तु एक स्वयं-संगठनकारी तन्त्र वास्तविकता से केवल उस मात्रा तक संरेखित होता है जिस मात्रा तक उसके प्रतिपुष्टि-संकेत सच्ची सूचना वहन करते हैं, और यही ठीक वह है जहाँ आर्थिक विसंरेखण प्रवेश करता है। हमने शरीर में देखा कि समस्थापन इसलिए काम करता है कि तन्त्र अपना ही विचलन सटीक रूप से भाँपता है; प्रतिपुष्टि तोड़िए, और स्वयं-संशोधन विफल हो जाता है। एक अर्थव्यवस्था की प्रतिपुष्टि मूल्य है, और मूल्य तन्त्र को वास्तविकता से केवल उस सीमा तक संरेखित करता है जिस सीमा तक यह वास्तविक लागतों और वास्तविक मूल्य को प्रतिबिम्बित करता है। जहाँ मूल्य एक वास्तविक लागत को छोड़ देता है — जहाँ किसी सर्वजन-सम्पत्ति, एक पर्यावरण, एक भावी पीढ़ी को पहुँचाई गई क्षति किसी ऐसे संकेत में दर्ज नहीं होती जिसे तन्त्र अनुभव कर सके — तो तन्त्र, इस पुस्तक के परिशुद्ध अर्थ में, मिथ्या बोध कर रहा है। यह एक विशाल बुद्धिमत्ता है जो अपनी ही परिस्थिति के एक विकृत प्रतिमान पर कर्म कर रही है, और यह विश्वासपूर्वक उन परिणामों की ओर अनुकूलन करेगी जिन्हें इसके टूटे उपकरण इसे विपदाकारी नहीं दिखा सकते।

यह संरेखण के विज्ञान का गहनतम आर्थिक अनुप्रयोग है, और यह उल्लेखनीय है कि व्यक्तिगत निदान कितना ठीक-ठीक स्थानान्तरित होता है। विसंरेखित व्यक्ति इसलिए दुःख भोगता है कि बोध ने वास्तविकता का अनुसरण करना बन्द कर दिया है — प्रतिमान अब संसार के विरुद्ध अद्यतन नहीं होता। विसंरेखित अर्थव्यवस्था अपनी ही नींवों को क्षीण करती है क्योंकि उसके केन्द्रीय प्रतिपुष्टि-संकेत ने इसकी पूर्ण वास्तविकता का अनुसरण करना बन्द कर दिया है कि उसकी सक्रियता का क्या मूल्य चुकता है। दोनों स्थितियों में विफलता द्वेष नहीं और मूर्खता नहीं; यह एक बोध-तन्त्र है जो आंशिक रूप से अन्धा हो गया है, एक ऐसे प्रतिमान के भीतर शानदार ढंग से अनुकूलन करता हुआ जो चुपचाप वास्तविक से विचलित हो गया है। एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो उसका मूल्य निर्धारित नहीं कर सकती जो वह नष्ट करती है, एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो यह नहीं देख सकती कि वह क्या नष्ट करती है, और यह पूर्ण

विवेकशीलता के साथ खाई की ओर बढ़ती रहेगी, क्योंकि उसके उपकरण आगे स्पष्ट मार्ग सूचित करते हैं।

*

**

संरेखण, विचारधारा नहीं

मैं, दृढ़ता से, इसे एक पक्षपातपूर्ण नुस्खे में बदलने के प्रलोभन का प्रतिरोध करना चाहता हूँ, क्योंकि ऋत का झरोखा कोई नहीं देता और यह स्वाँग करना मेरा अतिरिक्त होता कि देता है। जो लोग पूर्णतः सहमत हैं कि आर्थिक प्रतिपुष्टि टूटी है, वे उपचार के विषय में गहराई से असहमत हैं, और वे असहमतियाँ मूल्यों और अनुभवजन्य निर्णयों पर मुड़ती हैं जिन्हें सुलझाने का इस पुस्तक के पास कोई विशेष अधिकार नहीं। संरेखण का झरोखा जो प्रस्तुत करता है वह उत्तर नहीं बल्कि नैदानिक ढाँचा है: कि एक अर्थव्यवस्था का स्वास्थ्य, किसी भी सजीव तन्त्र के स्वास्थ्य की भाँति, उसकी प्रतिपुष्टि की अखण्डता पर निर्भर है — इस पर कि क्या उसके संकेत उसकी वास्तविक परिस्थिति के विषय में सच्ची सूचना वहन करते हैं, उन लागतों सहित जिन्हें वह वर्तमान में बाह्यकृत करती है और अनुभव नहीं कर सकती। कोई भी उपचार, किसी भी ओर से, उस मानक से आँका जा सकता है: क्या यह तन्त्र को अपनी वास्तविकता का अधिक सच्चा बोध कराता है, या कम?

और एक और आयाम है जो झरोखा प्रकट करता है, एक जिससे मूल्यों और संकेतों के विषय में तकनीकी वाद-विवाद में चूकना सरल है। एक अर्थव्यवस्था केवल एक तन्त्र नहीं है; यह उन लोगों की सामूहिक आन्तरिक अवस्था की एक अभिव्यक्ति है जो उसका गठन करते हैं। आसक्ति से संचालित एक अर्थव्यवस्था — उस अन्तहीन, चिन्तित संचय से जिसे गीता ने उथल-पुथल के मूल के रूप में नाम दिया — पैमाने पर आसक्ति प्रकट करेगी: निष्कर्षण, अदूरदर्शिता, पर्याप्त में विश्राम करने की अक्षमता। सन्तोष पर, सन्तुष्टि के संरेखण पर अध्याय, केवल व्यक्तिगत सलाह नहीं थी; इसने उस आन्तरिक दशा का वर्णन किया जिसकी अनुपस्थिति, लाखों भर गुणित, एक ऐसी अर्थव्यवस्था उत्पन्न करती है जो उपभोग करना बन्द नहीं कर सकती क्योंकि उसमें के लोग चाहना बन्द नहीं कर सकते। आर्थिक विसंरेखण, आंशिक रूप से, समुचित व्यक्तिगत विसंरेखण है — एक अरब अशासित तृष्णाओं का घर्षण, एक ऐसे तन्त्र के रूप में अभिव्यक्त जो यह पूछ पाने में असमर्थ होते हुए बढ़ता है कि वृद्धि किसलिए है।

अतः संरेखित अर्थव्यवस्था किसी विशेष विचारधारा का स्वर्गलोक नहीं है। यह, इस पुस्तक की भाषा में, एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसकी प्रतिपुष्टि उसे उसकी अपनी परिस्थिति के विषय में सत्य बताती है, एक ऐसी संस्कृति में अन्तःस्थापित जिसके लोग केवल उस आसक्ति से संचालित नहीं हैं जो बोध और मूल्य दोनों को विकृत करती है। यह एक ऊँचा और सम्भवतः दूरस्थ मानक है, और मैं उस तक पहुँचने का कोई कार्यक्रम दावा नहीं करता। किन्तु मानक को सही रूप से नाम देना महत्त्व रखता है, क्योंकि एक तन्त्र, एक व्यक्ति की भाँति, एक ऐसी वास्तविकता से संरेखित नहीं हो सकता जिसे उसने न देखने के लिए व्यवस्थित किया है। पहला कार्य, यहाँ जैसे इस पुस्तक में हर जगह, सच्चा देखना है — और एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसने स्वयं को अपनी ही लागतों के प्रति अन्धा कर लिया है, ठीक उस पहले चरण में विफल हुई है जिससे समस्त संरक्षण, व्यक्तिगत या सामूहिक, को आरम्भ होना चाहिए।

"एक बाजार वास्तविक उद्भूत व्यवस्था है — सेनापति के बिना संगति। किन्तु एक स्वयं-संगठनकारी तन्त्र वास्तविकता से केवल तभी संरेखित होता है यदि उसकी प्रतिपुष्टि सच्ची सूचना वहन करे। एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो उसका मूल्य निर्धारित नहीं कर सकती जो वह नष्ट करती है, यह नहीं देख सकती कि वह क्या नष्ट करती है, और विश्वासपूर्वक विपदा की ओर अनुकूलन करेगी। पहला कार्य, यहाँ जैसे हर जगह, सच्चा देखना है।"

अध्याय छियानवे

प्रौद्योगिकी और विसरेखण का युग

*"हम अपने उपकरणों को आकार देते हैं, और
उसके पश्चात् हमारे उपकरण हमें आकार देते हैं।"*

— प्रायः मार्शल मक्लूहान को आरोपित

मैंने अपना कार्यशील जीवन तकनीक में बिताया है, जिसमें रोबोटिकी और वे तन्त्र सम्मिलित हैं जो अब संसार को पुनः आकार दे रहे हैं, और इसलिए यह अध्याय वह है जिसे मैं सर्वाधिक प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ और, मैं स्वीकार करूँगा, सर्वाधिक चिन्ता के साथ लिखता हूँ। तकनीक मानव दशा का महान प्रवर्धक है: यह जो भी आन्तरिक अवस्था इसे निर्देशित करती है उसे प्रवर्धित करती है। सरेखित ध्यान, तकनीक द्वारा प्रवर्धित, असाधारण सामर्थ्य बन जाता है। आसक्ति, विकर्षण, और विसरेखण, उसी तकनीक द्वारा प्रवर्धित, असाधारण पीड़ा बन जाते हैं। हम मानव इतिहास के सर्वाधिक शक्तिशाली प्रवर्धन भर जी रहे हैं, और क्या यह सरेखण की सेवा करता है या विसरेखण को गहरा करता है, यह, मेरा विश्वास है, युग का केन्द्रीय व्यावहारिक प्रश्न है।

पहले विचार कीजिए कि अधिकांश समकालीन तकनीक वस्तुतः किसके लिए अनुकूलित है, स्पष्ट रूप से कहा गया। जिस डिजिटल परिवेश में अधिकांश लोग अब निवास करते हैं उसका एक बड़ा भाग ध्यान को पकड़ने और थामने के लिए अभियान्त्रित है, क्योंकि ध्यान वह है जिसका यह मुद्रीकरण करता है। और ध्यान, जैसा ध्यान, समय, और ऊर्जा पर अध्याय ने तर्क किया, ठीक वह संकाय है जिससे मनुष्य वास्तविकता के साथ सरेखित होता है — सुधारक शक्ति, सजगता का उपकरण, वह वस्तु जिसकी स्थिरता स्पष्ट बोध को सम्भव बनाती है। हमने, सभ्यतागत पैमाने पर, एक ऐसा तन्त्र बनाया है जिसका व्यापार-प्रतिमान उस एक संकाय का विखण्डन है जिस पर सरेखण सर्वाधिक निर्भर है। यह कोई षड्यन्त्र नहीं है; यह प्रोत्साहनों का एक उद्भूत परिणाम है, ध्यान-अर्थव्यवस्था का तारकपक्षी-झुण्ड एक ऐसे

प्रतिरूप की ओर घूमता हुआ जिसे किसी एक कर्ता ने अभिकल्पित नहीं किया। किन्तु इसका प्रभाव धर्म की भूमि का व्यवस्थित क्षरण है।

*

**

आक्रमण के अधीन पूर्वानुमानी मन

क्रियाविधि को परिशुद्ध बनाना सार्थक है, क्योंकि यह सीधे इस पुस्तक के विज्ञान से जुड़ती है। हमने देखा कि बोध पूर्वानुमानी है — कि मन एक प्रतिमान उत्पन्न करता है और उसे आने वाले प्रमाण के विरुद्ध अद्यतन करता है, और कि संरेखण वास्तविकता को प्रतिमान सुधारते रहने देने की तत्परता है। एक भली-भाँति कार्यरत ध्यान वह है जो सुधार को घटित होने देता है: आपको वास्तविकता के साथ इतने लम्बे समय तक विश्राम करने में समर्थ होना चाहिए कि लक्षित कर सकें कि आपका पूर्वानुमान कहाँ गलत था। सतत व्यवधान का अभियान्त्रित परिवेश इस सामर्थ्य पर उसके मूल में आक्रमण करता है। एक दिन में एक हजार बार स्विच किया गया मन, किसी वस्तु पर इतने लम्बे समय तक कभी विश्राम न करता कि पूर्वानुमान-त्रुटि दर्ज हो, अद्यतन करने का सामर्थ्य ही खो देता है — किसी एक नाटकीय हानि के माध्यम से नहीं, बल्कि उस स्थिरता के स्थिर क्षरण के माध्यम से जिसमें सुधार घटित होता है। हम, एक वास्तविक अर्थ में, ऐसी मशीनें बना रहे हैं जो वास्तविकता का सटीक बोध करने के हमारे सामूहिक सामर्थ्य को क्षीण करती हैं, और इसे संलग्नता कह रहे हैं।

और आसक्ति की गहनतर परत है। वही तन्त्र चाहना उद्दीप्त करने के लिए सधे हैं — अगली सूचना-संकेत, अगली तुलना, अधूरेपन की अगली छोटी चोट जो ध्यान को एक तृष्णित भविष्य में आगे खींचती है। यह रजस् है, औद्योगिक पैमाने पर गढ़ा और दिया गया, वह उद्वेलन जिसे स्थितप्रज्ञ अतिक्रमित करता है अब सोद्देश्य रूप से एक उत्पाद के रूप में उत्पादित। परिणाम एक ऐसी जनसंख्या है जो निम्न-कोटि के सतत तृष्णा और विखण्डित ध्यान की अवस्था में रखी गई है, अर्थात्, एक ऐसी जनसंख्या जो ठीक उस दशा में अभियान्त्रित की गई है जिसे इस सम्पूर्ण पुस्तक ने विसंरेखण के रूप में पहचाना है। वे पीड़ाएँ जिन्हें छोड़ना सीखने में परम्परा ने सहस्राब्दियाँ बिताईं, अब अब तक बनाए गए सर्वाधिक परिष्कृत तन्त्रों द्वारा सक्रिय रूप से विकसित की जाती हैं, क्योंकि पीड़ित अवस्था लाभप्रद है।

*

**

आने वाला प्रवर्धन

मैं यह तब लिखता हूँ जब तन्त्र कहीं अधिक शक्तिशाली होते जा रहे हैं, और मैं यह जानने का स्वाँग नहीं करूँगा कि यह कैसे सुलझता है; जो कोई इस विषय में निश्चितता का दावा करता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता कहाँ ले जाती है वह अति-दावा कर रहा है, और इस पुस्तक ने न करने का कठिन प्रयास किया है। किन्तु सरेखण का झरोखा दाँव को स्पष्ट करता है, और इतना मैं साहस करूँगा। एक ऐसी तकनीक जो मानव सामर्थ्य को प्रवर्धित करती है स्वयं में न सरेखित है न विसरेखित; यह उस मंशा का चिह्न लेती है जो इसे निर्देशित करती है। वही प्रवर्धक जो ध्यान को बिखेर सकता था, भिन्न रूप से लक्षित किया गया, उसकी रक्षा और उसे पुनर्स्थापित कर सकता था। वही तन्त्र जो तृष्णा गढ़ते हैं, भिन्न रूप से अभिकल्पित किए गए, उस स्थिरता और स्पष्टता का संपोषण कर सकते थे जिसकी सरेखण को आवश्यकता होती है। तकनीक में कुछ भी यह आदेश नहीं देता कि कौन-सा; आदेश उनकी आन्तरिक अवस्था से आता है जो इसे बनाते और लागू करते हैं, और उन मूल्यों से जो, सोद्देश्य रूप से या स्वतःमान्य रूप से, उसमें अन्तःस्थापित हैं जिसे अनुकूलित किया जाता है।

यही कारण है कि इस पुस्तक द्वारा वर्णित आन्तरिक कार्य तकनीकी संसार से कोई प्रत्याहरण नहीं बल्कि, उत्तरोत्तर, अपने संकायों को अक्षुण्ण रखते हुए उसमें जीवित रहने की पूर्वशर्त है। जिस व्यक्ति का ध्यान प्रशिक्षित है, जिसकी आसक्ति शासित है, जिसका बोध वास्तविकता के विरुद्ध सुधरता रहता है, वह इन शक्तिशाली उपकरणों का उनके द्वारा उपयोग किए बिना उपयोग कर सकता है — प्रवर्धक को उठाकर लक्षित कर सकता है, लक्षित किए जाने के बजाय। उस आन्तरिक भूमि के बिना व्यक्ति, अधिकाधिक, केवल उन तन्त्रों के लिए कच्चा माल है जो ठीक उन्हीं संकायों को पकड़ने के लिए अभिकल्पित हैं जिन्हें शासित करना उसने कभी नहीं सीखा। श्वास, स्थिर किया गया ध्यान, छोड़ी गई आसक्ति — ये सदा मूल्यवान् थीं। विसरेखण के औद्योगिक-पैमाने के प्रवर्धन के युग में, ये अनिवार्य के निकट कुछ बन जाती हैं, अब तक बनाए गए सर्वाधिक शक्तिशाली उपकरणों को चलाने और उनके द्वारा चलाए जाने के बीच का अन्तर।

मैं प्रत्याहरण की सलाह नहीं देता; मैंने ये तन्त्र बनाए हैं और मैं उनकी सम्भावना में विश्वास करता हूँ। मैं प्रत्याहरण के विपरीत की सलाह देता हूँ: एक ऐसे आन्तरिक सरेखण का सोद्देश्य संवर्धन जो प्रवर्धन का सचेत रूप से सामना करने के लिए पर्याप्त सुदृढ़ हो। युग को तकनीक से भागते अधिक लोगों की आवश्यकता नहीं, और इसे उससे ग्रसे अधिक लोगों की

आवश्यकता नहीं। इसे इतने संरेखित लोगों की आवश्यकता है कि उसे लक्षित कर सकें — यह सुनिश्चित करने के लिए कि मानव इतिहास का सबसे बड़ा प्रवर्धक तृष्णा के बजाय स्पष्टता, विकर्षण के बजाय बोध, उसके विपरीत के बजाय संरेखण को प्रवर्धित करे। यही कार्य है, और तकनीक ने केवल इसके दाँव बढ़ाए हैं। उपकरण हमें आकार देंगे, जैसा उद्धरण चेतावनी देता है, जब तक हमने पहले वह आन्तरिक कार्य न कर लिया हो जो हमें उन्हें आकार देने देता है।

"तकनीक जो भी आन्तरिक अवस्था इसे निर्देशित करती है उसे प्रवर्धित करती है। हमने, सभ्यतागत पैमाने पर, ध्यान को विखण्डित करने और तृष्णा गढ़ने के लिए अनुकूलित तन्त्र बनाए हैं — एक उत्पाद के रूप में विसंरेखण। आन्तरिक कार्य अब इस संसार से कोई प्रत्याहरण नहीं बल्कि उसका सामना करने की पूर्वशर्त है: प्रवर्धक को लक्षित करने और उसके द्वारा लक्षित किए जाने के बीच का अन्तर।"

अध्याय सत्तानवे

संरक्षित समाज

"एक समाज अपने संरक्षकों का योग और अपने विसंरक्षकों की छाया है।"

— सामूहिक पर एक चिन्तन

हम सबसे बड़े पैमाने पर आते हैं: स्वयं समाज, सम्पूर्ण मानव सामूहिक जिसे वास्तविकता के साथ संरक्षण खोजते या उसे खोजने में विफल होते एक तन्त्र के रूप में माना जाए। यह वह पैमाना है जिस पर दाँव सर्वाधिक ऊँचे हैं और जिस पर मुझे सर्वाधिक सावधान रहना चाहिए, क्योंकि इस विषय में भव्य दावों ने कि समाज को कैसे संगठित होना चाहिए, अपार हानि की है, और ऋतु का झरोखा कोई खाका अधिकृत नहीं करता। जो यह प्रस्तुत करता है, पुनः, वह कोई कार्यक्रम नहीं बल्कि एक निदान है — इस विषय में एक देखने का ढंग कि सामूहिक विसंरक्षण कहाँ बैठता है और सामूहिक संरक्षण को किसकी आवश्यकता होगी, साधनों के विवादित प्रश्न को उस राजनीतिक प्रक्रिया पर छोड़ते हुए जहाँ यह सम्बद्ध है।

एक समाज, एक अर्थव्यवस्था की भाँति, एक विशाल स्वयं-संगठनकारी तन्त्र है, और हम पहले ही स्थापित कर चुके हैं कि ऐसे तन्त्र वास्तविकता से केवल उस सीमा तक संरक्षित होते हैं जिस सीमा तक उनकी प्रतिपुष्टि सच्ची सूचना वहन करती है। समाज के पैमाने पर, प्रतिपुष्टि में केवल मूल्य ही नहीं बल्कि स्वयं सत्य सम्मिलित है — साझा वास्तविकता का सटीक बोध करने, यह दर्ज करने कि वस्तुतः क्या घटित हो रहा है, सामूहिक समझ को सामूहिक प्रमाण के विरुद्ध अद्यतन करने का सामूहिक सामर्थ्य। एक समाज का बोध-तन्त्र उसकी ज्ञान और विमर्श की संस्थाएँ हैं: उसका विज्ञान, उसकी पत्रकारिता, उसके न्यायालय, उसके वे साधन जिनसे यह भेद किया जाए कि क्या है उससे जो केवल प्रतिपादित है। जब ये कार्य करती हैं, तो समाज अपनी ही परिस्थिति का बोध कर और सुधार कर सकता है। जब वे क्षीण होती हैं, तो समाज ठीक उस ढंग से अन्धा हो जाता है जिस ढंग से एक व्यक्ति अन्धा हो जाता है

जब बोध वास्तविकता का अनुसरण करना बन्द कर देता है — एक ऐसे प्रतिमान पर विश्वासपूर्वक कर्म करता हुआ जो संसार से विचलित हो गया है।

**

साझा वास्तविकता का विखण्डन

हमारे क्षण का सबसे गम्भीर सामूहिक विसरेखण, इस झरोखे से देखा गया, स्वयं साझा बोध का विखण्डन है — वह दशा जिसमें एक समाज इस पर सहमत होने का अपना साझा सामर्थ्य खो देता है कि क्या वास्तविक है, पृथक् बोधात्मक संसारों में विभाजित होता हुआ प्रत्येक दूसरों के प्रमाण के प्रति अभेद्य। यह विसरेखित व्यक्ति का बन्द पूर्वानुमानी चक्र है, एक सभ्यता के पैमाने तक उठाया गया: ऐसे समुदाय जो अब खण्डन करने वाली वास्तविकता के विरुद्ध अपना प्रतिमान अद्यतन नहीं करते क्योंकि खण्डन करने वाली वास्तविकता अब उन तक नहीं पहुँचती, या उन तक पहले से ही बदनाम पहुँचती है। इस दशा में एक समाज स्वयं को सुधार नहीं सकता, क्योंकि स्वयं-संशोधन के लिए उस विचलन का एक साझा बोध आवश्यक है जिसे सुधारा जाना है, और वह साझा बोध ठीक वही है जो विदीर्ण हो गया है। यह सर्वाधिक खतरनाक प्रकार का विसरेखण है, क्योंकि यह ठीक उस संकाय को असमर्थ कर देता है जिससे विसरेखण का पता लगाया और उसकी मरम्मत की जाती है।

मैं इसे सोद्देश्य रूप से तकनीक पर अध्याय से जोड़ता हूँ, क्योंकि दोनों पृथक् नहीं हैं। वही तन्त्र जो व्यक्तिगत ध्यान को विखण्डित करते हैं सामूहिक बोध को भी विखण्डित करते हैं, लोगों को सत्य के बजाय संलग्नता के लिए अनुकूलित पृथक् वास्तविकताओं में छाँटते हुए। व्यक्ति के स्पष्ट बोध करने के सामर्थ्य का क्षरण और समाज के साझे रूप में बोध करने के सामर्थ्य का क्षरण भिन्न पैमानों पर एक ही प्रक्रिया है — विसरेखण की एक व्यवस्था, स्वयं को एक मन में और एक राज्य-काया में एक साथ अभिव्यक्त करती हुई। यही कारण है कि आन्तरिक कार्य और सभ्यतागत दाँव, जैसा वे प्रतीत हो सकते हैं, भिन्न विषय नहीं हैं। एक समाज बोध करने वाले मनो से गठित है, और एक सभ्यता जिसने अपने सदस्यों के बोध को क्षीण किया है उसने स्वयं को जानने का अपना ही सामर्थ्य क्षीण किया है।

**

सामूहिक संरक्षण को किसकी आवश्यकता होगी

तब, एक संरक्षित समाज को किसकी आवश्यकता होगी? नहीं, मेरा विचार है, ऊपर से आरोपित कोई विशेष तन्त्र; स्वयं-संगठन का झरोखा हमें उस योजनाकार के प्रति गहराई से सन्देही बनाना चाहिए जो आदेश से एक समाज को संरक्षित करने का दावा करता है, क्योंकि यह ठीक आरोपित व्यवस्था को उस अन्तर्भूत, उद्भूत प्रकार के लिए गलत समझना है जो ऋत वस्तुतः है। एक संरक्षित समाज वह होगा जिसकी दशाएँ संरक्षण को उभरने दें — एक ऐसा जो अपने साझे बोध की अखण्डता की रक्षा करता है, जो उन माध्यमों को खुला रखता है जिनसे असुविधाजनक सत्य सामूहिक निर्णय तक पहुँचता है, जो साझी वास्तविकता के विखण्डन का प्रतिरोध करता है, और जो ऐसे व्यक्तियों से गठित है जिनका अपना आन्तरिक संरक्षण उन्हें उस स्थिरता, उस सत्यता, और उस छोड़ी गई आसक्ति में समर्थ बनाता है जिसकी सामूहिक संगति को आवश्यकता होती है। समाज नीचे से ऊपर की ओर संरक्षित होता है, जैसे झुण्ड पक्षियों के स्थानीय आचरण से संगत होता है, या वह संरक्षित होता ही नहीं।

और यह सम्पूर्ण पुस्तक को उसके शान्त, पुनरावर्ती आग्रह की ओर लौटाता है, जो मैंने पहले किया है और यहाँ सबसे बड़े पैमाने पर पुनः करता हूँ क्योंकि यह सम्पूर्ण कार्य का भार-वहन करने वाला दावा है: कि सामूहिक व्यक्तियों से गठित है, और कि समग्र का कोई संरक्षण नहीं है जो उसके भागों के संरक्षण से होकर न गुजरे। आसक्त, विकर्षित, बोधात्मक रूप से विखण्डित व्यक्तियों का एक समाज अपनी संस्थाओं की किसी भी चतुर व्यवस्था से संरक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि संस्थाएँ उन्हीं व्यक्तियों द्वारा संचालित और टिकाई जाती हैं। संरक्षण की ओर बढ़ता एक समाज वह है जिसमें अधिकाधिक व्यक्ति स्वयं उसकी ओर बढ़ रहे हैं — अधिक सच्चा बोध करते, कम आसक्त होते, साझी वास्तविकता को साझे रूप में धारण करने में समर्थ। सभ्यतागत पैमाना वास्तविक है, और उस पर दाँव सर्वाधिक ऊँचे हैं जो हैं। किन्तु लीवर, जैसा यह इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर रहा है, व्यक्ति है, और कार्य आरम्भ होता है, जैसा यह सदा हुआ है, एक अकेले व्यक्ति के देखना सीखने से।

मैं इस विषय में कोई भविष्यवाणी नहीं करता कि क्या हमारा समाज संरक्षित होगा या और विखण्डित होगा; मैं नहीं जानता, और जो कोई दावा करता है वह कुछ बेच रहा है। जो मैं प्रस्तुत करता हूँ वह यह पहचान है कि प्रश्न इस पुस्तक द्वारा वर्णित आन्तरिक कार्य से पृथक् नहीं बल्कि उससे सतत है — कि वही व्यवस्था जिससे हम एक अकेली श्वास में संरक्षित होते हैं वही व्यवस्था है जिससे एक सभ्यता संरक्षित होती या विफल होती है, और कि सबसे बड़े

संरेखण का मार्ग, बिना अपवाद के, सबसे छोटे से होकर जाता है। संरेखित समाज बनाया नहीं जाता। यह उभरता है, व्यक्ति-दर-व्यक्ति, उनके संरेखण से जो उसका गठन करते हैं। वह धीमा है, और अनिश्चित, और शोभाहीन। यह भी है, जहाँ तक मैं बता सकता हूँ, एकमात्र ढंग जिससे यह कभी वस्तुतः घटित हुआ है।

"एक समाज वास्तविकता से केवल उस सीमा तक संरेखित होता है जिस सीमा तक यह साझी वास्तविकता का साझा रूप में बोध कर सके — और हमारे क्षण का सबसे गम्भीर सामूहिक विसंरेखण उस साझे बोध का विखण्डन है। समग्र का कोई संरेखण नहीं है जो उसके भागों के संरेखण से होकर न गुजरे। सबसे बड़ा संरेखण, बिना अपवाद के, सबसे छोटे से होकर जाता है।"

संरक्षित उपकरण के रूप में नेता

*"सर्वोत्तम नेता वह है जिसके वहाँ होने को लोग मुश्किल से जानते हैं;
जब कार्य पूरा हो जाता है, तो वे कहते हैं: यह हमने स्वयं किया।"*

— ताओ ते चिंग के अनुसार

मैं इस भाग को नेतृत्व पर समाप्त करना चाहता हूँ, क्योंकि यह अनुप्रयुक्त ऋतु के अध्यायों को एक एकल मानवीय भूमिका में समेट लेता है, और क्योंकि यह वह अनुप्रयोग है जिसे मैंने सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप से जिया है। नेतृत्व वह है जहाँ संरक्षण अन्यो के लिए परिणामकारी बन जाता है — जहाँ एक व्यक्ति की स्पष्टता या आसक्ति, एक व्यक्ति का बोध या अन्धापन, अनेकों की दशाओं को आकार देता है। एक विसंरक्षित नेता अपने विसंरक्षण को हर उस व्यक्ति भर बढ़ा देता है जिसे वह छूता है; एक संरक्षित नेता वे दशाएँ रचता है जिनमें अन्य संरक्षित हो सकते हैं। इस पुस्तक के सम्पूर्ण विज्ञान को लागू करने के लिए इससे अधिक व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण कोई स्थान नहीं है, और कोई नहीं जहाँ इसके सिद्धान्त अधिक बार उनके विपरीत में उलट दिए जाते हैं।

उलटाव से आरम्भ कीजिए, क्योंकि यह इतना सामान्य है कि हम इसे ही नेतृत्व समझ बैठते हैं। आसक्त नेता — परिणाम की आवश्यकता रखता, श्रेय की आवश्यकता रखता, उस सत्यापन की आवश्यकता रखता जो भूमिका प्रदान करती है — अपनी परिस्थिति का सच्चा बोध नहीं कर सकता, ठीक उसी कारण से जो निष्काम कर्म पर अध्याय ने स्थापित किया: परिणाम पर पकड़ बोध को तृष्णित भविष्य की सेवा के लिए मोड़ देती है। ऐसा नेता स्वयं को, सामान्यतः बिना मंशा के, ऐसे लोगों से घेर लेता है जो प्रतिमान को सुधारने के बजाय उसकी पुष्टि करते हैं, क्योंकि आसक्त स्व सुधार को संकट के रूप में अनुभव करता है। प्रतिपुष्टि-माध्यम बन्द हो जाते हैं। संगठन शीर्ष पर अन्धा हो जाता है। और नेता, कठिन से कठिनतर परिश्रम करता हुआ, अपने ही उद्वेलन को परिश्रम और अपने ही अन्धेपन को दृष्टि समझ बैठता है। यह

सर्वाधिक परिणामकारी आसन में विसंरक्षण है, और इसका मूल्य अनुप्रवाह में हर कोई चुकाता है।

**

छोड़ी गई आसक्ति के रूप में नेतृत्व

संरखित नेता, सर्वप्रथम, उससे परिभाषित होता है जो उसने छोड़ा है। व्यक्तिगत परिणाम और व्यक्तिगत श्रेय पर पकड़ ढीली कर चुकने पर, वह वस्तुतः देख सकता है — वास्तविकता को, अवांछित वास्तविकता सहित, स्वयं तक पहुँचने और अपना प्रतिमान सुधारने दे सकता है। यही कारण है कि गहनतम नेतृत्व इतनी बार बाहर से शान्त दिखता है, आत्म-विलोपक भी: वह नेता जिसे प्रत्येक विचार का स्रोत, प्रत्येक सफलता का नायक, वह जिसकी दृष्टि सिद्ध की ही जानी चाहिए, होने की आवश्यकता नहीं, वह यह बोध करने के लिए स्वतन्त्र है कि वस्तुतः क्या घटित हो रहा है और सम्यक् कर्म को अपने अहं की माँगों के बजाय परिस्थिति से उभरने देने के लिए। उद्धरण का विरोधाभास — वह नेता जिसके वहाँ होने को लोग मुश्किल से जानते हैं — मिथ्या विनम्रता नहीं है। यह नेतृत्व का स्वाभाविक रूप है जिससे आसक्ति को पर्याप्त रूप से हटा दिया गया है। कार्य पूरा होता है; परिस्थिति का सामना होता है; और कर्ता इतना विलीन हो गया है कि जिन्होंने उसे किया वे, सही रूप से, अनुभव करते हैं कि वह उनका था।

यह सीधे स्वधर्म से जुड़ता है, और सम्बन्ध महत्व रखता है, क्योंकि नेतृत्व में संरक्षण कोई एकल साँचा नहीं है। संरखित नेता अपनी ही प्रकृति से नेतृत्व करता है, किसी प्रशंसित प्रतिमान की नकल से नहीं — वह उधार लिया गया धर्म जिसके विषय में गीता ने चेतावनी दी कि वह भली-भाँति निष्पादित किए जाने पर भी नष्ट करता है। मैंने प्रतिभाशाली लोगों को किसी ऐसे व्यक्ति की भाँति नेतृत्व करने के प्रयास से बुरे नेता बनते देखा है जो वे नहीं थे, और साधारण-प्रतीत लोगों को ठीक उससे नेतृत्व करके अच्छे नेता बनते देखा है जो वे थे। संरखित उपकरण एक सच्चा उपकरण है: यह वह करता है जिसके लिए उसकी वास्तविक प्रकृति उसे सुसज्जित करती है, वास्तविक परिस्थिति के प्रति निष्ठावान प्रत्युत्तर में, एक भिन्न उपकरण होने का स्वाँग करने की विकृति के बिना। नेतृत्व कोई भूमिका नहीं है जिसे आप पहनते हैं। यह आपका अपना स्वधर्म है, एक ऐसे आसन में अभिव्यक्त जहाँ यह संयोगवश अन्यो को प्रभावित करता है।

**

वह नेता जो दशाएँ रचता है

संरेखित नेता का सर्वोच्च कार्य, अन्ततः, हर वस्तु को स्वयं संरेखित करना नहीं है — जो योजनाकार का भ्रम है, आदेश से व्यवस्था आरोपित करने का प्रयास जिसके विरुद्ध समाज पर अध्याय ने चेतावनी दी — बल्कि वे दशाएँ रचना है जिनमें उनके नेतृत्व में संरेखण उभर सके। यह नेतृत्व पर लागू स्वयं-संगठन का सिद्धान्त है: वह नेता जो समझता है कि वह व्यक्तिगत रूप से समग्र को एक साथ नहीं थाम सकता, और न उसे आवश्यकता है, क्योंकि एक भली-भाँति-दशाबद्ध तन्त्र अपने सदस्यों के स्थानीय संरेखण से संगत होता है जिस ढंग से झुण्ड पक्षियों से संगत होता है। उनका कार्य दशाएँ निर्धारित करना, प्रतिपुष्टि की रक्षा करना, स्थिरता को मूर्त करना, और फिर उस उद्भूत व्यवस्था पर विश्वास करना है जिसे उन्होंने सम्भव बनाया है — एक अर्थ में, उस क्षेत्र की देखभाल करके नेतृत्व करना जिसमें अन्य संरेखित होते हैं, बजाय स्वयं प्रत्येक परिणाम को पकड़ने के।

मैं, इसके तीन दशकों के पश्चात्, यह विश्वास करने लगा हूँ कि नेतृत्व अपने सर्वोत्तम रूप में साधारण जीवन में उपलब्ध धर्म के सर्वाधिक शुद्ध रूपों में से एक है — एक ऐसा स्थान जहाँ छोड़ी गई आसक्ति, सच्चा बोध, अपनी ही प्रकृति की निष्ठावान अभिव्यक्ति, और उद्भूत व्यवस्था में विश्वास सब एक ऐसे होने के ढंग में अभिसरित होते हैं जो अनेकों को स्वयं से परे उठाता है। और मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि इसकी विफलताएँ विसंरेखण के सर्वाधिक शुद्ध रूपों में से हैं, ठीक इसलिए कि वे पैमाने पर बढ़ती हैं: आसक्त, अन्धा, अनुकरणशील नेता अकेले दुःख नहीं भोगता बल्कि अपने विसंरेखण को अपनी देखभाल में हर जीवन भर वितरित करता है। आन्तरिक कार्य के दाँव कभी उस आसन से ऊँचे नहीं होते जहाँ एक व्यक्ति का संरेखण वह मौसम बन जाता है जिसमें अन्यो को जीना होता है।

अतः यदि आप किसी वस्तु का नेतृत्व करते हैं — एक कम्पनी, एक दल, एक परिवार, एक समुदाय, एक अकेला अन्य व्यक्ति जो आप पर निर्भर है — तो समझिए कि इस पुस्तक का आन्तरिक कार्य आपके नेतृत्व से पृथक् नहीं बल्कि उसका ठीक सार है। जो स्पष्टता आप लाते हैं, या लाने में विफल होते हैं, वह अन्यो की दशा बन जाती है। जो आसक्ति आप छोड़ते हैं, या नहीं छोड़ते, वह वह वायु बन जाती है जिसमें वे श्वास लेते हैं। नेतृत्व की कोई तकनीक नहीं है जो नेता के संरेखण का स्थान ले, क्योंकि नेतृत्व केवल अन्यो के लिए परिणामकारी बनाया गया संरेखण है। अपने ही संरेखण की देखभाल कीजिए, और आप, उसी क्रिया से, हर

उस व्यक्ति के संरेखण की देखभाल करते हैं जिसकी दशाएँ आप आकार देते हैं। यही इसका सम्पूर्ण है, और यह एक जीवनकाल को व्यस्त रखने के लिए पर्याप्त है।

"नेतृत्व अन्यो के लिए परिणामकारी बनाया गया संरेखण है। आसक्त नेता अपने अन्धेपन को हर उस व्यक्ति भर बढ़ा देता है जिसे वह छूता है; संरेखित नेता पकड़ को इतना छोड़ देता है कि सच्चा बोध कर सके, अपनी ही प्रकृति से नेतृत्व करता है, और वे दशाएँ रचता है जिनमें अन्य संरेखित हो सकते हैं। कोई तकनीक नहीं है जो नेता के संरेखण का स्थान ले।"

भाग बाईस

आन्तरिक प्रयोगशाला:

एक क्रमिक अभ्यास

क्रमिक अभ्यास	
ढाँचे को एक संपोषणीय, जीवनपर्यन्त मार्ग में बदलना	
1 सप्ताह	पहले दो सप्ताह छोटे से आरम्भ कीजिए प्रातःकालीन भास-व्यान; सांध्य पुनरावलोकन। वापसी ही अभ्यास है।
2 महीने	पहले कुछ महीने भूमि बनाइए भास को गहरा कीजिए; सचेत ठहराव को दिन के कुछ पुनरावर्तों क्षणों में ले लीजिए।
3 धर्मन	प्रतिरोध के साथ कार्य बाधा ही मार्ग है व्यस्तता, ऊब, शनैः अभ्यास का मौसम है — सजगता से मिला, आश्रयप्रति नहीं।
4 परिपक्वता	गहराना अभ्यास आपसों करता है असन और जीवन के बीच की सीढ़न घिसीन हो जाती है; प्रयास सहजता में परिपक्व होता है।
5 जीवन	जीवन भर का अभ्यास कोई शिखर नहीं, केवल वापसी दरकों पर जो महल खड़ा है वह नहीं कि आप कभी चूकते नहीं, बल्कि वह कि आप सदा लौटते हैं।

भाग बाईस — आन्तरिक प्रयोगशाला

एक संपोषणीय, जीवनपर्यन्त प्रगति के रूप में अभ्यास

भाग बाईस — सिंहावलोकन

अध्याय निन्यानवे

आरम्भ: प्रथम दो सप्ताह

"हजार मील की यात्रा अपने पैरों के नीचे से आरम्भ होती है।"

— ताओ ते चिंग

इस पुस्तक में अब तक हर वस्तु समझ रही है। समझ महत्व रखती है — यह वह झरोखा है जिससे सम्पूर्ण मार्ग दृश्य होता है — किन्तु यह अभ्यास के समान नहीं है, और जो पाठक यहाँ एक स्पष्ट मन और एक अपरिवर्तित जीवन के साथ समाप्त करता वह पुस्तक की मंशा का केवल आधा प्राप्त करता। अतः यह भाग देखने से करने की ओर मुड़ता है। यह एक क्रमिक अभ्यास प्रस्तुत करता है, यहाँ पहले दो सप्ताह से आरम्भ करते हुए, इस प्रकार अभिकल्पित कि जिन सिद्धान्तों का हमने परीक्षण किया वे आपके धारण किए विचार होना बन्द कर दें और आपके जीने का एक ढंग बन जाएँ। मैं इसे एक पाठ्यक्रम के रूप में प्रस्तुत करता हूँ, एक नुस्खे के रूप में नहीं: एक ऐसी संरचना जिसे आप अपनी ही प्रकृति और परिस्थिति के अनुकूल ढालते हैं, स्वधर्म की भावना में, कठोरता से अनुसरण किए जाने वाले एक विधान के बजाय।

किसी भी अन्य वस्तु से पूर्व, पहले से आगे ले जाई गई दो सावधानियाँ, क्योंकि भली-भाँति आरम्भ करने का अर्थ ईमानदारी से आरम्भ करना है। पहली, यह एक साधारण मन की साधारण उथल-पुथल के लिए अभ्यास है, नैदानिक दशाओं के लिए उपचार नहीं; यदि आप गम्भीर अवसाद, चिन्ता, आघात, या किसी महत्वपूर्ण मानसिक या भौतिक रोग से जूझ रहे हैं, तो यह अभ्यास व्यावसायिक देखभाल का एक सहचर है और कभी उसका विकल्प नहीं। दूसरी, यदि श्वास पर ध्यान संकट को कम करने के बजाय बढ़ाता है — जो कुछ के लिए होता है, विशेषकर कुछ इतिहासों के साथ — तो शिथिल कीजिए, अधिक सौम्यता से पहुँचिए, और उसे बलपूर्वक करने के बजाय मार्गदर्शन खोजिए। मार्ग इस विषय में ईमानदारी से आरम्भ होता है कि आप वस्तुतः कहाँ खड़े हैं, उसके माध्यम से धकेलने की वीरता से नहीं जिसके प्रति देखभाल के साथ पहुँचा जाना चाहिए।

*
**

पहले सप्ताह का एकल अभ्यास

हर वस्तु से आरम्भ करने के प्रलोभन का प्रतिरोध कीजिए। आरम्भों के विफल होने का सर्वाधिक सामान्य कारण यह है कि वे अति महत्वाकांक्षी होते हैं — वह राजसिक उत्साह जो दस अभ्यास आरम्भ करता है और किसी को नहीं टिकाता। पहले सप्ताह के लिए, ठीक एक वस्तु कीजिए: प्रत्येक प्रातःकाल, इससे पूर्व कि दिन आपको माँगे, कुछ शान्त मिनटों के लिए बैठिए और केवल अपनी श्वास पर ध्यान दीजिए। इसे विस्तार से नियन्त्रित न करते हुए, किसी लक्ष्य की ओर न गिनते हुए, किसी अवस्था के लिए न प्रयास करते हुए। केवल बैठकर श्वास को लक्षित करते हुए जैसे वह पहले से ही गति करती है — उठाव, गिराव, बीच के छोटे स्थिर बिन्दु। जब ध्यान भटके, जो यह भटकेगा, निरन्तर, तो लक्षित कीजिए कि यह भटक गया है और इसे सौम्यता से श्वास की ओर लौटाइए। वह लौटाना, ठहरना नहीं, अभ्यास है। प्रत्येक वापसी सम्पूर्ण मार्ग की केन्द्रीय गति की एक पुनरावृत्ति है: बोध वास्तविकता से भटकता हुआ, सजगता लक्षित करती हुई, और एक सौम्य सुधार वापस।

यही पहले सप्ताह का सम्पूर्ण अभ्यास है, और इसकी सरलता ही मुख्य बात है। आप शान्ति प्राप्त करने का प्रयास नहीं कर रहे, यद्यपि शान्ति आ सकती है। आप एक वस्तु स्थापित कर रहे हैं: निकटतम वास्तविकता पर सोद्देश्य रूप से ध्यान रखने, और जब यह भटके तो उसे आत्म-आलोचना के बिना लौटाने की दैनिक आदत। इन सत्रों के गुण का निर्णय मत कीजिए; ऐसी कोई वस्तु नहीं जैसे एक बुरा सत्र। एक ऐसा सत्र जिसमें आपने अपने ध्यान को चालीस बार भटकते लक्षित किया और चालीस बार लौटाया, ध्यान की विफलता नहीं बल्कि उसके प्रशिक्षण की चालीस पुनरावृत्तियाँ हैं। वह मन जो भटकने के लिए स्वयं को धिक्कारता है उसने केवल भटकने का एक सूक्ष्मतर ढंग खोज लिया है। लौटिए, सौम्यता से, पुनः। यही सब है।

*
**

दूसरा सप्ताह: सन्ध्या जोड़ना

यदि प्रातःकालीन बैठक ने जड़ पकड़ ली है — और केवल यदि उसने पकड़ी है; एक ऐसी नींव पर आगे मत बढ़िए जो जमी नहीं — तो दूसरे सप्ताह में एक वस्तु जोड़िए: दिन के अन्त में एक संक्षिप्त पुनरावलोकन। निद्रा से पूर्व, कुछ शान्त क्षण लीजिए और दिन को अपने ध्यान के माध्यम से वापस गुजरने दीजिए, उसका निर्णय करने को नहीं बल्कि उसकी शिक्षा

ग्रहण करने को। आज कहाँ आपने संरेखित अनुभव किया — स्पष्टता का, सम्यक् कर्म का, घटे हुए घर्षण का एक विस्तार? कहाँ आपने विसंरेखण का घर्षण अनुभव किया — आसक्ति, प्रतिक्रिया, वह क्षण जब आप स्पष्ट नहीं देख सके? इसमें से किसी के विषय में नैतिकता मत झाड़िए। केवल लक्षित कीजिए, जैसे एक वैज्ञानिक दिन के आँकड़ों का पुनरावलोकन करता है। सान्ध्य पुनरावलोकन ईमानदार आत्म-प्रेक्षण के उस संकाय को प्रशिक्षित करता है जिस पर समस्त आगे का अभ्यास निर्भर है, और यह ऐसा सौम्यता से करता है, घटना के पश्चात्, जहाँ यह स्वयं कर्म को विचलित नहीं कर सकता।

ये दो अभ्यास — श्वास पर प्रातःकालीन ध्यान, सान्ध्य पुनरावलोकन — पहले दो सप्ताहों का सम्पूर्ण हैं, और वे पर्याप्त हैं। वे सोद्देश्य रूप से छोटे हैं, क्योंकि एक आरम्भ का लक्ष्य आपके जीवन को एक पखवाड़े में रूपान्तरित करना नहीं है, जो किया नहीं जा सकता, बल्कि दो संपोषणीय आदतें स्थापित करना है जिन पर शेष अभ्यास निर्माण करेगा। एक आरम्भ जो विनम्र और टिकाया गया है उससे अनन्त गुना अधिक सम्पन्न करता है जो भव्य और परित्यक्त है। परम्परा इस पर एकमत है, और लोगों को वस्तुएँ आरम्भ करते देखने के तीन दशकों ने मुझे इसका पूर्णतः विश्वास दिला दिया है: टिकाया गया छोटा अभ्यास प्रयास किए गए बड़े अभ्यास को मात देता है। छोटे से आरम्भ कीजिए। संपोषणीय रूप से आरम्भ कीजिए। उस पर निर्माण करने से पूर्व नींव को जमने दीजिए। अगले अध्याय आपको अधिक देंगे, जब आप तैयार हों — और इसका सबसे निश्चित चिह्न कि आप तैयार हैं यह है कि ये दोनों केवल आपके जीने के ढंग का अंग बन गए हैं, छोड़े जाने पर खटकते, बिना तनाव के लौटे जाते।

"एक आरम्भ के विफल होने का सर्वाधिक सामान्य कारण यह है कि यह अति महत्वाकांक्षी होता है। पहले सप्ताहों के लिए, प्रायः कुछ मत कीजिए: प्रत्येक प्रातःकाल श्वास पर ध्यान दीजिए, प्रत्येक सन्ध्या दिन का पुनरावलोकन कीजिए, और अपने भटकते ध्यान को आत्म-आलोचना के बिना लौटाइए। लौटाना ही अभ्यास है। टिकाया गया छोटा अभ्यास प्रयास किए गए बड़े अभ्यास को मात देता है।"

अध्याय एक सौ

प्रथम महीने: आधार का निर्माण

*"हम वही हैं जो हम बार-बार करते हैं। तब उत्कृष्टता कोई कर्म नहीं,
बल्कि एक आदत है।"*

— अरस्तू के अनुसार

मान लीजिए दोनों आधारभूत अभ्यासों ने जड़ पकड़ ली है — प्रातःकालीन ध्यान और सान्ध्य पुनरावलोकन, कुछ सप्ताहों में, केवल आपके दिन का अंग बन गए हैं, छोड़े जाने पर खटकते, बिना तनाव के लौटे जाते। अब भूमि जमी है, और पहले महीनों का कार्य उस पर निर्माण करना है: संरक्षण को आसन से दिन की बुनावट में विस्तृत करना, और, सोद्देश्य रूप से, श्वास के साथ उस सुधारक उपकरण के रूप में कार्य करना आरम्भ करना जिसका हमने अध्ययन किया है। यह अध्याय उस निर्माण का वर्णन करता है। पहले की भाँति, केवल तभी आगे बढ़िए जब प्रत्येक परत स्थिर हो जाए; आगे दौड़ने का आवेग स्वयं वह राजसिक उद्वेलन है जिसे अभ्यास बैठाने के लिए अभिप्रेत है, और उसका भोग ठीक उस वस्तु को कमजोर करता है जिसे आप बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

पहली वृद्धि प्रातःकालीन बैठक को मात्र ध्यान से सौम्य नियमन में गहरा करना है। जहाँ पहले सप्ताहों में आपने केवल श्वास को लक्षित किया, अब आरम्भ कीजिए, सत्र के एक भाग के लिए, उसे लम्बा और सहज करना — विशेष रूप से निःश्वास को धीमा और अविलम्बित होने देना, क्योंकि यह धीमी निःश्वास ही है, जैसा हमने संगत हृदय पर अध्याय में देखा, जो शरीर के बैठने वाले प्रत्युत्तर को संलग्न करती है। आप बलपूर्वक या तनाव नहीं कर रहे; आप सौम्यता से श्वास को उस धीमी, सहज लय की ओर आमन्त्रित कर रहे हैं जिसमें शरीर के तन्त्र संगति में आ जाते हैं। ऐसी मुट्ठी भर श्वासें, बिना प्रयास या महत्वाकांक्षा के ली गईं, आपको, सोद्देश्य रूप से, उस संरक्षित शारीरिक अवस्था को उपलब्ध कराने लगती हैं जिसका हमने परीक्षण किया — अब सिद्धान्त के रूप में नहीं बल्कि किसी ऐसी वस्तु के रूप में जिसे आप

अपनी ही छाती में उठते अनुभव कर सकते हैं, और उत्तरोत्तर इच्छानुसार आह्वान कर सकते हैं।

*

**

अभ्यास को दिन में ले चलना

पहले महीनों का गहनतर कार्य, यद्यपि, औपचारिक बैठकों में नहीं बल्कि उनके फल को साधारण जीवन में ले जाना आरम्भ करने में है, जहाँ संरेखण वस्तुतः महत्त्व रखता है। सेतु वह है जिसे हम ठहराव कह सकते हैं — दिन भर कई बार, जो भी दिन प्रस्तुत करता है उसके प्रति प्रत्युत्तर देने से पूर्व एक अकेली सचेत श्वास और सजगता के एक क्षण का सोद्देश्य प्रवेश। फ़ोन बजता है; उत्तर देने से पूर्व, एक सचेत श्वास। एक कठिन सन्देश आता है; प्रतिक्रिया देने से पूर्व, एक सचेत श्वास, स्पष्ट देखने का एक क्षण। यह प्रतिक्रिया से प्रत्युत्तर की ओर बढ़ने पर अध्याय का अभ्यास है, मूर्त और सुवाह्य बनाया गया। आप अन्तराल को प्रशिक्षित कर रहे हैं — उद्दीपन और प्रत्युत्तर के बीच का वह छोटा अवकाश जिसमें सजगता प्रवेश कर सकती है और संरेखण सम्भव हो जाता है — और आप इसे उस एकमात्र स्थान पर प्रशिक्षित कर रहे हैं जहाँ यह अन्ततः महत्त्व रखता है, जो जीवन से अलग के बजाय जीवन के मध्य है।

इसे पूरे दिन करने का प्रयास मत कीजिए; यह वह अति-महत्त्वाकांक्षा है जो आरम्भों को पराजित करती है। चुनिए, आरम्भ में, कुछ पुनरावर्ती क्षण — दैनिक संक्रमणों की वही मुट्ठी भर — और सचेत ठहराव को उनसे जोड़िए। आपके सामने के दरवाज़े की देहली। भोजन से पूर्व का क्षण। फ़ोन की पहली घंटी। अभ्यास को विद्यमान विश्वसनीय क्षणों से आधारित करके, आप अपने दिन की संरचना को प्रशिक्षण वहन करने देते हैं, बजाय एक ऐसी सतर्कता पर निर्भर रहने के जिसे आप टिका नहीं सकते। महीनों भर, सचेत प्रत्युत्तर के ये द्वीप अपने आप गुणित होते हैं, प्रायः बिना आगे प्रयास के, ज्यों-ज्यों तंत्रिका-तन्त्र सीखता है कि ठहराव उपलब्ध है और बिना उकसाए उसके लिए पहुँचने लगता है। जो कुछ देहलियों पर एक सोद्देश्य अभ्यास के रूप में आरम्भ हुआ वह, धीरे-धीरे, केवल अधिक अवकाश बन जाता है जिसमें आप अपने जीवन से जाग्रत मिलते हैं।

*

**

जो उठता है उसके साथ कार्य करना

ज्यों-ज्यों इन महीनों में अभ्यास गहराता है, आप, पहले से अधिक स्पष्ट रूप से, अपने ही संस्कार की वास्तविक अन्तर्वस्तुओं से मिलने लगेंगे — अभ्यस्त प्रतिक्रियाएँ, पुनरावर्ती आसक्ति, वे विशेष आकार जो आपका विसरेखण लेने की प्रवृत्ति रखता है। यह कोई समस्या नहीं है; यह प्रगति है। स्पष्टतर ध्यान इन प्रतिरूपों को रचता नहीं; यह उसे प्रकट करता है जो सदा वहाँ था, पहले अन्धकार में गति करता हुआ। सान्ध्य पुनरावलोकन यहाँ समृद्धतर हो जाता है, ज्यों-ज्यों आप अपने ही आन्तरिक जीवन के पुनरावर्ती पात्रों को पहचानने लगते हैं: वह विशेष भय जो आपके बोध को विकृत करता है, वह विशिष्ट तृष्णा जो आपको सरेखण से बाहर खींचती है, वह प्रारूपिक कहानी जो आपका मन तब सुनाता है जब वास्तविकता उसे निराश करती है। इन्हें ईमानदारी से नाम देना, उन्हें भोगे या उनके विरुद्ध युद्ध किए बिना, उनसे स्वतन्त्रता का आरम्भ है। आप एक ऐसे प्रतिरूप को नहीं छोड़ सकते जिसे आपने अभी स्पष्ट रूप से नहीं देखा, और पहले महीने अधिकांशतः देखने का कार्य है।

यह भी अपेक्षा कीजिए कि यह अवधि सहज नहीं होगी, और जब यह न हो तो हतोत्साहित मत होइए। ऐसे विस्तार हैं जहाँ अभ्यास समृद्ध अनुभव होता है और सरेखण निकट प्रतीत होता है, और ऐसे विस्तार जहाँ यह शुष्क, यान्त्रिक, निरर्थक अनुभव होता है — जहाँ आप बैठते हैं और कुछ नहीं होता और आप सोचते हैं कि आप क्यों परेशान होते हैं। दोनों सामान्य हैं; दोनों भू-भाग का अंग हैं; कोई निर्णय नहीं। शुष्क विस्तार विफलताएँ नहीं बल्कि कार्य का एक भिन्न और समान रूप से आवश्यक अंग हैं, जब कोई तत्काल पुरस्कार न हो तब धैर्यपूर्ण जारी रखना, जो कुछ ऐसा बनाता है जिसे समृद्ध विस्तार नहीं बना सकते। पहले महीनों का एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभ्यास केवल न रुकना है — समृद्ध और शुष्क दोनों भर आसन और ठहराव और पुनरावलोकन की ओर लौटते रहना, दैनिक मौसम पर धीमे संचय का विश्वास करते हुए। शुष्क विस्तारों भर सुसंगति वह है जहाँ वास्तविक भूमि रखी जाती है, और यह वह गुण है जो उन्हें जिनके लिए यह एक जीवन बन जाता है उनसे अलग करता है जिनके लिए यह एक प्रावस्था बना रहता है।

"जब नींव जम जाए, तो सौम्यता से निर्माण कीजिए: श्वास को उसकी धीमी संगत लय की ओर गहरा कीजिए, और एक अकेली सचेत श्वास को दिन के कुछ पुनरावर्ती क्षणों में ले चलिए। समृद्ध विस्तारों और शुष्क विस्तारों की अपेक्षा कीजिए; कोई निर्णय नहीं। पहले महीनों का एकमात्र अनिवार्य अभ्यास केवल न रुकना है।"

अध्याय एक सौ एक

प्रतिरोध के साथ कार्य करना

"बाधा ही मार्ग है।"

— एक जैन कहावत

प्रत्येक ईमानदार अभ्यास प्रतिरोध से मिलता है, और एक ऐसा पाठ्यक्रम जो इसे सम्बोधित न करता, पाठक को मार्ग के एक साधारण लक्षण को एक व्यक्तिगत विफलता समझने के लिए तैयार कर रहा होता। प्रतिरोध इसका चिह्न नहीं है कि कुछ गलत हो गया है। यह इसका चिह्न है कि कुछ काम कर रहा है — कि अभ्यास ने उन प्रतिरूपों को छूना आरम्भ कर दिया है जिन्होंने आपके जीवन को संगठित किया है, और वे प्रतिरूप, स्वाभाविक रूप से, देखे और छोड़े जाने का प्रतिरोध करते हैं। यह अध्याय उस प्रतिरोध से मिलने के विषय में है, क्योंकि आप उससे कैसे मिलते हैं यह अधिकांशतः निर्धारित करता है कि अभ्यास गहराता है या चुपचाप मर जाता है। अधिकांश अभ्यास रुकने के एक निर्णय में समाप्त नहीं होते। वे एक अपरीक्षित भटकाव में समाप्त होते हैं, उस प्रतिरोध से चिकनाया गया जिसे कभी वैसा नहीं पहचाना गया जैसा वह था।

प्रतिरोध अनेक भेस पहनता है, और उन्हें पहचानना सीखना आधा कार्य है। सर्वाधिक सामान्य व्यस्तता है: यह अकस्मात् विश्वास कि आप केवल बैठने के लिए अति व्यस्त हैं, कि दिन अति भरा है, कि जब चीजें शान्त हो जाएंगी तब आप अभ्यास की ओर लौटेंगे। वे शान्त नहीं होंगी; जीवन ऐसे काम नहीं करते; और जो व्यस्तता अभ्यास को बाहर भीड़ देती है वह प्रायः ठीक वही राजसिक उद्वेलन है जिसे बैठाने के लिए अभ्यास विद्यमान है। वह मन जो बैठने के लिए अति उद्वेलित है ठीक वह मन है जिसे इसकी सर्वाधिक आवश्यकता है। जब आप अभ्यास को व्यस्तता द्वारा बाहर भीड़ा जाते लक्षित करें, तो व्यस्तता को रुकने के एक कारण के बजाय मिले जाने वाले एक लक्षण के रूप में मानिए — प्रायः सबसे स्पष्ट सम्भव चिह्न कि कुछ मिनटों की बैठक ठीक वही है जो दिन माँगता है।

*
**

सूक्ष्मतर भेस

प्रतिरोध स्वयं को ऊब के रूप में, सन्देह के रूप में, और इस अकस्मात् विश्वास के रूप में भी भेस देता है कि अभ्यास काम नहीं कर रहा। ऊब तब उठती है जब नवीनता घिस गई होती है और मन, निरन्तर उत्तेजना का अभ्यस्त, केवल बैठने की सरलता के विरुद्ध विद्रोह करता है; यह उस मन का प्रत्याहरण है जो ठीक उसी विखण्डन का अभ्यस्त है जिसका हमने तकनीक पर अध्याय में परीक्षण किया, और यह बीत जाती है यदि आप इसका आज्ञापालन न करें। सन्देह उठता है, प्रायः, ठीक तब जब अभ्यास एक पोषित प्रतिरूप को संकट में डालना आरम्भ करता है — मन, अपने संस्कार की रक्षा करता हुआ, इसके लिए प्रबल तर्क उत्पन्न करता है कि यह सब क्यों निरर्थक है, और ये तर्क अन्तर्दृष्टि जैसे अनुभव होते हैं जबकि वे वस्तुतः तर्क का मुखौटा पहने प्रतिरोध हैं। और यह विश्वास कि अभ्यास काम नहीं कर रहा सामान्यतः ठीक तब आता है जब यह कर रहा होता है, क्योंकि जिन प्रतिरूपों को यह ढीला कर रहा है वे अपने ढीले होने का विरोध करते हैं। इन्हें अभ्यास के विषय में सच्ची सूचनाओं के बजाय अभ्यास के मौसम के रूप में पहचानना सीखिए।

इन सबसे मिलने का सामान्य सिद्धान्त वही है जिसे उद्धरण नाम देता है: बाधा ही मार्ग है। प्रतिरोध अभ्यास का व्यवधान नहीं है; यह अभ्यास के लिए सामग्री है। जब ऊब उठती है, तो वह ऊब सजगता का विषय बन जाती है — आप उसे देखते हैं, उसकी बुनावट का अध्ययन करते हैं, उसके नीचे की बेचैनी लक्षित करते हैं, और उसे देखने में आप ठीक वही सजगता अभ्यासित कर रहे हैं जिसे सम्पूर्ण मार्ग विकसित करता है। जब सन्देह उठता है, तो सन्देह विषय बन जाता है: आप मन को उसके तर्क उत्पन्न करते प्रेक्षित करते हैं, उनके नीचे की आसक्ति या भय लक्षित करते हैं, और उन्हें या तो विश्वास करने या दबाने से अस्वीकार करते हैं। सजगता से मिला प्रतिरोध अभ्यास का गहराना बन जाता है; आज्ञापालित प्रतिरोध अभ्यास का समाप्त होना बन जाता है। अन्तर पूर्णतः इसमें है कि आप प्रतिरोध की ओर मुड़कर देखते हैं, या दूर मुड़कर भटकते हैं।

*
**

प्रतिरोध का दीर्घ परिप्रेक्ष्य

दीर्घ अवधि के लिए नाम देने योग्य एक गहनतर प्रतिरूप है। प्रतिरोध एक देहली से ठीक पूर्व तीव्र होने की प्रवृत्ति रखता है — किसी प्रतिरूप के छूटने से ठीक पूर्व, किसी स्पष्टता के

आने से ठीक पूर्वी यह रहस्यमय नहीं है; यह एक ऐसे तन्त्र की स्वाभाविक गतिकी है जो एक स्थापित विन्यास की उस क्षण सर्वाधिक प्रचण्डता से रक्षा करता है जब वह विन्यास सर्वाधिक संकटग्रस्त होता है। परम्पराओं भर साधक इसे सुसंगति से सूचित करते हैं: कि एक वास्तविक परिवर्तन से ठीक पूर्व का विस्तार प्रायः सबसे कठिन होता है, वह जिसे त्यागने का सबसे अधिक प्रलोभन होता है, और कि जो उसमें से जारी रखते हैं वे दूसरी ओर परिवर्तन पाते हैं। यह पहले से जानना सार्थक है, क्योंकि उस क्षण में, प्रतिरोध स्वयं को रुकने के एक कारण के रूप में प्रस्तुत करता है, और केवल यह पूर्व ज्ञान कि तीव्र होता प्रतिरोध प्रायः सफलता से पूर्व आता है आपको कठिनाई को छोड़ने के बजाय जारी रखने के संकेत के रूप में पुनर्व्याख्यायित करने देता है।

इसमें से किसी का अर्थ बलप्रयोग नहीं है, और मैं यहाँ सावधान रहना चाहता हूँ, क्योंकि प्रतिरोध के माध्यम से धकेलने की भाषा एक ऐसी कठोरता में दही जैसी जम सकती है जो स्वयं एक विसरेखण है। उस सौम्य दृढ़ता के बीच एक अन्तर है जो प्रतिरोध के माध्यम से दयालुता से जारी रहती है, और उस हिंसक आत्म-दबाव के बीच जो अपने दाँत भींचता है और स्वयं के विरुद्ध युद्ध करता है। पहली सरेखित करती है; दूसरा अनुशासन के वेश में केवल आसक्ति है। अपने प्रतिरोध से उस ढंग से मिलिए जैसे आप एक भयभीत पशु या एक संघर्षरत मित्र से मिलते — धैर्य के साथ, बल के बिना, स्थिरता से किन्तु सौम्यता से जारी रखते हुए, न प्रतिरोध को भोगते हुए न उसके होने के लिए स्वयं को बर्बरतापूर्वक पीटते हुए। अभ्यास स्वयं के विरुद्ध जीती जाने वाली कोई लड़ाई नहीं है। यह तेंदी जाने वाला एक सम्बन्ध है, उन ऋतुओं में सहित, विशेषकर, जब यह कठिन हो। इसे प्रतिरोध के माध्यम से सौम्यता से तेंदिए, और प्रतिरोध, इस ढंग से मिला, ठीक वह साधन बन जाता है जिससे अभ्यास किसी टिकाऊ वस्तु में गहराता है।

"प्रतिरोध इसका चिह्न नहीं है कि कुछ गलत हो गया है; यह इसका चिह्न है कि अभ्यास ने उन प्रतिरूपों को छूना आरम्भ कर दिया है जो आपके जीवन को संगठित करते हैं। सजगता से मिला, बाधा मार्ग बन जाती है — ऊब और सन्देह रुकने के कारणों के बजाय अध्ययन के विषय बन जाते हैं। किन्तु इससे सौम्यता से मिलिए: प्रतिरोध के माध्यम से दृढ़ता स्वयं के विरुद्ध युद्ध नहीं है।"

अध्याय एक सौ दो

गहराना: अभ्यास एक जीवन बन जाता है

"पहले आप अभ्यास करते हैं; फिर अभ्यास आपको करता है;

अन्ततः केवल करना रहता है।"

— अभ्यास में परिपक्वता पर एक शिक्षा

एक बिन्दु आता है, नींव जम जाने और पहले महीनों का प्रतिरोध मिल और झेल लिए जाने के पश्चात्, जहाँ स्वयं अभ्यास की प्रकृति में कुछ बदलता है। यह कुछ ऐसी वस्तु होना बन्द कर देता है जो आप कुछ समयों पर करते हैं और किसी ऐसी वस्तु बनना आरम्भ करता है जो इसके अधिक निकट है कि आप कैसे हैं। यह अध्याय उस गहराने का वर्णन करता है — एक ऐसे चरण के रूप में नहीं जिसे आप बलपूर्वक या समयबद्ध कर सकते हैं, बल्कि एक स्वाभाविक परिपक्वता के रूप में जो टिकाया गया अभ्यास उत्पन्न करता है, ताकि आप उसे पहचानें जब वह आए और उसे न तो विफलता न पूर्णता समझें। गहराना वास्तविक है, और यह वह कारण है कि सम्पूर्ण पूर्व अनुशासन इसके योग्य था। किन्तु इसकी अपनी सूक्ष्मताएँ हैं, और उनमें से कुछ नाम देने योग्य हैं ताकि आप न तो उसके लिए समय से पूर्व आसक्त हों न उसे अनदेखा करें जब वह आए।

गहराने का पहला चिह्न यह है कि औपचारिक अभ्यास और साधारण जीवन के बीच की सीमा विलीन होने लगती है। आरम्भ में ये तीक्ष्ण रूप से पृथक् हैं: आसन पर का समय है और संसार में का समय है, और आप एक का फल दूसरे में सोद्देश्य प्रयास से ले जाते हैं। ज्यों-ज्यों अभ्यास परिपक्व होता है, सीवन फीकी पड़ जाती है। बैठक में विकसित सजगता केवल दिन में उपस्थित होने लगती है, इसलिए नहीं कि आप उसे प्रयासपूर्वक ले जा रहे हैं बल्कि इसलिए कि यह, उत्तरोत्तर, एक ऐसी अवस्था के बजाय जहाँ आप जाते हैं आपका स्वतःमान्य मोड बन गई है। वह सचेत ठहराव जिसे आपको कभी कुछ देहलियों पर सोद्देश्य रूप से डालना पड़ता था अपने आप उठने लगता है, हर जगह। आप स्वयं को प्रतिक्रिया देने के बजाय प्रत्युत्तर

देते पाते हैं बिना यह निर्णय किए कि देंगे। अभ्यास ने, जैसा उद्धरण कहता है, आपको करना आरम्भ कर दिया है।

**

प्रयास से सहजता की ओर

यह पुस्तक के सहज कर्म पर भाग से जुड़ता है, और यहाँ वहाँ की शिक्षा संकल्पना के बजाय जिया गया अनुभव बन जाती है। आरम्भ में, सरेखण प्रयास लेता है: आपको सचेत रूप से ध्यान देना, सचेत रूप से ठहरना, सचेत रूप से लौटना चाहिए। ज्यों-ज्यों अभ्यास गहराता है, प्रयास घटता है, इसलिए नहीं कि आप कम कर रहे हैं बल्कि इसलिए कि करना स्वाभाविक हो गया है, उस ढंग से जैसे एक दीर्घकाल अभ्यासित कौशल लापरवाह हुए बिना सहज हो जाता है। वह पियानोवादक जो कभी प्रत्येक उँगली सोद्देश्य रूप से रखता था अब उँगलियों के विषय में सोचे बिना बजाता है; वह सरेखण जिसे कभी सतर्कता आवश्यक थी अब अपने आप उठता है। यह परिपक्व अभ्यास का विरोधाभास है: सर्वाधिक सहज सरेखण सर्वाधिक टिकाए गए प्रयास का फल है, और उस सहजता का कोई शॉर्टकट नहीं जो पहले वर्षों के प्रयास से होकर न गुजरे। जो सहजता को सीधे खोजते हैं, श्रम छोड़ते हुए, उसकी केवल एक नक़ल पाते हैं — एक आध्यात्मिक-सुनाई देती निष्क्रियता जो वस्तुतः केवल पुराना विसरेखण है, अविचलित।

एक सावधानी यहाँ सम्बद्ध है, क्योंकि गहराना अपना विशिष्ट जाल लाता है। ज्यों-ज्यों सरेखण अधिक स्वाभाविक हो जाता है और आन्तरिक उथल-पुथल शान्त होती है, यह निष्कर्ष निकालने का एक प्रलोभन होता है कि कार्य पूरा हो गया है — नई सुगमता में विश्राम करने और चुपचाप रुकने का। यह सूक्ष्म है, क्योंकि सुगमता वास्तविक है और विश्राम सुखद है और यह पुराने स्थूल प्रतिरोध जैसा अनुभव नहीं होता। किन्तु यह फिर भी प्रतिरोध है, आगमन का प्रतिरोध, एक अवस्था पर अब वह आसक्ति जो पहले स्वयं को परिणामों पर आसक्ति के रूप में अभिव्यक्त करती थी। परिपक्व साधक इसे लक्षित करता है और जारी रखता है, गहराई गई अवस्था को उतने ही हल्के से धारण करता हुआ जितने हल्के से उसने हर अन्य वस्तु धारण करना सीखा, न सुगमता को जकड़ता न यह निष्कर्ष निकालता कि मार्ग का एक अन्त है जिस पर कोई रुकता है। ऐसा कोई अन्त नहीं, जैसा पुस्तक की अपनी संरचना ने अपने शीर्षक से आगे आग्रह किया है: केवल गहनतर सरेखण, बिना अन्त के।

**

व्यक्ति के रूप में अभ्यास

गहराने की पूर्णतम पहुँच पर, साधक और अभ्यास के बीच का भेद प्रायः पूर्णतः विलीन हो जाता है। अब आपके पास उस ढंग से एक अभ्यास नहीं है जैसे आपके पास एक सम्पत्ति है; अभ्यास आपके अस्तित्व से मिलने का ढंग बन गया है, आप कैसे जीते हैं उससे अभेद्य। श्वास निर्धारित समयों पर नहीं बल्कि एक शान्त सतत सहचर के रूप में सचेत है। स्पष्ट-देखना कोई उपलब्धि नहीं जो आप उत्पन्न करते हैं बल्कि केवल वास्तविकता के साथ आपका साधारण सम्बन्ध है, अधिकांश समय, ऐसी चूकों के साथ जिन्हें आप लक्षित करते हैं और जो उत्तरोत्तर अपने आप स्वयं को सुधारती हैं। वह आसक्ति जिसने कभी आपके जीवन के इतने अधिक को संगठित किया लुप्त नहीं हुई है — यह अब भी उठती है — किन्तु यह अब आपको उस ढंग से नहीं पकड़ती जैसे यह पकड़ती थी, क्योंकि वह सजगता जो इसे छोड़ती है उस आसक्ति से अधिक स्थिर हो गई है जिसे यह छोड़ती है। यही इसका अर्थ है कि अभ्यास एक जीवन बन गया है।

मैं इसका वर्णन न तो इसे किसी समयरेखा पर वचन देने के लिए करता हूँ न यह सुझाने के लिए कि यह विरल और उदात्त है, क्योंकि दोनों ढाँचे भ्रमित करते हैं। यह उदात्त नहीं है; यह टिकाए गए साधारण अभ्यास का स्वाभाविक परिपक्वन है, किसी के लिए भी उपलब्ध जो पर्याप्त लम्बे समय तक और पर्याप्त सौम्यता से जारी रखता है। और यह किसी समयरेखा पर नहीं है; यह अपनी ही ऋतु में परिपक्व होता है, कुछ के लिए तेज, अन्यो के लिए धीमा, और सबसे बुरी वस्तु जो आप कर सकते हैं वह उसके लिए आसक्त होना है, क्योंकि आसक्ति ठीक वह वस्तु है जो उसे रोकती है। आपका कार्य गहराने को प्राप्त करना नहीं बल्कि उस अभ्यास को बनाए रखना है जो, अपने ही समय में, उसे उत्पन्न करता है — बैठते रहना, ठहरते रहना, लौटते रहना, प्रतिरोध से सौम्यता से मिलते रहना, समस्त समृद्ध और शुष्क ऋतुओं भर, उस धीमे परिपक्वन का विश्वास करते हुए जिसे आप बलपूर्वक नहीं ला सकते। वह कीजिए, और गहराना अपनी देखभाल स्वयं कर लेता है। यह सदा करता आया है, हर किसी के लिए जिसने आपसे पूर्व कभी इस मार्ग पर चला, और यह आपके लिए करेगा, उस ऋतु में जो आपकी है।

"एक बिन्दु आता है जहाँ अभ्यास कुछ ऐसी वस्तु होना बन्द कर देता है जो आप करते हैं और बन जाता है कि आप कैसे हैं — आसन और जीवन के बीच की सीवन विलीन होती हुई, प्रयास सहजता में परिपक्व होता हुआ। किन्तु सर्वाधिक सहज संरेखण सर्वाधिक टिकाए गए प्रयास का फल है; कोई शॉर्टकट नहीं जो वर्षों को छोड़ दे। आपका कार्य गहराने को प्राप्त करना नहीं बल्कि उस अभ्यास को बनाए रखना है जो उसे उत्पन्न करता है।"

अध्याय एक सौ तीन

आजीवन एक अभ्यास

"हम पर्वत को नहीं, बल्कि स्वयं को जीतते हैं।"

— एडमंड हिलेरी

यह अध्याय पाठ्यक्रम को उस सबसे बड़े ढाँचे में रखकर समाप्त करता है जिसे अभ्यास स्वीकार करता है: एक सम्पूर्ण जीवन का ढाँचा। पिछले अध्यायों की क्रमिक संरचना — पहले सप्ताह, पहले महीने, गहराना — एक गन्तव्य वाले मार्ग का सुझाव दे सकती है, एक शिखर जिस पर पहुँचने के पश्चात् कोई आ पहुँचा है। मैं उस छाप को सौम्यता से किन्तु दृढ़ता से सुधारना चाहता हूँ, क्योंकि यह वह छाप है जो दीर्घ अवधि में एक गम्भीर साधक को पटरी से उतारने की सर्वाधिक सम्भावना रखती है। कोई शिखर नहीं है। कोई आगमन नहीं है। केवल अभ्यास है, एक जीवनकाल भर जारी रखा गया, बिना अन्त के गहराता हुआ, और जितना शीघ्र इसे हतोत्साहन के रूप में नहीं बल्कि मुक्ति के रूप में स्वीकार किया जाए, सम्पूर्ण उपक्रम उतना ही अधिक संपोषणीय बन जाता है।

विचार कीजिए कि एक गन्तव्य की अनुपस्थिति इसके विपरीत के बजाय मुक्ति क्यों है। यदि अभ्यास का एक शिखर होता, तो शिखर से कम प्रत्येक दिन अपूर्णता का, अभी-वहाँ-नहीं का, एक भावी आगमन की ओर प्रयास का एक दिन होता — जो ठीक परिणाम की ओर वह आसक्ति है जिसे छोड़ने के लिए अभ्यास विद्यमान है। एक गन्तव्य की ओर अभिविन्यस्त अभ्यास आन्तरिक रूप से विरोधाभासी होता, ठीक उस विसरेखण को उत्पन्न करता हुआ जिसे यह ठीक करने का दावा करता है। यह पहचान कि कोई गन्तव्य नहीं इस विरोधाभास को पूर्णतः विलीन कर देती है। पहुँचने को कहीं नहीं है। केवल यह श्वास है, यह दिन, यह अभ्यास, सरेखित या कम सरेखित, और फिर अगला। मार्ग का सम्पूर्ण उसके किसी भी क्षण में उपलब्ध है, क्योंकि मार्ग सरेखण की ओर एक यात्रा नहीं बल्कि सरेखित होने की चालू सक्रियता है, प्रत्येक उदाहरण में पूर्ण और अपने जारी रहने में अन्तहीन।

**

एक जीवनपर्यन्त अभ्यास स्वयं को कैसे टिकाता है

दशकों भर एक अभ्यास को क्या टिकाता है, जब आरम्भिक उत्साह बहुत पहले जा चुका है और कोई शिखर संकेत नहीं देता? इच्छाशक्ति नहीं, जो क्षीण होती है, और अकेला अनुशासन नहीं, जो आनन्दहीन कर्तव्य में कठोर हो जाता है। एक जीवनपर्यन्त अभ्यास को जो टिकाता है वह यह है कि यह, उत्तरोत्तर, स्वयं को खिलाना आरम्भ करता है — किसी आगे के अन्त के साधन के बजाय अपना ही पुरस्कार बनना। संरेखित अवस्था कोई विषादपूर्ण उपलब्धि नहीं बल्कि सच्चे रूप से होने का एक बेहतर ढंग है, अपने विकल्प से हल्की और स्पष्टतर और अधिक सजीव, और ज्यों-ज्यों अभ्यास परिपक्व होता है और यह केवल विश्वास किए जाने के बजाय प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात हो जाता है, आप इसलिए जारी रखते हैं इसलिए नहीं कि आपको चाहिए बल्कि इसलिए कि आप विकल्प की ओर स्वेच्छा से नहीं लौटेंगे। अभ्यास स्वयं को उस ढंग से टिकाता है जैसे अच्छा स्वास्थ्य अपने ही रखरखाव को टिकाता है एक बार जब आप अन्तर जान लेते हैं: बल से नहीं, बल्कि इसलिए कि आपने अनुभव किया है कि दूसरे ढंग से जीना कैसा है और वापस जाने की कोई इच्छा नहीं।

फिर भी ऐसी ऋतुएँ रहेंगी, एक जीवनकाल भर, जब अभ्यास में चूक होती है — रोग, संकट, जीवन के एक कठिन विस्तार का सरासर अविराम दबाव, भटकाव की अवधियाँ। यह विफलता नहीं है, और एक जीवनपर्यन्त दृष्टि इसे बिना नाटक के आत्मसात् कर लेती है। एक जीवनकाल का अभ्यास कोई अखण्डित अभिलेख नहीं है; यह एक लम्बा सम्बन्ध है, अपनी निकटता और अपनी दूरियों के साथ, अपनी निष्ठावान ऋतुओं और अपनी चूकी हुई ऋतुओं के साथ, और दशकों भर जो महत्त्व रखता है वह यह नहीं कि आप कभी नहीं चूकते बल्कि यह कि आप सदा, अन्ततः, लौटते हैं। वापसी सब कुछ है। एक साधक जो चालीस वर्षों भर सौ बार चूका है और एक सौ एक बार लौटा है उसका एक जीवनपर्यन्त अभ्यास है; जिसने स्वयं से पूर्णता माँगी और पहली लम्बी चूक पर सम्पूर्ण वस्तु को त्याग दिया उसका नहीं। वापसी को अपनी समझ में आरम्भ से ही बना लीजिए, ताकि जब चूकें आएँ, जैसे वे आएँगी, आप उनसे विफलता के प्रमाण के रूप में नहीं बल्कि केवल अगली वापसी से पूर्व की दूरी के रूप में मिलें।

*
**

अभ्यास और वह व्यक्ति जो यह बनाता है

इस अभ्यास का एक जीवनकाल क्या उत्पन्न करता है? पूर्णता नहीं, जो किसी मनुष्य को प्रस्तुत नहीं है और मुख्य बात नहीं है। यह, धीरे-धीरे, एक विशेष प्रकार का व्यक्ति उत्पन्न करता है: कोई जिसमें संरेखण विसंरेखण से अधिक अभ्यस्त हो गया है, जो जीवन की कठिनाइयों से सतही मौसम के नीचे की एक स्थिरता से मिलता है, जो कम आसक्त होता और अधिक देखता है, जिसने, दस हजार छोटी वापसियों के माध्यम से, एक ऐसा स्व बनाया है जो वास्तविकता के साथ युद्ध में होने के बजाय उसमें अधिक घर पर है। यह वह स्थितप्रज्ञ है जिसका हमने परीक्षण किया, उपलब्धि की एक चमक में नहीं बल्कि साधारण अभ्यास के दशकों भर कण-दर-कण बनाया गया, उसके पास पहुँचा गया। गीता ने जो चित्र खींचा वह विरलों के लिए आरक्षित होने का एक भिन्न क्रम नहीं है; यह वह है जो एक साधारण व्यक्ति बन जाता है, क्रमशः, ठीक उस अभ्यास के माध्यम से जिसका इस भाग ने वर्णन किया, पर्याप्त लम्बे समय तक जारी रखा गया।

और इस प्रकार पाठ्यक्रम वहीं समाप्त होता है जहाँ पुस्तक आरम्भ हुई, एक उपलब्धि के बजाय एक पहचान के साथ। आप खोए हुए नहीं हैं; आप कभी खोए नहीं थे। आप एक ऐसी व्यवस्था की अभिव्यक्ति हैं जिसने कभी कार्य करना बन्द नहीं किया, जिसे जारी रहने के लिए आपकी समझ की आवश्यकता नहीं, जो आपकी ली प्रत्येक श्वास में उपस्थित है। अभ्यास उस व्यवस्था के साथ आपके संरेखण को रचता नहीं; यह उसे हटाता है जो एक ऐसे संरेखण को आच्छादित करता है जो सदा आपकी गहनतम प्रकृति थी। अभ्यास का एक जीवनकाल उस हटाने का एक जीवनकाल है — श्वास-दर-श्वास और वापसी-दर-वापसी, उस संचित कोलाहल को साफ़ करने का जो आपके और जो आप पहले से ही हैं उसके बीच खड़ा है। इसका कोई अन्त नहीं क्योंकि जिससे आप संरेखित हो रहे हैं उसकी गहराई का कोई अन्त नहीं। और इसकी कोई अत्यावश्यकता नहीं, अन्ततः, इस अकेली श्वास की शान्त अत्यावश्यकता से परे, जो एकमात्र स्थान है जहाँ अभ्यास कभी वस्तुतः घटित हुआ है, और एकमात्र स्थान जहाँ यह कभी होगा। वहाँ आरम्भ कीजिए। वहाँ जारी रखिए। जीवनकाल अपनी देखभाल स्वयं कर लेता है, एक बार में एक श्वास।

"कोई शिखर नहीं और कोई आगमन नहीं — केवल अभ्यास, एक जीवनकाल भर जारी रखा गया, बिना अन्त के गहराता हुआ। यह मुक्ति है, हतोत्साहन नहीं: पहुँचने को कहीं नहीं, केवल यह श्वास, संरेखित, और फिर अगली। दशकों भर जो महत्त्व रखता है वह यह नहीं कि आप कभी नहीं चूकते बल्कि यह कि आप सदा, अन्ततः, लौटते हैं।"

भाग तेईस

जीवन की ऋतुओं भर संरेखण

जीवन की ऋतुओं भर संरेखण	
प्रत्येक ऋतु आवश्यक; समग्र एक रेखा से अधिक एक वृत्त	
1 यौवन	निर्माण जन्मजात खुलेपन की रक्षा कीजिए — बोधात्मक प्रतिमान को कोमल रखिए। जो रीढ़ संरेखित है उसे ढेर से पुनः पाने की आवश्यकता नहीं।
2 निर्माण	निर्माण के वर्ष पूर्णता से निर्माण कीजिए, किन्तु निर्माण में विलीन मत होइए। उपलब्धि और भूमिका की आतंशिकता को रोकिए।
3 मध्य	प्रतिकलन संकट नहीं बल्कि प्रतिमुक्ति। इसे भीतर की ओर मोड़िए, और अन्तःकरणमय मन सच्चे मार्ग की देहरी बन जाता है।
4 परवर्ती	परिपक्वता के वर्ष आत्मिक स्वाभाविक रूप से टीली होती है; अनुभव प्रज्ञा में आसृत होता है। फल केवल ढेर से पकता है।
5 समाप्त	सम्पूर्ण चाप वृद्ध या खुलाने वाला का है, अनुभवी पुनः पाया गया, लौटने की सम्पूर्ण दृष्टि तब कबके।
आप पीछे या आगे नहीं हैं — आप ठीक वहाँ हैं जहाँ चाप आपको लाया है, उस ऋतु में जो आपकी है।	

भाग तेईस — सम्पूर्ण चाप

प्रत्येक ऋतु आवश्यक; समग्र एक रेखा से अधिक एक वृत्त
भाग तेईस — सिंहावलोकन

अध्याय एक सौ चार

निर्माण की ऋतु

"बालक भरा जाने वाला पात्र नहीं, बल्कि प्रज्वलित की जाने वाली अग्नि है।"

— प्लूटार्क के अनुसार

संरक्षण प्रत्येक आयु पर एक ही कार्य नहीं है। जिस व्यवस्था से हम संरक्षित होते हैं वह स्थिर है, किन्तु संरक्षित होने का आकार बदलता है ज्यों-ज्यों एक जीवन अपनी ऋतुओं से होकर गति करता है, और यह अन्तिम भाग उस गति का अनुसरण आरम्भिकतम वर्षों से अन्तिम तक करता है। मैं निर्माण की ऋतु से आरम्भ करता हूँ — बाल्यकाल और यौवन — पालन-पोषण की कोई नियमावली प्रस्तुत करने को नहीं, जिसे माता-पिता के धर्म पर पूर्व अध्याय ने सम्बोधित किया, बल्कि यह पूछने को कि संरक्षण का एक ऐसे मनुष्य के लिए क्या अर्थ है जो अभी बन रहा है, अभी ठीक उन बोधात्मक और भावनात्मक प्रतिरूपों का निर्माण कर रहा है जिनके माध्यम से वह अपने शेष जीवन भर वास्तविकता से मिलेगा। यह वह ऋतु है जिसमें वह संस्कार रखा जाता है जिसे देखना सीखने में हमने पुस्तक बिताई है, और उसके विषय में कुछ समझने योग्य है।

युवा मनुष्य उल्लेखनीय खुलेपन की एक अवस्था में आता है — एक पूर्वानुमानी प्रतिमान जो अभी कठोर नहीं हुआ, एक बोध जो अभी दशकों की संचित पूर्वधारणा से कवचित नहीं हुआ। पूर्वानुमानी मन पर अध्याय के शब्दों में, बालक का प्रतिमान अभी कोमल है, अभी एक ऐसे संसार के विरुद्ध स्वतन्त्र रूप से अद्यतन हो रहा है जिससे वह पहली बार मिल रहा है। यह खुलापन निर्माण की ऋतु का महान उपहार है, और इसकी महान भेद्यता भी, क्योंकि जो प्रतिरूप अब आत्मसात् किए जाते हैं — यह मूलभूत बोध कि वास्तविकता विश्वसनीय है या संकटपूर्ण, कि कोई मूलतः सुरक्षित है या मूलतः खतरे में — बाद में अर्जित किसी भी से अधिक गहरे धँसते हैं, और उस लेंस को आकार देते हैं जिसके माध्यम से बाद

की हर वस्तु बोधित होगी। निर्माण की ऋतु वह है जब संरक्षण या विसंरक्षण की गहनतम परतें बोई जाती हैं।

*
**

निर्माण सम्यक् रूप से किसका लक्ष्य रखता है

यदि ऐसा है, तो निर्माण का सम्यक् लक्ष्य, मुख्यतः, युवा मन को सूचना से भरना नहीं है, यद्यपि सूचना का अपना स्थान है। सम्यक् लक्ष्य स्वयं खुलेपन की रक्षा और संवर्धन है — पूर्वानुमानी प्रतिमान को कोमल रखना, वास्तविकता को ताज़ा रूप से बोधने और उसके विरुद्ध बिना भय के अद्यतन करने के बालक के जन्मजात सामर्थ्य का परिरक्षण। एक ऐसा निर्माण जो युवा को विषयवस्तु से भर देता है जबकि उनके खुलेपन को कुचलता है, ठीक वह कठोर, भयभीत, रक्षित बोध उत्पन्न करता है जिसे फिर सम्पूर्ण वयस्क अभ्यास को मिटाने का श्रम करना होता है। एक ऐसा निर्माण जो खुलेपन की रक्षा करता है — जो वास्तविकता को इतना विश्वसनीय रखता है कि प्रतिमान को स्वयं को समय से पूर्व कवचित करने की आवश्यकता न हो — एक ऐसे बोधात्मक तन्त्र का उपहार देता है जो पहले अपने ही निर्माण से उबरे बिना संरक्षण में समर्थ रहता है।

यह उस बहुत-से को पुनः ढालता है जो हम युवा के साथ करते हैं। दबाव, तुलना, परिणामों की ओर वह अविराम अनुकूलन जो इतने अधिक समकालीन बाल्यकाल को लक्षित करता है — ये, इस पुस्तक की भाषा में, आसक्ति की आरम्भिक संस्थापना हैं, एक युवा सत्ता को वर्तमान वास्तविकता के साथ संरक्षण के बजाय तृष्णित भविष्यों की ओर जीना सिखाना। हम, प्रायः सर्वोत्तम मंशाओं के साथ, बच्चों को ठीक उस विसंरक्षण में संस्कारित कर रहे हैं जिससे बचने के लिए हम बाद में उन्हें पुस्तकें बेचेंगे। संरक्षित निर्माण की ऋतु इससे शान्तर दिखती: अधिक अवकाश, अधिक विश्वास, जन्मजात खुलेपन की अधिक रक्षा, परिणामों के चिन्तित पीछा में कम आरम्भिक प्रशिक्षण जिससे उबरने में शेष जीवन बिताया जाएगा। एक बालक को भली-भाँति गढ़ना उस संरक्षण की रक्षा करना है जिसके साथ वे आए, उसे उनमें से पढ़ाकर निकालना नहीं।

*
**

उस एक के लिए जो अभी बन रहा है

किन्तु यह अध्याय केवल उनके लिए नहीं जो युवा को आकार देते हैं; यह स्वयं युवा के लिए भी है, और उस यौवन के लिए जो हममें से किसी में भी बना रहता है। यदि आप अपने जीवन में आरम्भ में हैं, अभी भी निर्माण की ऋतु में, तो कुछ जानने योग्य है जिसकी ओर इस पुस्तक की सम्पूर्ण संरचना संकेत करती है: कि जो खुलापन अब आपके पास है वह कोई कमी नहीं जिससे आगे बढ़ना है बल्कि एक कोश है जिसकी रक्षा की जानी है। संसार आपको अपने बोध को कवचित करने, अपना प्रतिमान स्थिर करने, परिपक्वता के नाम पर एक रक्षित देखने के ढंग के प्रति समय से पूर्व प्रतिबद्ध होने को दबाएगा। उस कवच में से कुछ अपरिहार्य है, एक ऐसे संसार से होकर गति करने का मूल्य जो सदा सुरक्षित नहीं। किन्तु जिस मात्रा तक आप निर्माण की ऋतु से अपना जन्मजात खुलापन खोए बिना गति कर सकते हैं — यौवन के कोमल, अद्यतन होते, वास्तविकता का अनुसरण करते बोध को उस कठोर निश्चितता के लिए दिए बिना जो स्वयं को प्रज्ञा समझ बैठती है — वह वह मात्रा है जिस तक आप वयस्कता पर पहले से ही संरेखित पहुँचते हैं, पहले से ही उबरने की आवश्यकता रखने के बजाय।

इस पुस्तक के अभ्यास यहाँ भी उपलब्ध हैं, और यथार्थतः कहीं अधिक मूल्यवान रूप से, क्योंकि जो शीघ्र स्थापित होता है वह सबसे गहरा चलता है। एक युवा व्यक्ति जो, प्रतिरूपों के कठोर होने से पूर्व, श्वास पर ध्यान देना, प्रतिक्रिया देने से पूर्व ठहरना, वास्तविकता को अपना प्रतिमान सुधारते रहने देना सीखता है, वह दशकों के संस्कार को मिटा नहीं रहा बल्कि उसके अधिकांश को सर्वप्रथम बनने से रोक रहा है। निर्माण की ऋतु संरेखित होने की सबसे सस्ती ऋतु है, क्योंकि यहाँ संरेखण अधिकांशतः उस विसंरेखण को न अर्जित करने का मामला है जिसे झाड़ने में अन्य अपना जीवन बिताएँगे। तब, युवा पाठक के लिए, सन्देश सरल और अत्यावश्यक है: जो आप अब रक्षित करते हैं, उसे आपको बाद में पुनः पाना नहीं पड़ेगा। अपने खुलेपन की रक्षा कीजिए। अपने प्रतिमान को कोमल रखिए। अभ्यास को इसकी आवश्यकता होने से पूर्व आरम्भ कीजिए, और आपको इसकी उनसे कहीं कम आवश्यकता हो सकती है जिन्होंने बहुत देर से आरम्भ किया।

"युवा उल्लेखनीय खुलेपन में आते हैं — एक बोधात्मक प्रतिमान जो अभी दशकों की पूर्वधारणा से कवचित नहीं हुआ। निर्माण का सम्यक् लक्ष्य उस मन को भरना नहीं बल्कि उस खुलेपन की रक्षा करना है। जो शीघ्र संरक्षित है उसे देर से पुनः पाने की आवश्यकता नहीं: खुलेपन की रक्षा कीजिए, प्रतिमान को कोमल रखिए, और आपको उनसे कहीं कम मिटाने की आवश्यकता हो सकती है जिन्होंने बहुत देर से आरम्भ किया।"

अध्याय एक सौ पाँच

निर्माण के वर्ष

"अपना कार्य कीजिए, किन्तु उसमें स्वयं को मत खोइए।"

— सक्रिय जीवन के लिए एक परामर्श

फिर वह लम्बी ऋतु आती है जिसमें एक जीवन का अधिकांश बिताया जाता है: निर्माण के वर्ष, स्वयं को स्थापित करने, परिवार पालने, वृत्तियाँ निर्मित करने, एक वयस्क अस्तित्व की संरचनाएँ संचित करने के दशक। यह अधिकतम सक्रियता और अधिकतम उलझाव की ऋतु है, और यह सरेखण के लिए एक विशेष चुनौती प्रस्तुत करती है जिसे चिन्तन-परम्पराओं ने, प्रायः उनके द्वारा आकारित जो ठीक इन्हीं उलझावों से प्रत्याहृत हो गए थे, सदा भली-भाँति सम्बोधित नहीं किया। अतः मैं इसे सीधे सम्बोधित करना चाहता हूँ, क्योंकि इस पुस्तक के अधिकांश पाठक इन वर्षों में जी रहे हैं, और एक जीवन के निर्माण के मध्य कैसे सरेखित हों यह प्रश्न कोई परिधीय नहीं है। यह एक वयस्क अस्तित्व के अधिकांश के लिए केन्द्रीय व्यावहारिक प्रश्न है।

निर्माण के वर्षों का परिभाषक तनाव यह है कि वे ठीक उस बाहरी, सक्रिय, उपलब्धिकारी संलग्नता की माँग करते हैं जो सरेखण के लिए आवश्यक आन्तरिक स्थिरता के विरुद्ध प्रतीत होती है। आप किसी गुफा में प्रत्याहृत नहीं हो सकते; आपके पास एक नौकरी है, एक परिवार, दायित्व, सक्रिय निर्माण के अधीन एक जीवन। और खतरा वास्तविक है: कि निर्माण निर्माता को निगल जाता है, कि बाहरी सक्रियता इतनी हावी हो जाती है कि आन्तरिक सरेखण पूर्णतः बाहर भीड़ दिया जाता है, कि कोई इन दशकों के अन्त में जागता है बहुत-कुछ निर्मित कर चुका होकर और निर्माण में स्वयं को खो चुका होकर। यह उत्पादक वर्षों का विशिष्ट विसरेखण है, और यह इतना सामान्यीकृत है कि यह सफलता के रूप में चलता है। अपने निर्माण के शिखर पर वह सम्पन्न, थका हुआ, भीतर से अनुपस्थित व्यक्ति इस ऋतु का विशिष्ट हताहत है।

*
**

कर्म से अलग नहीं, कर्म के भीतर संरेखण

समाधान वही है जो गीता ने प्रस्तुत किया और इस पुस्तक ने भर विकसित किया: कि निर्माण के वर्षों में संरेखण कर्म से प्रत्याहरण द्वारा नहीं बल्कि कर्म के प्रति आन्तरिक सम्बन्ध को रूपान्तरित करके पाया जाता है। निष्काम कर्म की सम्पूर्ण शिक्षा, हमें स्मरण रखना चाहिए, किसी भिक्षु को नहीं बल्कि युद्ध की पूर्वसन्ध्या पर एक योद्धा को दी गई थी — अपने निर्माण के वर्षों के शिखर पर एक व्यक्ति को, अपने जीवन के सर्वाधिक परिणामकारी कर्म का सामना करते हुए। गीता का आमूल दावा यह है कि गहनतम संरेखण ठीक पूर्ण संलग्नता के भीतर उपलब्ध है, उसके बावजूद नहीं, कर्म के परित्याग के बजाय परिणामों पर आसक्ति के त्याग के माध्यम से। निर्माण के वर्ष आपसे निर्माण रोकने की माँग नहीं करते। वे आपसे निर्माण में स्वयं को खोए बिना निर्माण करने की माँग करते हैं — फलों को हल्के से धारण करते हुए पूर्णता से कर्म करना, जो एकमात्र रूप है जो संरेखण एक सक्रिय जीवन के मध्य के व्यक्ति के लिए ले सकता है।

यह प्रत्याहरण से कठिनतर है, सरलतर नहीं, और मैं इसका सम्मान करना चाहता हूँ बजाय यह स्वाँग करने के कि सूत्र कठिनाई को विलीन कर देता है। माँगपूर्ण बाहरी कर्म में पूर्णतः संलग्न रहते हुए आन्तरिक संरेखण बनाए रखना अभ्यास के सर्वाधिक उन्नत रूपों में से है, किसी नौसिखिए का शॉर्टकट नहीं। किन्तु यह वह रूप है जिसकी निर्माण के वर्ष माँग करते हैं, और उनके लिए कोई ईमानदार विकल्प नहीं जिन्हें उन्हें जीना ही है। पिछले भाग के अभ्यास ठीक इसी के लिए अभिकल्पित हैं: वह प्रातःकालीन बैठक जो दिन के निर्माण के आरम्भ से पूर्व भूमि स्थापित करती है, दिन के संक्रमणों में ले जाया गया सचेत ठहराव, वह सान्ध्य पुनरावलोकन जो निर्माता को इस विषय में ईमानदार रखता है कि क्या वे अब भी अपने ही जीवन के प्रति उपस्थित हैं। ये किसी ऐसे व्यक्ति के अभ्यास नहीं जो प्रत्याहृत हो गया है। ये किसी ऐसे व्यक्ति के अभ्यास हैं जो निर्माण में विलीन होने से अस्वीकार करते हुए पूर्णता से निर्माण कर रहा है।

*
**

इस ऋतु की विशिष्ट आसक्तियाँ

प्रत्येक ऋतु की अपनी विशिष्ट आसक्तियाँ होती हैं, और निर्माण के वर्षों की अपनी हैं, तीक्ष्ण और विशिष्ट। उपलब्धि पर आसक्ति है — अगली उपलब्धि की, अगले पायदान की,

उस बाह्य चिह्न की आवश्यकता जो अन्ततः पर्याप्त का बोध प्रदान करेगा। सुरक्षा पर आसक्ति है — वह संचय जो कभी पूरी तरह आश्वस्त नहीं करता, क्योंकि जिस चिन्ता को यह सम्बोधित करता है वह वस्तुतः कभी संचित मात्रा के विषय में थी ही नहीं। और भूमिका के माध्यम से पहचान पर आसक्ति है — स्व का नौकरी, पदवी, कार्य के साथ संलयन, ऐसा कि कोई अब नहीं जानता कि वह उससे अलग कौन है जो वह करता है। इनमें से प्रत्येक निर्माण के वर्षों का सार्वभौमिक आसक्ति का विशेष रूप है, और प्रत्येक अब-परिचित ढंग से बोध को विकृत करता है, निर्माता की दृष्टि को एक तृष्णित भविष्य की ओर और उस वर्तमान की वास्तविकता से दूर मोड़ता हुआ, प्रायः काफ़ी अच्छी, जिसमें निवास करने के लिए वे अति प्रेरित हैं।

तब, निर्माण के वर्षों का संरेखण, अधिकांशतः निर्माण जारी रखते हुए इन विशिष्ट आसक्तियों को पहचानने और छोड़ने का कार्य है। उपलब्धि करना बन्द करना नहीं, बल्कि उपलब्धि करना बिना उपलब्धि को आपको पूर्ण करने की आवश्यकता के। सुरक्षा को त्यागना नहीं, बल्कि उसे इतने हल्के से धारण करना कि बोध हो कि जिस चिन्ता का यह पीछा करती है उसे उसकी किसी भी मात्रा से शान्त नहीं किया जा सकता। अपनी भूमिकाओं से अस्वीकार करना नहीं, बल्कि उनके द्वारा पूर्णतः अधिकृत होने से अस्वीकार करना, इस सजगता को जीवित रखना कि आप उसके नीचे कौन हैं जो आप करते हैं। अपना जीवन निर्मित कीजिए — यह आपका निर्मित करने को है, और निर्माण मार्ग के विरुद्ध नहीं बल्कि उसका ठीक क्षेत्र हो सकता है। केवल वैसे निर्माण कीजिए जैसे संरेखित निर्माता निर्माण करता है: निर्माण के प्रति पूर्णतः उपस्थित, उसमें पूर्णतः कुशल, और उस आसक्ति से पूर्णतः मुक्त जो एक जीवन के अच्छे कार्य को एक जीवन के शान्त आत्म-हास में बदल देती। वह स्वतन्त्रता, कर्म के भीतर धारण की गई, इस लम्बी और माँगपूर्ण ऋतु की सम्पूर्ण उपलब्धि है।

"निर्माण के वर्षों का खतरा यह है कि निर्माण निर्माता को निगल जाता है। किन्तु समाधान प्रत्याहरण नहीं है — गीता की शिक्षा एक योद्धा को दी गई थी, किसी भिक्षु को नहीं। पूर्णता से, कुशलता से, कार्य के प्रति उपस्थित निर्माण कीजिए; केवल इस ऋतु की विशिष्ट आसक्तियाँ छोड़िए — उपलब्धि पर, सुरक्षा पर, भूमिका-के-माध्यम-से-पहचान पर — जो एक जीवन के अच्छे कार्य को एक जीवन के शान्त आत्म-हास में बदल देती।"

अध्याय एक सौ छह

मध्य में लेखा-जोखा

"हमारे जीवन की यात्रा के मध्य में, मैंने स्वयं को एक अन्धकारमय
वन में पाया, सीधा मार्ग खोया हुआ।"

— दान्ते के अनुसार

निर्माण के वर्षों के मध्य कहीं, अनेक लोगों के लिए, एक प्रतिकलन आता है। इसे अनेक वस्तुएँ कहा गया है — अधेड़ावस्था का संकट, अपने सस्ते रूप में — किन्तु यह घिसा-पिटा वाक्यांश कुछ वास्तविक और, सम्यक् रूप से समझे जाने पर, गहन रूप से मूल्यवान को आच्छादित करता है। मध्य पर प्रतिकलन, इस पुस्तक की भाषा में, वह क्षण है जब आंशिक रूप से विसरेखित जीवन की संचित लागत अन्ततः अनदेखा करने के लिए अति प्रबल हो जाती है: जब वे उपलब्धियाँ जिन्हें पूर्णता प्रदान करनी थी प्राप्त की जा चुकी हैं और उन्होंने उसे प्रदान नहीं किया, जब इतने प्रयास से निर्मित संरचना ठीक सम्यक् संरचना न होने के रूप में प्रकट होती है, जब वह प्रश्न जिसे प्राक्कथन ने नाम दिया — एक कार्यात्मक जीवन के नीचे की शान्त असहजता — एक फुसफुसाहट से किसी ऐसी वस्तु में बढ़ता है जिससे आगे भागा नहीं जा सकता। यह अध्याय उस प्रतिकलन से भली-भाँति मिलने के विषय में है, क्योंकि इससे कैसे मिला जाता है यह बहुत-कुछ निर्धारित करता है जो आगे होता है।

पहले समझिए कि प्रतिकलन वस्तुतः क्या है, अपनी नाटकीय सतह के नीचे। यह प्रतिपुष्टि है। यह तन्त्र है जो, बढ़ते आग्रह के साथ, सूचित कर रहा है कि दिशा गलत रही है — कि निर्माण, चाहे कितना ही प्रभावशाली हो, किसी ऐसी वस्तु की ओर निर्माण करता रहा है जो वस्तुतः वह नहीं देती जो चाहा गया था, क्योंकि चाहना स्वयं मिथ्या-बोधित था। प्रतिपुष्टि के रूप में विफलता पर अध्याय के शब्दों में, प्रतिकलन एक सम्पूर्ण जीवन के संरेखण के विषय में वृहत्-पैमाने की प्रतिपुष्टि है, उस बिन्दु पर आता हुआ जहाँ इसका उपयोग करने का अभी समय है किन्तु जहाँ इसे अनदेखा करना बहुत कठिन हो गया है। यह संकट जैसा अनुभव होता

है, किन्तु इसका अधिक सटीक वर्णन सूचना के रूप में है — मूल्यवान, यहाँ तक कि अमूल्य सूचना, एक ऐसे प्रकार की जो केवल तभी आती है जब एक जीवन का इतना जिया जा चुका हो कि प्रकट हो सके कि उसकी दिशा सच्ची थी या नहीं।

*
**

प्रतिकलन के दो ढंग

प्रतिकलन दो ढंगों से जा सकता है, और विचलन एक मानव जीवन में सर्वाधिक परिणामकारी में से एक है। पहला ढंग वह है जिसका घिसा-पिटा वाक्यांश वर्णन करता है: प्रतिपुष्टि का बाह्य वस्तुओं के साथ एक समस्या के रूप में मिथ्या-बोध, जो सतह की एक उन्मत्त पुनर्व्यवस्था की ओर ले जाता है — नया अधिग्रहण, नया साथी, नाटकीय बाह्य परिवर्तन — इस आशा में कि बाहरी जीवन का एक भिन्न विन्यास अन्ततः वह देगा जो पिछले विन्यास ने नहीं दिया। यह प्रतिकलन गलत पढ़ा गया है, आन्तरिक विसंरक्षण के विषय में गहन प्रतिपुष्टि को बाह्य परिस्थिति के विषय में एक शिकायत समझा गया, और यह विशिष्ट रूप से विफल होता है, क्योंकि यह गलत परत को सम्बोधित करता है। जो व्यक्ति अपनी बाह्य वस्तुओं को पुनर्व्यवस्थित करके प्रतिकलन के प्रति प्रत्युत्तर देता है वह सामान्यतः वही असहजता नई व्यवस्था के भीतर अपनी प्रतीक्षा करते पाता है, क्योंकि वे विसंरक्षण को अपने साथ उसमें ले गए। उन्होंने निर्माण बदला और निर्माता को अपरिवर्तित रखा।

दूसरा ढंग प्रतिकलन से सम्यक् रूप से मिलना है: अन्ततः उस आन्तरिक विसंरक्षण को सम्बोधित करने के एक आमन्त्रण के रूप में जिसे प्रबल प्रतिपुष्टि सूचित कर रही है। यह कठिनतर प्रत्युत्तर है और फलप्रद। यह प्रतिकलन को अपनी परिस्थितियाँ बदलने के संकेत के रूप में नहीं बल्कि परिस्थितियों के प्रति अपने सम्बन्ध को बदलने के संकेत के रूप में मानता है — आसक्ति छोड़ने और उस बोध को सुधारने का आन्तरिक कार्य करने को, सम्भवतः पहली बार वास्तविक अत्यावश्यकता के साथ, जिस पर सम्पूर्ण जीवन निर्मित किया गया है। इस ढंग से पढ़ा गया, मध्य पर प्रतिकलन कोई विपदा नहीं बल्कि एक उद्घाटन है, सम्भवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्घाटन जो एक जीवन देता है: वह क्षण जब आसक्ति-मार्ग की निरर्थकता प्रकट करने के लिए इतना जिया जा चुका हो, और एक भिन्न मार्ग पर चलने के लिए इतना शेष रहता हो। अनेक लोगों का गम्भीर आन्तरिक कार्य ठीक यहीं आरम्भ होता है, एक ऐसे प्रतिकलन द्वारा अस्तित्व में बुलाया गया जिसे सही पढ़ने का वे सौभाग्य रखते थे।

*
**

अन्धकारमय वन में छिपा उपहार

प्रतिकलन में एक विशेष अनुग्रह उपलब्ध है जो किसी अन्य समय उपलब्ध नहीं, और यह किसी के लिए भी नाम देने योग्य है जो अभी अन्धकारमय वन से होकर गुजर रहा है। यौवन में, आसक्ति-मार्ग अभी परखा नहीं गया; कोई अभी भी विश्वास कर सकता है कि अगली उपलब्धि स्व को पूर्ण करेगी, क्योंकि किसी ने अभी इतना प्राप्त नहीं किया कि खोज सके कि यह नहीं करेगी। प्रतिकलन केवल तभी आता है जब आसक्ति-मार्ग का इतना चला जा चुका हो कि सिद्ध हो सके, किसी पुस्तक के प्रतिपादन के बजाय अपने ही अनुभव से, कि यह वहाँ नहीं ले जाता जहाँ इसने वचन दिया था। यह ठीक वह प्रकार का प्रथम-पुरुष सत्यापन है जिसकी यह पुस्तक भर माँग करती रही है — और प्रतिकलन उसे देता है, बिना माँगे, एक ऐसे बल से जिससे कोई तर्क मेल नहीं खा सकता था। अन्धकारमय वन में का व्यक्ति, अपनी ही जी गई निराशा से, ठीक वह आसक्ति से मोहभंग दिया गया है जिसकी सम्पूर्ण मार्ग को आवश्यकता है और जिसे युवा अभी धारण नहीं कर सकते। अन्धकारमय वन अन्धकारमय है, किन्तु यह वास्तविक यात्रा की देहली है, और सीधे मार्ग का खोना सच्चे मार्ग को पाने का आरम्भ है।

अतः यदि आप अभी प्रतिकलन में हैं — यदि उपलब्धियों ने नहीं दिया, यदि संरचना गलत अनुभव होती है, यदि असहजता अति प्रबल हो गई है — तो इसे अपनी बाह्य वस्तुओं की पुनर्व्यवस्था पर बर्बाद मत कीजिए, और इसे मात्र हास के रूप में निराश मत होइए। इसे वैसा ही पढ़िए जैसा यह है: सर्वाधिक मूल्यवान् प्रतिपुष्टि जो आपके जीवन ने अब तक उत्पन्न की, उस एक क्षण पर आती हुई जब आप इसका अभी भी पूर्णतः उपयोग कर सकते हैं। सीधा मार्ग खोया है क्योंकि यह कभी सच्चा मार्ग था ही नहीं; अन्धकारमय वन वह स्थान है जहाँ सच्चा मार्ग आरम्भ होता है। प्रतिकलन से एक संकट के बजाय एक उद्घाटन के रूप में मिलिए, इसे बाहर के बजाय भीतर की ओर मोड़िए, और इसे वह बनने दीजिए जो यह अनन्य रूप से बन सकता है — वह द्वार, एक जीवन के मध्य में छिपा, उस संरक्षण में जिसे सम्पूर्ण निर्माण, नीचे, वस्तुतः सम्पूर्ण समय खोज रहा था।

"मध्य पर प्रतिकलन संकट नहीं बल्कि प्रतिपुष्टि है — तन्त्र सूचित करता हुआ कि दिशा गलत थी, तब आता हुआ जब इसका उपयोग करने का अभी समय है। गलत मिला, यह बाह्य वस्तुओं को पुनर्व्यवस्थित करता है और वही असहजता नई व्यवस्था के भीतर प्रतीक्षा करते पाता है। सम्यक् मिला, यह भीतर की ओर मुड़ता है, और वह द्वार बन जाता है, एक जीवन के मध्य में छिपा, उस सरेखण में जिसे निर्माण सदा वस्तुतः खोज रहा था।"

अध्याय एक सौ सात

परिपक्वता के वर्ष

*"जीवन की दोपहर प्रातःकाल जितनी ही अर्थ से भरी है;
केवल उसका अर्थ और प्रयोजन भिन्न हैं।"*

— कार्ल युंग के अनुसार

प्रतिकलन से परे, यदि उससे भली-भाँति मिला गया है, परिपक्वता के वर्ष हैं — वे पश्चात्तवर्ती ऋतुएँ जिनमें बाहरी निर्माण स्वाभाविक रूप से धीमा होता है और एक भिन्न प्रकार का कार्य सम्भव और उपयुक्त हो जाता है। हमारी संस्कृति, निर्माण के वर्षों और उनके मूल्यों पर टिकी, इन पश्चात्तवर्ती ऋतुओं को केवल हास के रूप में देखने की प्रवृत्ति रखती है: सामर्थ्य का गिरना, संसार का सिकुड़ना, अन्त की ओर लम्बा क्षीणन। यह एक गहन गलत पठन है, और संरक्षण का विज्ञान इसे सुधारने में सहायता करता है। परिपक्वता के वर्ष केवल प्रातःकाल के शिखर से दोपहर का हास नहीं हैं। वे अपने ही कार्य, अपने ही उपहारों, और अपने ही संरक्षण के रूप के साथ एक विशिष्ट ऋतु हैं, प्रायः सबसे समृद्ध जो एक जीवन देता है।

विचार कीजिए कि इन वर्षों में क्या स्वाभाविक रूप से बदलता है, इस पुस्तक के झरोखे से पढ़ा गया। वह बाहरी आसक्ति जिसने निर्माण के वर्षों को चलाया, अपने आप, ढीली होने की प्रवृत्ति रखती है — आंशिक रूप से प्रतिकलन के पाठ के माध्यम से, आंशिक रूप से आसक्ति-मार्ग की सरल थकान के माध्यम से, आंशिक रूप से इस उदित होती पहचान के माध्यम से कि जिन भविष्यों की ओर कोई आसक्त हो रहा था वे अब अधिकांशतः पीछे हैं। यह ढीलापन, जिसे संस्कृति प्रेरणा की हानि के रूप में शोक करती है, वस्तुतः ठीक उस त्याग का स्वाभाविक परिपक्वता है जिसकी ओर सम्पूर्ण मार्ग कार्य करता रहा है। जो युवा को प्राप्त करने का श्रम करना पड़ता है — परिणाम पर पकड़ का ढीलापन — परिपक्वता के वर्ष प्रदान करने की प्रवृत्ति रखते हैं, यदि कोई इसे स्वीकार करे, स्वयं ऋतु के एक उपहार के रूप में।

पश्चात्तवर्ती वर्ष संरेखण के अनुकूल हैं, ठीक उस त्याग की ओर संरचनात्मक रूप से प्रवृत्त जिसके लिए पूर्व ऋतुओं को लड़ना पड़ा।

*
**

परिपक्वन के वर्षों का कार्य

यदि निर्माण के वर्षों का कार्य बाहरी निर्माण था, तो परिपक्वन के वर्षों का कार्य आन्तरिक आसवन है — एक जीवन के अनुभव को प्रज्ञा में एकत्रित करना, उन प्रतिरूपों को देखना जिन्हें केवल दीर्घ दृष्टि प्रकट करती है, उस संरेखण का गहराना जिसकी बाहरी सक्रियता का धीमा होना अब अनुमति देता है। यह वास्तविक कार्य है, आलस्य नहीं, और यह वह कार्य है जो पहले नहीं किया जा सकता था, क्योंकि इसके लिए ठीक वह संचित अनुभव और ढीली हुई आसक्ति आवश्यक है जो केवल ये वर्ष प्रदान करते हैं। परिपक्व होता व्यक्ति, अब निर्माण द्वारा अधिकृत नहीं, एक ऐसे ढंग से बोध करने के लिए स्वतन्त्र है जो निर्माता नहीं कर सकता था — सम्पूर्ण चाप देखने को, समझने को कि क्या महत्त्व रखता था और क्या नहीं, एक ऐसी गहराई से संरेखित होने को जिसे निर्माण के वर्षों के कोलाहल ने दबा दिया था। दोपहर का अर्थ प्रातःकाल के अर्थ से भिन्न है, जैसा उद्धरण कहता है, किन्तु यह कम नहीं है। अनेक प्रकारों से यह अधिक है, क्योंकि यह उस प्रातःकाल को सम्मिलित और अतिक्रमित कर सकता है जिसके परे प्रातःकाल अभी नहीं देख सकता था।

एक विशेष प्रकार का योगदान भी है जो इन वर्षों का है और किसी अन्य का नहीं: जो आसुत किया गया है उसका संचरण। परिपक्व होता व्यक्ति, सम्भावित रूप से, ठीक उस प्रज्ञा का स्रोत बन जाता है जिसे छोटे खोज रहे हैं — सलाह के आरोपण के माध्यम से नहीं, जो विरले ही संचरित होती है, बल्कि एक संरेखित जीवन की सरल उपस्थिति के माध्यम से जिसने सम्पूर्ण चाप चला है और जिसे साक्षी किया जा सकता है। यह उन पारम्परिक समाजों में वृद्ध का गहनतम अर्थ है जिन्होंने उस भूमिका का सम्मान किया: केवल वृद्ध नहीं, बल्कि परिपक्व हुए, वे जिनके दीर्घ संरेखण ने उन्हें उसके जीवित उदाहरण बना दिया है जिसकी ओर छोटे अभी पहुँच रहे हैं। गुरु-सिद्धान्त पर अध्याय ने इसे छुआ; यहाँ यह परिपक्वन के वर्षों के एक स्वाभाविक फल के रूप में प्रकट होता है, वह ढंग जिससे एक संरेखित हुआ जीवन, अपनी पश्चात्तवर्ती ऋतुओं में, उनके लिए एक शान्त शिक्षा बन जाता है जो अभी मार्ग पर हैं।

*
**

ऋतु के परिवर्तन के साथ संरेखण

परिपक्वन के वर्षों का विशिष्ट संरेखण स्वयं ऋतु के परिवर्तन के साथ संरेखण है — एक जीवन की उसके चाप से होकर स्वाभाविक गति की स्वीकृति, न आसक्त न निराशा। यहाँ उपलब्ध विसंरेखण ऋतु का अस्वीकरण है: लुप्त हुए निर्माण के वर्षों पर व्याकुल जकड़, एक ऐसी भूमिका को छोड़ने से अस्वीकार जिसका समय बीत गया, शरीर के स्वाभाविक परिवर्तनों के विरुद्ध युद्ध, एक ऐसी ऋतु में बने रहने का प्रयास जो समाप्त हो गई है। यह अपने पश्चात्तवर्ती रूप में आसक्ति है, और यह ठीक वह दुःख उत्पन्न करती है जो आसक्ति सदा उत्पन्न करती है, अब अपनी निरर्थकता से तीक्ष्ण, क्योंकि जकड़ की कोई मात्रा ऋतु के परिवर्तन को रोक नहीं रखती। संरेखित प्रत्युत्तर वही है जिसकी इस पुस्तक ने भर सलाह दी है, अब एक जीवन की सबसे बड़ी गति पर लागू: ऋतु की वास्तविकता का सच्चा बोध करना, बीतती ऋतु पर आसक्ति छोड़ना, और जो ऋतु आई है उसमें पूर्णता से प्रवेश करना, अपने भिन्न और कम नहीं उपहारों के साथ।

ऐसा किया गया, परिपक्वन के वर्ष वह बन जाते हैं जो वे बनने में समर्थ हैं: वह लम्बा क्षीणन नहीं जिससे हमारी संस्कृति भयभीत है, बल्कि वह ऋतु जिसमें एक जीवन, अन्ततः, अपने गहनतम संरेखण में आता है — आसक्ति स्वाभाविक रूप से ढीली हुई, बोध स्वाभाविक रूप से चौड़ा हुआ, प्रज्ञा स्वाभाविक रूप से आसुत हुई, सम्पूर्ण चाप अन्ततः देखे और समझे जाने के लिए और, देखने में, पूर्ण किए जाने के लिए उपलब्ध। फल केवल देर से पकता है; परिपक्वन का यही अर्थ है। संरेखण की ओर जिया गया जीवन निर्माण के वर्षों में शिखर पर नहीं पहुँचता और उसके पश्चात् हासित नहीं होता। यह अपने अन्त की ओर परिपक्व होता है, जाते हुए मीठा होता हुआ, पश्चात्तवर्ती ऋतुओं में एक ऐसी पूर्णता में आता हुआ जिसे पूर्व ऋतुएँ, अपने समस्त ओज के बावजूद, धारण नहीं कर सकती थीं। परिपक्वन के वर्षों से संरेखित होना उस मिठास को घटित होने देना है — ऋतु के परिवर्तन से लड़ना बन्द करना और, इसके बजाय, उन विशिष्ट और काफ़ी उपहारों को ग्रहण करना जो केवल एक जीवन की दोपहर दे सकती है।

"परिपक्वन के वर्ष मात्र हास नहीं बल्कि अपने ही कार्य के साथ एक विशिष्ट ऋतु हैं: अनुभव का प्रज्ञा में आन्तरिक आसवन, ठीक उस आसक्ति के ढीलेपन से सम्भव बनाया गया जिसे सम्पूर्ण मार्ग ने खोजा। फल केवल देर से पकता है। संरेखण की ओर जिया गया जीवन शिखर पर नहीं पहुँचता और हासित नहीं होता — यह अपने अन्त की ओर मीठा होता है, एक ऐसी पूर्णता में आता हुआ जिसे ओजपूर्ण पूर्व ऋतुएँ धारण नहीं कर सकती थीं।"

अध्याय एक सौ आठ

सम्पूर्ण चाप, एक साथ देखा गया

"केवल जब समग्र देखा जाता है तभी प्रत्येक भाग अपने स्थान में बैठता है।"

— पूर्णता पर एक चिन्तन

भाग का यह अन्तिम अध्याय अलग-अलग ऋतुओं से पीछे हटकर सम्पूर्ण चाप को एक साथ देखता है, क्योंकि एक सरेखण है जो केवल उस दृष्टि को उपलब्ध है जो एक सम्पूर्ण जीवन को निर्माण से अन्त तक समेटती है। इस अध्याय की संख्या — एक सौ आठ — आकस्मिक नहीं है; यह वह संख्या है जिसे परम्परा पवित्र मानती है, माला के मनकों की गिनती, वह पूर्णता जो आरम्भ की ओर एक वापसी भी है। मैंने ऋतुओं को यहाँ समाप्त करने की व्यवस्था सोद्देश्य रूप से की है, क्योंकि जो यह अध्याय देखता है वह ठीक चाप की पूर्णता है, वह ढंग जिससे सरेखण की ओर जिया गया जीवन शिखर से ह्रास तक एक रेखा नहीं बल्कि एक समग्र बनाता है, प्रत्येक ऋतु आवश्यक, प्रत्येक वह योगदान करती हुई जो केवल वह कर सकती थी, अन्त आरम्भ से मिलने के लिए पीछे मुड़ता हुआ।

समग्र रूप से देखा गया, चाप एक ऐसी संरचना प्रकट करता है जिसे कोई अकेली ऋतु अपने भीतर से बोध नहीं कर सकती। निर्माण का खुलापन, निर्माण के वर्षों की संलग्नता, मध्य पर प्रतिकलन, परिपक्वण के वर्षों का आसवन — ये कोई उठान और गिरान नहीं बल्कि गहराने की एक एकल गति हैं, जिसमें आत्मा, यदि हम शब्द का उपयोग कर सकें, अन्त में उस खुलेपन की ओर लौटती है जिसके साथ इसने आरम्भ किया, किन्तु अब उस हर वस्तु से भरी हुई जो यात्रा ने सिखाई। परिपक्व हुए वृद्ध की प्रज्ञा, एक अर्थ में, बालक का खुलापन पुनः पाया गया है — आरम्भ का कोमल, वास्तविकता का अनुसरण करता बोध, उस समस्त कवच और प्रतिकलन और त्याग के दूर छोर पर पुनः अर्जित जिसकी मध्य ऋतुओं को आवश्यकता थी। चाप एक रेखा से अधिक एक वृत्त है। हम समाप्त होते हैं, यदि हम भली-भाँति समाप्त होते हैं,

पुनः वह बन चुके होकर जो हम आरम्भ में थे, किन्तु ज्ञानपूर्वक, लौटने की सम्पूर्ण दूरी तय कर चुके होकर।

**

समग्र क्यों जिया जाना चाहिए

यही कारण है कि कोई ऋतु छोड़ी नहीं जा सकती, और कि वह अधीरता जो अन्त की प्रज्ञा की ओर सीधे छलाँग लगाएगी आत्म-पराजयकारी क्यों है। वृद्ध का खुलापन निर्माण के वर्षों के कवच के बिना नहीं पाया जा सकता जिससे उबरना है, और कवच को छोड़ा नहीं जा सकता क्योंकि यह उस संलग्नता का मूल्य है जिसके माध्यम से निर्माण के वर्ष अपना आवश्यक कार्य करते हैं। प्रतिकलन इससे पूर्व नहीं आ सकता कि जिससे प्रतिकलन किया जाए वह इतना निर्मित हो चुका हो। परिपक्व के वर्षों के आसवन के पास पूर्व ऋतुओं के पूर्ण अनुभव के बिना आसुत करने को कुछ नहीं। चाप कोई बाधा-दौड़ नहीं जिसे अन्त में एक पुरस्कार की ओर दौड़कर पार किया जाए; यह एक सावयव समग्र है, प्रत्येक ऋतु अगली की आवश्यक दशा, पूर्णता की प्रज्ञा केवल उस हर वस्तु के पूर्ण जीने से अर्जित जो उससे पूर्व है। सम्पूर्ण चाप को, उसके सम्यक् क्रम और सम्यक् ऋतु में, जीना स्वयं सरेखण है — यह स्वीकृति कि एक मानव जीवन उस ढंग से परिपक्व होता है जैसे प्रकृति में हर वस्तु परिपक्व होती है, अपने ही समय में, अपने ही आवश्यक चरणों के माध्यम से, और अपनी मिटास की ओर हड़बड़ाया नहीं जा सकता।

और यहाँ सम्पूर्ण पुस्तक का विज्ञान एक जीवन के आकार में एकत्रित होता है। ऋतु, वह व्यवस्था जिसका हमने ब्रह्माण्ड से श्वास तक अनुरेखण किया, स्वयं को एक मानव अस्तित्व के चाप में ठीक यही अभिव्यक्त करती है: एक ऐसी पूर्णता की ओर आवश्यक ऋतुओं से होकर एक स्वाभाविक गति जो आरम्भ में निहित थी। एक सम्पूर्ण जीवन भर उपलब्ध विसरेखण इस चाप के विरुद्ध युद्ध है — अपनी वास्तविक ऋतु का अस्वीकरण, बीती ऋतु पर आसक्ति या अभी न आई ऋतु के लिए अधीरता। सरेखण प्रत्येक ऋतु को उस ऋतु के रूप में जीना है जो वह है, पूर्णता से, न अतीत को जकड़ते हुए न भविष्य की ओर झपटते हुए, चाप का उस ढंग से विश्वास करते हुए जैसे कोई वर्ष के परिवर्तन का विश्वास करता है, यह जानते हुए कि प्रत्येक ऋतु का उपहार केवल उसकी ऋतु में उपलब्ध है और कि समग्र अच्छा है। इस प्रकार जिया गया जीवन केवल अपने क्षणों में नहीं बल्कि अपने सम्पूर्ण आकार में सरेखित

जीवन है — उस गहनतम व्यवस्था से संरेखित जो है, वह व्यवस्था जो समस्त वस्तुओं को उनके समय में परिपक्व करती है।

**

मैंने यह भाग प्रत्येक ऋतु में के पाठकों के लिए लिखा है, और मैं इसे प्रत्येक से बोलकर समाप्त करना चाहता हूँ। यदि आप निर्माण में हैं, तो अपने खुलेपन की रक्षा कीजिए; आपको इसे अन्त में समूचा चाहिए होगा। यदि आप निर्माण के वर्षों में हैं, तो पूर्णता से निर्माण कीजिए किन्तु निर्माण में विलीन मत होइए; प्रतिकलन देख रहा है। यदि आप प्रतिकलन में हैं, तो इसे सही पढ़िए, इसे भीतर की ओर मोड़िए, और अन्धकारमय वन को वह देहली बनने दीजिए जो यह है। यदि आप परिपक्वन के वर्षों में हैं, तो ऋतु के उपहार ग्रहण कीजिए और फल को मीठा होने दीजिए; समृद्धतर दोपहर के भीतर से प्रातःकाल का शोक मत कीजिए। और आपकी ऋतु जो भी हो, जानिए कि यह सम्यक् है, कि इसका कार्य अभी आपको उपलब्ध है, और कि सम्पूर्ण चाप, जिसका आपकी ऋतु एक आवश्यक अंग है, एक ऐसी पूर्णता की ओर झुकता है जिसे व्यवस्था स्वयं ले आएगी यदि आप केवल उस ऋतु से संरेखित होंगे जिसमें आप वस्तुतः हैं।

क्योंकि व्यवस्था आपसे अपने सम्पूर्ण जीवन को एक साथ प्रबन्धित करने की माँग नहीं करती, उससे अधिक नहीं जितना उसने आपसे, एक पूर्व अध्याय में, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को एक अकेली क्रिया में संरेखित करने की माँग की। यह केवल यह माँगती है कि आप उस ऋतु से संरेखित हों जिसमें आप हैं, उस ढंग से जैसे उसने आपसे उस श्वास से संरेखित होने को कहा जो आप ले रहे हैं — और वह, ऋतु-दर-ऋतु जैसे श्वास-दर-श्वास, वह ढंग है जिससे एक सम्पूर्ण जीवन उस व्यवस्था के साथ संरेखण में आता है जो उसे सदा वहन कर रही थी। आप पीछे नहीं हैं। आप आगे नहीं हैं। आप ठीक वहाँ हैं जहाँ चाप आपको लाया है, उस ऋतु में जो आपकी है, अपने कार्य और अपने उपहार के साथ अभी उपलब्ध। इसे समूचा जिएँ। चाप, श्वास की भाँति, ब्रह्माण्ड की भाँति, अपनी देखभाल स्वयं कर लेता है — एक बार में एक ऋतु, एक श्वास।

"समग्र रूप से देखा गया, एक जीवन एक रेखा से अधिक एक वृत्त है: हम समाप्त होते हैं, यदि हम भली-भाँति समाप्त होते हैं, पुनः वह खुलापन बन चुके होकर जिसके साथ हमने आरम्भ किया, किन्तु ज्ञानपूर्वक, लौटने की सम्पूर्ण दूरी तय कर चुके होकर। कोई ऋतु छोड़ी नहीं जा सकती; प्रत्येक अगली की आवश्यक दशा है। आप पीछे या आगे नहीं हैं — आप ठीक वहाँ हैं जहाँ चाप आपको लाया है, उस ऋतु में जो आपकी है, इसका उपहार अभी उपलब्ध।"

एक समापन संश्लेषण

एक व्यवस्था, हर ओर से देखी गई

"सत्य एक है; ज्ञानी उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।"

— ऋग्वेद 1.164.46

हम आरम्भिक अध्याय के सरल प्रयोग से बहुत दूर आ गए हैं — तीस सेकण्ड स्थिर बैठना और यह लक्षित करना कि शरीर बिना निर्देश के कार्य करता है। इन भागों भर हमने उस अकेले प्रेक्षण का उसकी छूती दूरतम पहुँचों तक बाहर की ओर अनुसरण किया है: भौतिकी की गहन संरचना में, जीवन की बहती व्यवस्था, स्वयं को सुधारता शरीर, पूर्वानुमानी मन, स्वयं-संगठनकारी समग्र में; श्वास और ब्रह्माण्ड के साथ उसकी समानुरूपता में; गीता के कर्म-विज्ञान में; उन सबसे कठिन आपत्तियों के माध्यम से जिनका ढाँचा सामना करता है; बाहर संगठनों, अर्थव्यवस्थाओं, तकनीकों, और समाजों में; एक जीवनपर्यन्त अभ्यास में; और एक मानव अस्तित्व के सम्पूर्ण चाप भर निर्माण से पूर्णता तक। पुस्तक के समाप्त होने से पूर्व, इस सबको एक एकल पहचान में एकत्रित करना सार्थक है, ताकि आप अन्तर्दृष्टियों का ढेर नहीं बल्कि वह एक वस्तु ले जाएँ जिसकी वे सब अभिव्यक्तियाँ थीं।

वह एक वस्तु यह है: कि वास्तविकता व्यवस्थित है, कि व्यवस्था अन्तर्भूत और सजीव और प्रत्येक पैमाने पर उपस्थित है, और कि मनुष्य ठीक उस मात्रा तक फलता-फूलता है जिस मात्रा तक वह एक ऐसी व्यवस्था से संरेखित होता है जिसे उसने न रचा और न आदेश दे सकता है, किन्तु जिसमें, प्रत्येक श्वास, उसे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। इस पुस्तक में हर वस्तु वही एकल पहचान रही है, एक भिन्न कोण से प्रकाश पकड़ने के लिए घुमाई गई। भौतिकविद की अपरिवर्त्यता और ऋषि का ऋतु; शरीर का समस्थापन और श्वास की संगति; गीता का स्वधर्म और नेता की छोड़ी गई आसक्ति; आसन पर अभ्यास और एक जीवन का चाप — ये सब एक व्यवस्था हैं, हर ओर से देखी गई। सत्य एक है, जैसा प्राचीन पंक्ति कहती है; ज्ञानियों ने केवल उसे अनेक नामों से पुकारा है, और इस पुस्तक ने उसे जितने ले सकती थी

उतने नामों से पुकारा है, इस आशा में कि उनमें से एक वह नाम हो सकता है जो आपके लिए पहचान खोल दे।

**

जो कभी दूर नहीं था

ले जाने योग्य सबसे गहन वस्तु यह है कि जिस व्यवस्था का वर्णन करने के लिए हमने इतनी दूर यात्रा की वह, एक भी क्षण के लिए, कभी दूर नहीं थी। हम भौतिकी की नींवों और ब्रह्माण्ड की संरचना तक गए, किन्तु व्यवस्था समान रूप से उपस्थित थी, सम्पूर्ण समय, उस श्वास में जो आपकी छाती में गति कर रही थी जब आप पढ़ रहे थे। यह श्वास को ऋत की सबसे छोटी इकाई कहने का अन्तिम अर्थ है: कि वह सम्पूर्ण विशाल व्यवस्था, नियमों के पीछे का नियम, वस्तुओं के हृदय का स्पन्दन, आपको निकटतम और विनम्रतम स्थान में पूर्ण उपलब्ध है, कोई यात्रा, कोई उपलब्धि, कोई विशेष दशा आवश्यक किए बिना — केवल ध्यान, केवल उसे लक्षित करने की तत्परता जिसने कभी घटित होना बन्द नहीं किया। आपको ब्रह्माण्ड तक पहुँचना नहीं है। ब्रह्माण्ड अभी आपके माध्यम से श्वास ले रहा है, जैसे यह इससे पूर्व ले रहा है कि आप उसे नाम दे सकते, और मार्ग का सम्पूर्ण उसका क्रमिक लक्षित करना है जो सदा पहले से ही स्थिति थी।

और इस प्रकार पुस्तक के पहले शब्द उसका अन्तिम अर्थ भी थे: आप खोए हुए नहीं हैं; आप विसरेखित हैं, और विसरेखण भी केवल एक सम्बन्ध है जिसे सुधारा जा सकता है, इस विषय में कोई तथ्य नहीं कि आप क्या हैं। आप जो हैं, कोलाहल और संस्कार और आसक्ति के नीचे, वह व्यवस्था की एक अभिव्यक्ति है — एक समुद्र की एक तरंग, एक प्रवाह में एक स्थिर प्रतिरूप, एक स्थान जहाँ ऋत स्वयं के प्रति सचेत हो आया है। संरेखण किसी विदेशी वस्तु की उपलब्धि नहीं है। यह किसी ऐसी वस्तु की पहचान है जो सदा आपकी अपनी गहनतम प्रकृति थी, आच्छादित किन्तु कभी अनुपस्थित नहीं, प्रत्येक विकृति के नीचे उस ध्यान की प्रतीक्षा करती हुई जो उसे पुनः दृश्य होने देता। इस सम्पूर्ण लम्बी पुस्तक ने उसी एकल घर-वापसी की ओर संकेत किया है, जो किसी दूरस्थ स्थान की यात्रा नहीं बल्कि वहाँ की वापसी है जहाँ आप सदा थे।

*

**

जोड़ने को कुछ शेष नहीं, और कभी अधिक था ही नहीं, अन्ततः, पहली पहचान से परे अन्तहीन रूप से उद्घाटित। व्यवस्था वास्तविक है। आप इसकी एक अभिव्यक्ति हैं। आपका दुःख विसरेखण का घर्षण है, और आपकी शान्ति उस क्षण उपलब्ध है जब आप, तनिक भी, उससे लड़ना बन्द करते हैं जो पहले से ही सत्य है। इसे सत्यापित किया जा सकता है, विश्वास नहीं — भौतिकी और शरीरक्रियाविज्ञान में यदि आप उस ओर प्रवृत्त हैं, किन्तु सर्वाधिक प्रत्यक्ष रूप से और सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप से अपने ही अनुभव में, उस अगली श्वास में जो आप सचेत रूप से लेते हैं, इस विचार और अगले के बीच के छोटे अवकाश में। सत्यापन सदा उपलब्ध है क्योंकि व्यवस्था सदा उपस्थित है। आपको केवल उसकी ओर मुड़ना है, और मुड़ते रहना है, श्वास-दर-श्वास, ऋतु-दर-ऋतु, एक ऐसे जीवन के शेष के लिए जो स्वयं उस व्यवस्था की एक और अभिव्यक्ति है जिससे यह संरेखित होना सीख रहा है।

तब, वहाँ आरम्भ कीजिए जहाँ आप सम्पूर्ण समय रहे हैं: यहाँ, इस श्वास में, इस क्षण में, उस एक व्यवस्था में जो आपको एक साथ थामे हुए है इससे पूर्व कि आप आए और बहुत बाद तक जारी रहेगी, और जो आपसे इसके अतिरिक्त कुछ नहीं माँगती कि आप, कभी-कभार, उससे लड़ना बन्द करें — और लक्षित करें, उस रुकने में, कि आप उसके एक अंग के अतिरिक्त कभी कुछ नहीं थे। वह लक्षित करना संरेखण है। वह संरेखण उस सम्पूर्ण का है जो इस पुस्तक के पास देने को था। और यह, सम्पूर्ण समय, पहले से ही आपका था।

"सत्य एक है; ज्ञानी उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। इस पुस्तक में हर वस्तु एक एकल पहचान रही है जो एक भिन्न कोण से प्रकाश पकड़ने के लिए घुमाई गई — कि वास्तविकता व्यवस्थित है, कि आप उस व्यवस्था की एक अभिव्यक्ति हैं, और कि संरेखण किसी विदेशी वस्तु की उपलब्धि नहीं बल्कि उसकी पहचान है जो सदा आपकी अपनी गहनतम प्रकृति थी, प्रत्येक विकृति के नीचे उस ध्यान की प्रतीक्षा करती हुई जो उसे पुनः दृश्य होने देता।"

भाग चौबीस

एक व्यवस्था, अनेक झरोखे:

संसार की परम्पराओं भर ऋत

एक व्यवस्था, अनेक झरोखे			
स्वतन्त्र परम्पराएँ, एक भू-भाग — एक वास्तविक व्यवस्था की अँगुली-छाप			
ऋत वैदिक भारत	ताओ चीन	लोगोस यूनान	प्रज्ञा एवं समर्पण अमाहमी भारत
समस्त परिवर्तन के नीचे की अनाभूत व्यवस्था	वह मार्ग जिसका समस्त वस्तुएँ अनुसरण करती हैं	प्रवाह के नीचे की विवेकापूर्ण व्यवस्था	प्रज्ञा: सृष्टि की व्यवस्था
धर्म: उसके प्रति मानवीय प्रत्युत्तर	यू.पैई: सहज, अविच्छाद्य कर्म	हेराक्लिटस द्वारा चुनी, स्टोइक द्वारा जी गई	इस्लाम: इच्छा का संरक्षण
समस्त नामकरण से पूर्ण	वह जलसारा जो शुद्धता और प्रसरण होती है	प्लिन के साथ अचिन्तित विवेक	लोगोस को केन्द्रीय बनाया गया

स्वतन्त्र परम्पराएँ, एक भू-भाग

भाग चौबीस — सिंहावलोकन

अध्याय एक सौ नौ

ताओ और जलधारा का मार्ग

*"सर्वोच्च भलाई जल के समान है, जो समस्त वस्तुओं को
लाभ पहुँचाता है और विवाद नहीं करता।"*

— ताओ ते चिंग

एक पूर्व अध्याय ने, संक्षेप में, सर्वेक्षण किया कि ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की पहचान संसार की परम्पराओं भर कैसे पुनः आती है। यह अन्तिम भाग उस विषय की ओर अधिक गहराई से लौटता है, एक बार में थोड़ी-सी परम्पराएँ लेते हुए और प्रत्येक को ऋत के ढाँचे के विरुद्ध ध्यान से पढ़ते हुए — यह दावा करने को नहीं कि वे सब विस्तार में एक ही वस्तु कहती हैं, जो मिथ्या और उनके वास्तविक भेदों के प्रति अनादरपूर्ण होता, बल्कि यह दिखाने को कि गहन संरचना कितनी उल्लेखनीय रूप से पुनः आती है, और कि प्रत्येक परम्परा संरक्षण के एक ऐसे पहलू को प्रकाशित करती है जिसे अन्य छाया में छोड़ देती हैं। मैं चीनी परम्परा से आरम्भ करता हूँ, और विशेष रूप से ताओ से, क्योंकि किसी अन्य परम्परा ने संरक्षण की गतिकी का वर्णन इतनी मितव्ययिता और लालित्य से नहीं किया।

ताओ — मार्ग — है, ऋत की भाँति, कुख्यात रूप से अनुवाद करना कठिन, और उसी कारण से: यह किसी वस्तु को नहीं बल्कि स्वयं वास्तविकता की अन्तर्निहित व्यवस्था और गति को नाम देता है, वह क्रम जिसका समस्त वस्तुएँ अनुसरण करती हैं जब वे अपने ही स्वभाव का अनुसरण करती हैं। शास्त्रीय ग्रन्थ का आरम्भ चेतावनी देता है कि वह ताओ जो बोला जा सकता है शाश्वत ताओ नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे वैदिक ऋषियों ने माना कि ऋत समस्त मानवीय नामकरण से पूर्व है और उससे परे है। यहाँ आरम्भ में ही दो परम्पराएँ हैं, एक महाद्वीप की चौड़ाई और पूर्णतः स्वतन्त्र विकास से पृथक्, दोनों एक ऐसी परम व्यवस्था की ओर संकेत करती हुई जो भाषा से पूर्व है, जो समस्त वस्तुओं के बीच से चलती है, और जिससे

ज्ञानी आदेश देने के बजाय सरेखित होते हैं। अभिसरण शब्दावली में नहीं है, जो पूर्णतः भिन्न है। यह पहचान की संरचना में है, जो वही है।

**

वू वेई और सहज सरेखण

जहाँ ताओ-परम्परा इस पुस्तक के ढाँचे को सर्वाधिक प्रकाशित करती है वह उसकी केन्द्रीय व्यावहारिक शिक्षा में है: वू वेई, सामान्यतः अकर्म या सहज कर्म के रूप में अनुवादित। यह ठीक वह सहज कर्म है जिसका हमने प्रयास से प्रवाह की ओर बढ़ने पर भाग में परीक्षण किया, और ताओ-परम्परा उसकी गतिकी का वर्णन सम्भवतः किसी भी अन्य से अधिक सुन्दरता से करती है। वू वेई का अर्थ कुछ न करना नहीं है; इसका अर्थ है किसी परिस्थिति के स्वभाव के साथ ऐसे अनुसार कर्म करना कि कर्म को कोई बलप्रयोग, वस्तुओं की धारा के विरुद्ध कोई संघर्ष आवश्यक न हो — वह ढंग जिससे जल किसी पर्वत से नीचे अपना मार्ग प्रयास से नहीं बल्कि उन रूपरेखाओं का अनुसरण करके पाता है जो पहले से ही वहाँ हैं। यह ऋत के साथ सरेखण है जो गति के एक ढंग के रूप में वर्णित है: उस अनावश्यक प्रतिरोध का विराम जिसे इस पुस्तक ने, अपने पहले ही अध्याय में, घर्षण के स्रोत के रूप में नाम दिया।

जल का बिम्ब, जिसकी ओर ताओ-परम्परा बार-बार लौटती है, सरेखित जीवन के अब तक प्रस्तुत किए गए सर्वाधिक परिशुद्ध वर्णनों में से एक है। जल विवाद नहीं करता; यह झुकता है, और झुकने में, प्रबल होता है। यह जो भी इसे रखता है उसका आकार ले लेता है, सबसे निचला स्थान पाता है, बाधाओं को कूटने के बजाय उनके चारों ओर बहता है — और फिर भी, समय के साथ, यह पत्थर के माध्यम से घाटियाँ तराशता है। यह सरेखण का वह विरोधाभास है जिसके चारों ओर यह पुस्तक भर घूमती रही है: कि छोड़ा गया, अनासक्त, अविवादी मार्ग दुर्बल नहीं बल्कि परम रूप से शक्तिशाली है, क्योंकि यह वस्तुओं की व्यवस्था के विरुद्ध के बजाय उसके साथ काम करता है। आसक्त व्यक्ति वास्तविकता के विरुद्ध कूटता है और थक जाता है; सरेखित व्यक्ति जल की भाँति बहता है और, जल की भाँति, वह सम्पन्न करता है जो बल नहीं कर सकता था। ताओ-परम्परा ने इसे पूर्ण स्पष्टता से देखा और इसे एक ऐसा बिम्ब दिया जिसे किसी ने सुधारा नहीं।

**

ताओ ऋत में क्या जोड़ता है

प्रत्येक परम्परा कुछ ऐसा प्रकाशित करती है जिसे अन्य धुँधला छोड़ देती हैं, और ताओ-परम्परा ऋत की वैदिक दृष्टि में जो जोड़ती है वह, मेरा विचार है, संरेखण की गतिकी के विषय में एक विशेष सौम्यता है — यह पहचान कि मार्ग का अनुसरण उसकी ओर प्रयास करके नहीं बल्कि उसके विरुद्ध प्रयास करना बन्द करके किया जाता है, कि सबसे कोमल वस्तुएँ सबसे कठोर पर विजय पाती हैं, कि ऋषि बहुत कुछ ठीक विवाद न करके सम्पन्न करता है। जहाँ वैदिक और गीता परम्पराएँ कभी-कभी अनुशासन और प्रयास पर बल दे सकती हैं, ताओ-परम्परा ग्रहणशील, झुकने वाले, सहज की ओर झुकती है, संरेखण को आसक्त उपलब्धि का एक और क्षेत्र बना देने की किसी भी प्रवृत्ति को सुधारती हुई। दोनों दृष्टियाँ एक साथ किसी भी अकेली से अधिक पूर्ण हैं: एक की कठोरता दूसरे की सौम्यता से सन्तुलित, संरेखण का अनुशासित अभ्यास इस पहचान से सन्तुलित कि संरेखण अन्ततः पाने के बजाय एक छोड़ना है।

मैं यह दावा नहीं करता कि ताओ और ऋत समरूप हैं; चीनी और भारतीय परम्पराओं ने भिन्न तत्त्वमीमांसा, भिन्न अभ्यास, भिन्न बल विकसित किए, और उन्हें एकरूपता में ढहाना दोनों का अनादर होता। जो मैं दावा करता हूँ वह गहन संरचना की पुनरावृत्ति है: कि मानवता की दो सर्वाधिक गहन परम्पराओं ने, स्वतन्त्र रूप से उठती हुई, दोनों ने समस्त वस्तुओं के बीच से चलती एक परम व्यवस्था को पहचाना, दोनों ने सिखाया कि प्रज्ञा उससे आदेश देने के बजाय संरेखित होने में है, और दोनों ने उस संरेखण का वर्णन विवाद के एक त्याग के रूप में किया, विरुद्ध के बजाय साथ बहने के रूप में, वस्तुओं के स्वभाव के साथ एक सहज अनुरूपता के रूप में। जब स्वतन्त्र परम्पराएँ गहन संरचना पर इतनी ठीक-ठीक अभिसरित होती हैं जबकि सतह और शब्दावली में पूर्णतः भिन्न होती हैं, तो अभिसरण प्रमाण है — स्वतन्त्र आगमन के उस परीक्षण से जो इस पुस्तक ने प्रस्तावित किया — कि दोनों किसी वास्तविक वस्तु की ओर संकेत कर रही हैं जिसे किसी ने आविष्कृत नहीं किया। जल पृथ्वी के प्रत्येक पर्वत से नीचे उसी ढंग से बहता है।

"ताओ, ऋत की भाँति, समस्त नामकरण से पूर्व एक व्यवस्था को नाम देता है — और इसकी वू वेई की शिक्षा संरेखण का वर्णन विवाद के विराम के रूप में करती है, जल का वह मार्ग जो झुकता है और इस प्रकार प्रबल होता है। दो परम्पराएँ, स्वतन्त्र रूप से पहुँची हुई, गहन संरचना पर अभिसरित होती हैं जबकि सतह में पूर्णतः भिन्न होती हैं। जल पृथ्वी के प्रत्येक पर्वत से नीचे उसी ढंग से बहता है।"

लोगोस: वह व्यवस्था जिसे यूनानियों ने सुना

"मुझे नहीं बल्कि लोगोस को सुनते हुए, यह सहमत होना
बुद्धिमानी है कि समस्त वस्तुएँ एक हैं।"

— हेराक्लाइटस

अब पश्चिम की ओर मुड़िए, यूनानी दार्शनिक परम्परा की नींवों की ओर जिससे यूरोपीय चिन्तन का इतना अधिक उतरता है, और पहचान पुनः प्रकट होती है, एक और स्वतन्त्र शब्दावली में। पूर्व-सुकराती दार्शनिक हेराक्लाइटस, लगभग उसी युग में लिखते हुए जिसमें उपनिषद् संसार के दूसरी ओर आकार ले रहे थे, ने एक ऐसे शब्द का उपयोग किया जो ढाई सहस्राब्दियों तक पश्चिमी चिन्तन भर गूँजेगा: लोगोस। इसका अनुवाद सामान्यतः शब्द, विवेक, या विवरण के रूप में किया जाता है, किन्तु हेराक्लाइटस में इसका अर्थ कुछ ऋत के कहीं अधिक निकट है — ब्रह्माण्ड की अन्तर्निहित विवेकपूर्ण व्यवस्था, संगति का वह सिद्धान्त जिसके अनुसार समस्त वस्तुएँ घटित होती हैं, वह संरचना जिसके लिए ज्ञानी प्रतीतियों के प्रवाह के नीचे सुनते हैं।

हेराक्लाइटस अपने सतत प्रवाह के सिद्धान्त के लिए प्रसिद्ध है — यह शिक्षा कि समस्त वस्तुएँ बहती हैं, कि कोई एक ही नदी में दो बार पाँव नहीं रख सकता, कि वास्तविकता अविराम परिवर्तन है। किन्तु यह उसकी दृष्टि का केवल आधा है, और जो आधा सामान्यतः भुला दिया जाता है वह हमारे प्रयोजनों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। प्रवाह के नीचे, हेराक्लाइटस ने माना, लोगोस है: एक अपरिवर्ती व्यवस्था जो परिवर्तनशील का शासन करती है, एक छिपा सामंजस्य जो दृश्य से अधिक शक्तिशाली है, एक संगति जिसके अनुसार समस्त बहना घटित होता है। यह ठीक वह संरचना है जिसका हमने उस व्यवस्था पर अध्याय में परीक्षण किया जिसे जीवन उधार लेता है — यह पहचान कि वास्तविकता बहती व्यवस्था है, एक अन्तर्निहित स्थिरता द्वारा शासित परिवर्तन, वह नदी जो अपना रूप ठीक इसलिए बनाए रखती है कि यह कभी गति

करना बन्द नहीं करती। हेराक्लाइटस ने, पच्चीस शताब्दियों पूर्व, वह देखा जिसे स्वयं-संगठन का विज्ञान बाद में औपचारिक करेगा: कि प्रवाह और व्यवस्था विरोधी नहीं बल्कि जुड़े हैं, कि गहनतम व्यवस्था एक गतिशील है।

*
**

वह व्यवस्था जिसे सुना जाना चाहिए

हेराक्लाइटस में जो उल्लेखनीय है, और जो उसे इस पुस्तक के ढाँचे के साथ इतना अनुनादित बनाता है, वह उसका यह आग्रह है कि लोगोस को सुना जाना चाहिए — कि यह सबको उपलब्ध है, हर वस्तु में उपस्थित, और फिर भी अधिकांश द्वारा चूका हुआ, जो जीते हैं, जैसा उसने कहा, मानो सोए हुए, प्रत्येक एक निजी संसार में, उस साझी व्यवस्था का बोध करने में विफल जो हर जगह उनके चारों ओर और भीतर है। यह विसरेखण की भाषा है जैसा इस पुस्तक ने उसका उपयोग किया है: व्यवस्था उपस्थित है, अन्तर्भूत, उपलब्ध, और फिर भी अधिकांश लोग उसके अनुसार से बाहर जीते हैं, इसलिए नहीं कि यह छिपी है बल्कि इसलिए कि वे उस पर ध्यान देने में विफल होते हैं, अपने ही संस्कार के निजी स्वप्न में खोए हुए। हेराक्लाइटस के सोए हुए इस पुस्तक के विसरेखित हैं — एक ऐसी व्यवस्था से घिरे जिसका वे बोध नहीं कर सकते क्योंकि उन्होंने उसके लिए अपने ही पृथक् संसारों के कोलाहल के नीचे सुनना कभी नहीं सीखा।

जिस उपचार की ओर हेराक्लाइटस संकेत करता है वह, अपनी संरचना में, इस सम्पूर्ण पुस्तक का उपचार है: जागना, अपनी निजी धारणाओं के बजाय लोगोस को सुनना, अपनी समझ को उस साझी व्यवस्था के अनुसार में लाना जो सदा पहले से ही वहाँ है। ज्ञानी, वह कहता है, सहमत होते हैं कि समस्त वस्तुएँ एक हैं — अविभेदित एकरूपता के अर्थ में एक नहीं, बल्कि एकल संगत व्यवस्था द्वारा शासित होने के अर्थ में एक, एकल लोगोस की अभिव्यक्तियाँ। यह वह पहचान है जिसे इस पुस्तक के समापन संश्लेषण ने नाम दिया: सत्य एक है, व्यवस्था एकल है, और प्रज्ञा किसी के अपने बोध और जीवन का उस एक व्यवस्था के साथ सरेखण है जो अनेकों को अन्तर्निहित करती है। एक यूनानी, सामान्य युग से पूर्व छठी शताब्दी में सुनते हुए, वही सुना जो वैदिक ऋषियों ने सुना, और उसे एक भिन्न नाम से पुकारा।

*
**

स्टोइक उत्तराधिकार

हेराक्लाइटस का लोगोस स्टोइकों द्वारा उत्तराधिकार में पाया गया और विकसित किया गया, और उनके हाथों में यह संरेखण के एक सम्पूर्ण दर्शन के बहुत निकट कुछ बन गया, उल्लेखनीय इसलिए कि यह पहचान को गीता के उल्लेखनीय रूप से समानान्तर एक व्यावहारिक नैतिकता में ले आया। स्टोइकों ने माना कि ब्रह्माण्ड लोगोस द्वारा, एक विवेकपूर्ण व्यवस्थाकारी सिद्धान्त द्वारा शासित है, और कि अच्छे जीवन का गठन उसके अनुसार जीने में है — अपनी इच्छा को वस्तुओं के स्वभाव के साथ संरेखित करने में, बजाय उसके विरुद्ध कुढ़ने के जिसे कोई नियन्त्रित नहीं कर सकता। उनकी केन्द्रीय व्यावहारिक शिक्षा, इस बीच का भेद कि क्या हमारी शक्ति में है और क्या नहीं, और जो उससे बाहर है उसे समता से स्वीकार करने का परामर्श, संरचनात्मक रूप से गीता की पूर्णता से कर्म करते हुए फलों के प्रति आसक्ति छोड़ने की शिक्षा के समरूप है। दो परम्पराएँ, यूनानी और भारतीय, स्वतन्त्र रूप से उसी व्यावहारिक निष्कर्ष पर पहुँचीं: कि शान्ति इच्छा को व्यवस्था के साथ संरेखित करने में है, जो किसी का करना है उसे करने में, और शेष को उस ब्रह्माण्ड पर छोड़ने में जो उसका शासन करता है।

मैं स्टोइक समानान्तर को विशेष रूप से मूल्यवान पाता हूँ क्योंकि यह प्रदर्शित करता है कि ऋत की पहचान केवल रहस्यमय या चिन्तनपरक परम्पराओं की सम्पत्ति नहीं है, बल्कि कठोर, विवेकवादी, इस-लौकिक दर्शन में समान रूप से उठती है। स्टोइक रहस्यवादी नहीं थे; वे कठोर-मस्तिष्क विचारक थे जो इससे सम्बद्ध थे कि एक कठिन संसार में भली-भाँति कैसे जिया जाए, और वे, विवेक से, ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के साथ संरेखण के एक ऐसे दर्शन पर पहुँचे जिसे एक वैदिक ऋषि तुरन्त पहचान लेता। यह सर्वाधिक प्रबल प्रकार का स्वतन्त्र आगमन है — दो चिन्तनपरक परम्पराओं का अभिसरण नहीं, जिसे एक सन्देहवादी चिन्तनपरक अनुभव की साझी संरचना को आरोपित कर सकता है, बल्कि एक चिन्तनपरक परम्परा और एक विवेकवादी दर्शन का पूर्णतः भिन्न विधियों से उसी गहन पहचान पर अभिसरण। जो लोगोस यूनानियों ने सुना और जो ऋत ऋषियों ने देखा वे हैं, अपनी भिन्न शब्दावलियों और भिन्न विधियों के नीचे, वही व्यवस्था, एक ऐसी मानवता द्वारा दो बार पहचानी गई जिसने अभी नहीं सीखा था कि वह एक ही वस्तु को देख रही थी।

"हेराक्लाइटस ने, प्रवाह के नीचे, एक अपरिवर्ती लोगोस सुना — ब्रह्माण्ड की विवेकपूर्ण व्यवस्था जिसके लिए सुना जाना चाहिए, और जिसे अधिकांश चूक जाते हैं, निजी संसारों में मानो सोए हुए जीते हुए। स्टोइकों ने उसे गीता के प्रायः समरूप एक व्यावहारिक नैतिकता बना दिया। एक चिन्तनपरक परम्परा और एक विवेकवादी दर्शन, भिन्न विधियों से अभिसरित होते हुए, एक व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं।"

अध्याय एक सौ ग्यारह

अब्राहमी धारा में व्यवस्था

"उसने हर वस्तु को उसके समय में सुन्दर बनाया है।"

— सभोपदेशक 3:11

अब्राहमी परम्पराएँ — यहूदी, ईसाई, और इस्लामी — पहली बार, इस पुस्तक के ढाँचे के लिए सबसे कम अनुकूल प्रतीत हो सकती हैं, क्योंकि वे एक ऐसे वैयक्तिक ईश्वर पर केन्द्रित हैं जो आदेश देता है बजाय एक अवैयक्तिक व्यवस्था के जो केवल है। यह एक वास्तविक भेद है, और मैं इसे न्यून नहीं करूँगा; एक आदेश देते सृष्टिकर्ता की आस्तिक दृष्टि एक अन्तर्भूत व्यवस्था की वैदिक दृष्टि से सच्चे रूप से भिन्न है, और भेद उनके लिए महत्त्व रखते हैं जो इन आस्थाओं को धारण करते हैं। किन्तु भेद के नीचे, एक ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की पहचान जिसके साथ मानव जीवन को सरेखित होना ही चाहिए यहाँ भी पुनः आती है, शक्तिशाली रूप से, और उसके लिए पढ़ना इन परम्पराओं में ऐसी गहराइयाँ प्रकट करता है जिन्हें आदेश-और-पालन का एक सतही पठन पूर्णतः चूक जाता है।

हिब्रू प्रज्ञा की संकल्पना — प्रज्ञा (खोख्मा) — पर विचार कीजिए जैसा यह प्रज्ञा-साहित्य में प्रकट होती है। नीतिवचन की पुस्तक में, प्रज्ञा को संसार की सृष्टि के समय उपस्थित के रूप में व्यक्तित्व दिया गया है, वह सिद्धान्त जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड व्यवस्थित किया गया, सृष्टि में आनन्दित और उसमें हर्षिता। यह उल्लेखनीय रूप से ऋत के निकट है: आरम्भ से उपस्थित एक व्यवस्थाकारी सिद्धान्त, जिसके अनुसार वास्तविकता संरचित है, जिससे ज्ञानी स्वयं को सरेखित करते हैं और मूर्ख उपेक्षा करते हैं। यहूदी धर्म के भीतर प्रज्ञा-परम्परा ठीक सरेखण की एक परम्परा है — सृष्टि की गहन व्यवस्था के अनुसार जीना सीखने की, समयों और ऋतुओं का बोध करने की, वास्तविकता की धारा के विरुद्ध के बजाय उसके अनुसार कर्म करने की। उद्धरण में सभोपदेशक की पंक्ति, हर वस्तु के लिए ऋतु पर अपने महान मनन के

साथ, ठीक उस चाप-के-साथ-संरेखण का एक स्तोत्र है जिसका इस पुस्तक के पिछले भाग ने वर्णन किया।

**

देहधारी लोगोस, और भीतर की व्यवस्था

ईसाई धारा में, वह यूनानी लोगोस जिसका हमने अभी परीक्षण किया सीधे लिया गया और यूहन्ना के सुसमाचार के ठीक आरम्भ में रखा गया: आरम्भ में लोगोस था। यहाँ ब्रह्माण्ड का हेराक्लाइटसी व्यवस्थाकारी सिद्धान्त ईश्वरीय के साथ और, ईसाई पठन में, मसीह के व्यक्तित्व के साथ अभिज्ञात किया जाता है — एक गहन धार्मिक विकास जिसके विशिष्ट विवरण इस पुस्तक की सीमा और सामर्थ्य से कहीं परे हैं। किन्तु संरचनात्मक बिन्दु धर्मशास्त्र के नीचे दृश्य रहता है: यह पहचान कि एक लोगोस है, एक व्यवस्थाकारी सिद्धान्त, जिसके माध्यम से समस्त वस्तुएँ अस्तित्व में आईं और जिसके अनुसार वे टिकाई जाती हैं। ईसाई रहस्यमय परम्परा ने, विशेष रूप से, संरेखण के अभ्यास विकसित किए — चिन्तनपरक प्रार्थना, अन्तःकरण की परीक्षा, आन्तरिक स्थिरता का संवर्धन — जो इस पुस्तक के अभ्यासों के उल्लेखनीय निकटता से समानान्तर हैं, सब आत्मा को उस ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार में लाने के लिए लक्षित जिससे वह विमुख हो गई थी।

इस्लामी परम्परा सम्भवतः सबसे प्रत्यक्ष भाषाई समानान्तर प्रस्तुत करती है। शब्द इस्लाम का स्वयं अर्थ समर्पण है — मानवीय इच्छा का ईश्वरीय व्यवस्था के साथ संरेखण, स्वयं को उस ढंग के अनुसार में लाना जैसी वस्तुएँ ईश्वर के अधीन सच्चे रूप से हैं। और इस्लाम के भीतर सूफी रहस्यमय परम्परा ने इसे इस पुस्तक के ढाँचे के साथ असाधारण रूप से अनुनादित कुछ में विकसित किया: श्वास के, स्मरण के, आसक्त अहं के ईश्वरीय के अनुसार में विलय के, मानव हृदय के भीतर प्रतिबिम्बित ब्रह्माण्डीय व्यवस्था को पाने के अभ्यास। सूफी कवियों ने ठीक उस आसक्ति के त्याग, विवादी स्व के विलय, एक विशाल व्यवस्था के साथ संरेखण के गीत गाए, जिसका इस पुस्तक ने अन्य शब्दों में वर्णन किया है। जब रूमी — जिसके शब्द इसी पुस्तक के दूसरे अध्याय को खोलते हैं — ने उस नरकट के विषय में लिखा जो नरकट-शय्या से फाड़ा गया लौटने के लिए रोता है, तो वह विसंरेखण की पीड़ा और उस पुनर्संरेखण की अभिलाषा का गीत गा रहे थे जो इन पृष्ठों का सम्पूर्ण विषय है।

**

धार्मिक भेद के नीचे

मैं यहाँ सावधान और सम्मानपूर्ण रहना चाहता हूँ, क्योंकि एक आस्तिक दृष्टि और ऋत की अन्तर्भूत-व्यवस्था दृष्टि के बीच के भेद वास्तविक हैं और उनके लिए अमूल्य हैं जो उन्हें धारण करते हैं, और मेरी लाखों की आस्था को एक दार्शनिक अमूर्तन में चपटा करने की कोई इच्छा नहीं जो मेरे तर्क की सेवा करे। एक आस्तिक जो एक वैयक्तिक, प्रेममय ईश्वर की इच्छा के साथ संरेखित होता है उसका वही अनुभव नहीं है जो एक वैदिक ऋषि का एक अवैयक्तिक ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के साथ संरेखित होते हुए, और अन्यथा स्वाँग करना ठीक वही लापरवाह समन्वयवाद होता जिसके विरुद्ध इस पुस्तक के अपहरण पर अध्याय ने चेतावनी दी। परम्पराएँ भिन्न हैं, सच्चे रूप से, उस स्तर पर जो उनके अनुयायियों के लिए सर्वाधिक महत्त्व रखता है।

और फिर भी, सच्चे धार्मिक भेद के नीचे, संरचनात्मक पहचान अचूक रूप से पुनः आती है: कि वास्तविकता व्यक्ति से बड़े एक सिद्धान्त द्वारा व्यवस्थित है; कि मानव दुःख अधिकांशतः उस व्यवस्था के अनुसार से बाहर जीने से उठता है; कि मानवीय कार्य संरेखित होना है — चाहे कोई संरक्षण को समर्पण नाम दे, या आज्ञापालन, या प्रज्ञा, या लोगोस के साथ अनुरूपता; और कि यह संरक्षण एक ऐसी शान्ति लाता है जो वास्तविकता के विरुद्ध विवाद कभी नहीं ला सकता। चाहे व्यवस्था एक वैयक्तिक ईश्वर की इच्छा के रूप में अनुभव की जाए या एक अवैयक्तिक ब्रह्माण्ड की अन्तर्भूत संरचना के रूप में, संरक्षण का जिया गया आकार — आसक्त स्व का त्याग, जो बड़ा है उसके साथ अनुरूपता, जो शान्ति अनुसरण करती है — पहचानने योग्य रूप से वही आकार है, परम्परा-दर-परम्परा प्रकट होता हुआ। सत्य एक है, ऋग्वेद कहता है, और ज्ञानी उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। अब्राहमी धारा उसे महान शक्ति और सौन्दर्य के नामों से पुकारती है, और उन नामों के नीचे, एक व्यवस्था किसी के लिए भी पहचानने योग्य है जो शब्दावली के नीचे स्वयं पहचान की संरचना को देखने को तत्पर है।

"एक वैयक्तिक ईश्वर और एक अवैयक्तिक व्यवस्था के बीच के सच्चे और अमूल्य भेदों के नीचे, संरचनात्मक पहचान पुनः आती है: वास्तविकता स्व से बड़े एक सिद्धान्त द्वारा व्यवस्थित है; दुःख उसके अनुसार से बाहर जीने से उठता है; और कार्य संरेखित होना है — समर्पण, आज्ञापालन, प्रज्ञा, या लोगोस के साथ अनुरूपता नामित। संरक्षण का जिया गया आकार पहचानने योग्य रूप से वही है।"

अध्याय एक सौ बारह

एक व्यवस्था, अनेक झरोखे

"जैसे भिन्न धाराएँ, भिन्न स्रोत रखती हुई, सब अपना जल समुद्र में मिला देती हैं,
वैसे ही विविध मार्ग केवल तुझ तक ले जाते हैं।"

— एक पारम्परिक संस्कृत प्रार्थना

भाग का यह अन्तिम अध्याय, और पुस्तक के नए अध्यायों में अन्तिम, अन्तर-पारम्परिक सर्वेक्षण को एक निष्कर्ष में एकत्रित करता है, और मैं उस निष्कर्ष को परिशुद्धता से कहना चाहता हूँ, क्योंकि ग़लत निकालना सरल है। ग़लत निष्कर्ष यह है कि समस्त परम्पराएँ वस्तुतः एक ही हैं, कि उनके भेद सतही हैं, कि कोई प्रत्येक से थोड़ा ले सकता है और उन्हें सुविधा की एक व्यक्तिगत आध्यात्मिकता में मिला सकता है। यह वह नहीं है जो परम्पराओं भर ऋत की पुनरावृत्ति निहित करती है, और स्पष्ट रूप से कहना सार्थक है कि क्यों, इससे पूर्व कि वह निष्कर्ष निकाला जाए जिसका पुनरावृत्ति समर्थन करती है।

परम्पराएँ एक समान नहीं हैं। वे अपनी तत्त्वमीमांसा, अपने अभ्यासों, परम की अपनी संकल्पनाओं, मानवीय दुर्दशा और उसके समाधान की अपनी समझों में भिन्न हैं। एक बौद्ध का अनात्म और एक ईसाई की शाश्वत आत्मा एक ही शिक्षा नहीं हैं; एक ताओवादी का अवैयक्तिक मार्ग और एक मुसलमान का वैयक्तिक ईश्वर परस्पर विनिमेय नहीं हैं; भेद गहरे चलते हैं और एक आलसी सर्वधर्मवाद द्वारा ढाँपे नहीं जाने हैं जो सबका सम्मान करने का स्वाँग करके उनमें से किसी का सम्मान नहीं करता। प्रत्येक परम्परा एक पूर्ण और संगत समग्र है, सहस्राब्दियों भर विकसित, अपनी ही शर्तों पर समझे जाने की माँग करती हुई, और साधक की सामान्यतः अनेक को सरसरी तौर पर देखने से कहीं बेहतर सेवा एक में गहरे जाकर होती है। परम्पराओं भर ऋत की पुनरावृत्ति आध्यात्मिक पर्यटन का अनुज्ञापत्र नहीं है।

*
**

पुनरावृत्ति वस्तुतः क्या दिखाती है

पुनरावृत्ति जो दिखाती है वह एकरूपता से कुछ अधिक रोचक और अधिक अनुशासित है। यह दिखाती है कि अपने सच्चे भेदों के नीचे, महान परम्पराएँ सब उसी वास्तविकता के प्रति प्रत्युत्तर दे रही हैं — कि वे एक भू-भाग पर भिन्न झरोखे हैं, भिन्न भू-भाग नहीं। झरोखे भिन्न हैं: उनका आकार, उनका काँच, वह कोण जिससे वे देखते हैं, भू-भाग का वह भाग जिसे प्रत्येक सबसे स्पष्ट रूप से चौखटाता है। और ये भेद वास्तविक और परिणामकारी हैं; प्रत्येक झरोखे से दृश्य सच्चे रूप से भिन्न है, और कोई दृश्यों को केवल एक एकल संयुक्त में नहीं मिला सकता बिना उसे खोए जो प्रत्येक झरोखे का विशेष कोण प्रकट करता है। किन्तु यह एक भू-भाग है जिस पर वे सब देखते हैं। वह व्यवस्था जिसे वैदिक ऋषियों ने ऋत कहा, चीनियों ने ताओ कहा, यूनानियों ने लोगोस कहा, हिब्रुओं ने प्रज्ञा के रूप में सम्पर्क किया, मुसलमानों ने उस व्यवस्था के रूप में जिसके प्रति कोई समर्पण करता है — यह अनेक व्यवस्थाएँ नहीं बल्कि एक है, अनेक झरोखों से देखी गई, प्रत्येक झरोखा जो वह देखता है उसके प्रति सच्चा और कोई समग्र को न देखता हुआ।

यही कारण है कि इस भाग में अनुरेखित अभिसरण संयोग के बजाय प्रमाण गठित करते हैं, ठीक स्वतन्त्र आगमन के उस परीक्षण से जो पुस्तक ने प्रतिरूप-मिलान के आरोप का सामना करते समय प्रस्तावित किया। यदि एक अकेली परम्परा ने संरक्षण की एक ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का वर्णन किया, तो यह एक सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट निर्माण हो सकता था, एक कहानी जो एक जाति ने स्वयं को सुनाई। किन्तु जब वे परम्पराएँ जो सच्ची स्वतन्त्रता में विकसित हुईं — महाद्वीपों, भाषा, विधि, सम्पूर्ण सभ्यतागत ढाँचों से पृथक् — सब एक ऐसी ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की पहचान पर पहुँचती हैं जिसके साथ मानव जीवन को संरक्षित होना ही चाहिए, तो सबसे मितव्ययी व्याख्या यह नहीं कि उन सबने स्वतन्त्र रूप से वही कल्पित आविष्कृत किया। यह कि वे सब किसी वास्तविक वस्तु को देख रही थीं। झरोखे भिन्न हैं क्योंकि देखने वाले भिन्न हैं; भू-भाग स्थिर है क्योंकि वास्तविकता एक है। पुनरावृत्ति एक वास्तविक व्यवस्था की अँगुली-छाप है, उन सबकी स्वतन्त्र गवाही में दबाई गई जिन्होंने ध्यान से देखा है।

*
**

वह झरोखा जो यह पुस्तक प्रस्तुत करती है

और यह वर्तमान पुस्तक को, अन्ततः, उसकी सम्यक् और विनम्र स्थिति में रखता है। यह पुस्तक भी, एक झरोखा है — भू-भाग नहीं, अन्तिम सत्य नहीं, महान परम्पराओं का

प्रतिस्थापन नहीं, बल्कि एक व्यवस्था पर एक और झरोखा, एक विशेष क्षण और एक विशेष प्रकार के पाठक के लिए चौखटाया गया। इसका विशिष्ट कोण वही है जो डॉ. कलाम के प्रश्न ने इसे निर्धारित किया: प्राचीन व्यवस्था को आधुनिक विज्ञान के काँच से देखने का प्रयास, उस साधक को दिखाने का जो भौतिकी और शरीरक्रियाविज्ञान का विश्वास करता है कि वह ऋत जिसका ऋषियों ने वर्णन किया दृश्य है, अपने ही ढंग से, प्रयोगशाला के झरोखे से भी और गुफा के झरोखे से भी। यह इस पुस्तक का योगदान है और एक स्थान का इसका एकमात्र दावा — यह नहीं कि यह भू-भाग को महान परम्पराओं से बेहतर देखती है, जो हास्यास्पद होता, बल्कि यह कि यह उनके लिए एक झरोखा प्रस्तुत करती है जो, पहले, भू-भाग को वहाँ से नहीं देख सकते थे जहाँ वे खड़े थे।

यदि पुस्तक ने अपना कार्य कर लिया है, तो इसने आपको कोई नया सत्य नहीं दिया बल्कि आपको देखने में सहायता की, सम्भवतः एक ऐसे झरोखे से जिससे आप वस्तुतः देख सकते थे, वह एक व्यवस्था जिस पर समस्त झरोखे देखते हैं और जो, सम्पूर्ण समय, आपकी अपनी श्वास जितनी आपके निकट थी। विविध मार्ग एक समुद्र तक ले जाते हैं, जैसा पुरानी प्रार्थना कहती है; विविध झरोखे एक भू-भाग को चौखटाते हैं; विविध नाम एक व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। जो भी झरोखा आपका है उसमें गहरे जाइए — यह, या कोई अन्य, या वह महान परम्परा जिसमें आप जन्मे या जिसे आपने चुना। किन्तु जानिए, जैसे आप देखते हैं, कि जो आप देख रहे हैं वह आपके झरोखे की सम्पत्ति नहीं है। यह एक वास्तविकता है, व्यवस्थित और सजीव, जिसे मानव इतिहास में प्रत्येक ध्यानपूर्ण देखने वाले ने झलका और नाम दिया है, और जो आपसे, जिस भी झरोखे पर आप खड़े हैं उससे, केवल वही माँगती है जो इसने उन सबके माध्यम से माँगा है: कि आप इसके विरुद्ध विवाद करना बन्द करें, और संरेखित हों — और खोजें, उस संरेखित होने में, कि आप सदा पहले से ही उस एक व्यवस्था के एक अंग थे जिसे आप देखना सीख रहे थे।

"परम्पराएँ एक समान नहीं हैं — वे एक भू-भाग पर भिन्न झरोखे हैं। झरोखे सच्चे रूप से भिन्न हैं; भू-भाग स्थिर है क्योंकि वास्तविकता एक है। यह पुस्तक एक और झरोखा है, उनके लिए कोणित जो गुफा के साथ-साथ प्रयोगशाला का भी विश्वास करते हैं। जो आप देखते हैं वह आपके झरोखे की सम्पत्ति नहीं, बल्कि वह एक व्यवस्था है जिसे इतिहास में प्रत्येक ध्यानपूर्ण देखने वाले ने झलका और नाम दिया है।"

भाग पच्चीस
समय के पार एक पत्र

अध्याय एक सौ तेरह

भविष्य के पाठक के नाम पत्र

"मैं एक ऐसे पाठक के लिए लिखता हूँ जिससे मैं कभी नहीं मिलूँगा, एक ऐसे समय में जिसे मैं कभी नहीं देखूँगा, एक ऐसी व्यवस्था के विषय में जो हम दोनों से अधिक टिकती है।"

— लेखक

मैं इस पुस्तक को इसके तर्क से बाहर निकलकर और आपसे सीधे बोलकर समाप्त करना चाहता हूँ, आप जो भी हों, जब भी आप इसे पढ़ रहे हों। जब तक ये शब्द आप तक पहुँचेंगे, मैं वृद्ध हो सकता हूँ, या जा चुका; आपके चारों ओर का संसार वह हो सकता है जिसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता था; तकनीकें, संकट, मानव जीवन की ठीक बुनावट पहचान से परे बदल चुकी हो सकती है। मैं नहीं जान सकता। किन्तु मैं एक वस्तु विश्वास से जानता हूँ, और यह वह वस्तु है जिसके विषय में यह सम्पूर्ण पुस्तक रही है: कि आपके संसार में जो भी बदला हो, व्यवस्था नहीं बदली है। श्वास अभी भी आपकी छाती में वैसे ही गति करती है जैसे मेरी में गति करती थी। ब्रह्माण्ड अभी भी उसी ऋतु द्वारा एक साथ टिका है। और सरेखण और उसके विपरीत के बीच का चयन अभी भी, आपके लिए जैसे मेरे लिए, सबसे गहन चयन है जो एक मनुष्य करता है। जो भी दूरी हमें पृथक् करती है उसके पार, हम उसे साझा करते हैं, और यह आपको लिखने के लिए पर्याप्त है।

मैंने सोचा है, यह लिखते हुए, कि जब तक आप इसे पढ़ेंगे तब तक क्या बुरी तरह पुराना पड़ चुका होगा। विज्ञान, निश्चय ही, स्थानों पर — जिन विशिष्ट निष्कर्षों पर मैंने टेक लगाई वे परिष्कृत, सुधारे, सम्भवतः उलट दिए जा चुके होंगे, जैसे निष्कर्ष सदा होते हैं, और मैंने यह चिह्नित करने का प्रयास किया कि कौन-से दावे अनन्तिम थे ताकि आप उन्हें ज्यों-ज्यों प्रमाण बढ़ता घटा सकें। उदाहरण पुराने अनुभव होंगे; जिन तकनीकों की मैंने चिन्ता की वे विचित्र लगेंगी या अन्यो को स्थान दे चुकी होंगी जिनका मैं पूर्वानुमान नहीं कर सका। उस सबको हल्के से लीजिए। यह मचान था, इमारत नहीं। जो मुझे आशा है पुराना नहीं पड़ा — जो मेरा विश्वास

नहीं कि पुराना पड़ सकता है, क्योंकि यह तब भी पुराना था जब ऋग्वेद ने इसे नाम दिया और तब भी युवा होगा जब हमारे नाम भुला दिए जाएँगे — वह केन्द्रीय पहचान है: कि आप खोए हुए नहीं हैं, कि आप एक ऐसी व्यवस्था की अभिव्यक्ति हैं जो कभी विफल नहीं हुई, और कि आपका दुःख उससे लड़ने का घर्षण है जिससे आप बने हैं।

**

यदि मैं केवल एक वस्तु कह सकता तो क्या कहता

यदि मैं दूरी के पार पहुँच सकता और आपसे केवल एक वस्तु कह सकता, तो यह होती: रुकिए, कभी-कभार, और अपनी श्वास को लक्षित कीजिए। एक तकनीक के रूप में नहीं, एक अभ्यास के रूप में नहीं जिसे आपको सही ढंग से करना है, पहले से ही कार्यों से भरे एक जीवन में एक और कार्य के रूप में नहीं। केवल रुकिए, कभी-कभार, और लक्षित कीजिए कि आप श्वास ले रहे हैं, और कि आपने इसे आरम्भ नहीं किया और न इसे बनाए रख रहे हैं, और कि कुछ विशाल और विश्वसनीय और बुद्धिमान आपके माध्यम से श्वास ले रहा है और सम्पूर्ण समय ले रहा रहा है। उस सरल लक्षित करने में सम्पूर्ण पुस्तक है। हर अन्य वस्तु — भौतिकी, गीता, आपत्तियाँ, ऋतुएँ, परम्पराएँ — उस लक्षित करने के अकेले क्षण का विस्तार है, जिसमें वह व्यवस्था जो ब्रह्माण्ड को चलाती है बन जाती है, एक क्षण के लिए, कुछ ऐसा जिसे आप अपनी ही छाती में अनुभव कर सकते हैं। यदि आप हर अन्य वस्तु भूल जाएँ जो मैंने लिखी, तो रुकना और श्वास को लक्षित करना स्मरण रखिए। यह आपको शेष सिखा देगी।

मेरे पास यह जानने का कोई उपाय नहीं कि इस पुस्तक ने आपको एक सरल ऋतु में पाया या एक कठिन में। यदि इसने आपको सुगमता में पाया, तो मैं प्रसन्न हूँ, और मैं केवल यह माँगता हूँ कि आप अभ्यास को अब जड़ पकड़ने दें, जब यह सस्ता है, ताकि यह पहले से ही वहाँ हो जब कठिन ऋतु आए, जैसे यह आएगी। और यदि इसने आपको कठिनाई में पाया — शोक में, भय में, एक प्रतिकलन के अन्धकारमय वन में, उन समयों में से एक में जब जीवन सबसे कठिन दबाता है — तो मैं चाहता हूँ कि आप जानें कि व्यवस्था कठिनाई में सुगमता से कम उपस्थित नहीं है। यह तब प्रत्याहृत नहीं होती जब चीजें कठिन हों। वह श्वास जो आपको स्थिर करती है सबसे बुरे घट्टे में सबसे अच्छे की भाँति उपलब्ध है, और यह संरेखण जिसका यह पुस्तक वर्णन करती है कोई अच्छे-मौसम की विलासिता नहीं बल्कि ठीक तब सर्वाधिक अमूल्य है जब हर अन्य वस्तु छीन ली गई हो। आप जिस भी ऋतु में हों, व्यवस्था उसमें आपके साथ है। यह सदा थी।

**

समय के पार एक न्यास

एक वस्तु है जिसे मैं इस तथ्य के विषय में मार्मिक पाता हूँ कि एक पुस्तक एक पहचान को समय के पार एक व्यक्ति से दूसरे तक ले जा सकती है जो कभी नहीं मिलेंगे। जिन वैदिक ऋषियों पर मैंने टेक लगाई वे समस्त पुनःप्राप्ति से परे जा चुके हैं, उनके नाम अधिकांशतः खोए हुए, उनका संसार पूर्णतः लुप्त — और फिर भी जो उन्होंने पहचाना वह मुझ तक पहुँचता है, हजारों वर्षों के पार, अक्षुण्ण, क्योंकि यह किसी ऐसी वस्तु के विषय में सत्य था जो नहीं बदलती। मैं, यह लिखते हुए, केवल उस संचरण की लम्बी शृंखला में एक और कड़ी हूँ: कोई जिसने प्राप्त किया, और एक पहचान को आगे बढ़ाने का प्रयास कर रहा है जो हममें से किसी की नहीं और सबकी है। और आप, पढ़ते हुए, अगली कड़ी हैं, चाहे आप इसे कभी शब्दों में आगे बढ़ाएँ या केवल यहाँ पढ़ी किसी वस्तु के कारण कुछ अधिक संरक्षण में जिए गए जीवन के शान्त उदाहरण में।

अतः यह आपके लिए मेरा न्यास है, जो भी समय हमें विभाजित करता है उसके पार। मैंने पहचान को निष्ठा से ले जाने का प्रयास किया है, अपने ही युग का ज्ञान जो जोड़ सकता था उसे बिना फुलाए जोड़ने का, ईमानदारी से चिह्नित करने का जहाँ मैं अनिश्चित था, और कठिन माँगों को रगड़कर हटाने के बजाय अक्षुण्ण रखने का। जो मैं नहीं कर सका वह इसे आपके लिए जीना था; वह भाग सदा आपका होने वाला था। व्यवस्था वास्तविक है, और उपस्थित, और आपकी अपनी श्वास से अधिक निकटा क्या आप उससे संरक्षित होते हैं यह वह एक वस्तु है जो कोई पुस्तक आपकी ओर से नहीं कर सकती — वह एक वस्तु जो सदा थी, और रहती है, पूर्णतः आप पर निर्भर। मैंने वह किया है जो एक पुस्तक कर सकती है। शेष आपका है, आपके समय में, आपकी श्वास में, उस एक व्यवस्था में जो हम दोनों को थामती है यद्यपि हम कभी नहीं मिलेंगे। भले रहिए। व्यवस्था आपके साथ जाती है। यह अन्यथा नहीं कर सकती थी, क्योंकि आप इसके एक अंग हैं, और सदा थे।

"आपके संसार में जो भी बदला हो, व्यवस्था नहीं बदली है: श्वास अभी भी आपकी छाती में वैसे ही गति करती है जैसे मेरी में गति करती थी। मैंने वह किया है जो एक पुस्तक कर सकती है — पहचान को निष्ठा से ले गया, चिह्नित किया जो अनन्तिम था, माँगों को अक्षुण्ण रखा। शेष सदा आपका था। भले रहिए। व्यवस्था आपके साथ जाती है; यह अन्यथा नहीं कर सकती थी, क्योंकि आप इसके एक अंग हैं।"

अध्याय एक सौ चौदह

यदि आप केवल यही पृष्ठ पढ़ें

"अन्त में, केवल सरलतम वस्तुएँ ही सत्य हैं।"

— एक समापन विचार

पुस्तकें लम्बी हैं, और जीवन व्यस्त हैं, और मैं अवगत हूँ कि कुछ पाठक यहाँ बहुत-कुछ छोड़कर पहुँचेंगे, और कि अन्य, अब से वर्षों बाद, पुस्तक को यादृच्छिक रूप से खोल सकते हैं और केवल इस पृष्ठ पर उतर सकते हैं। अतः मुझे एक पृष्ठ लिखने दीजिए जो अपने आप पर खड़ा है — इसका सम्पूर्ण, सम्पीडित, उस पाठक के लिए जिसके पास केवल यह है। यदि यह एकमात्र पृष्ठ है जो आप पढ़ते हैं, तो यह पर्याप्त है, क्योंकि हर अन्य वस्तु केवल यही थी, उद्धाटित।

वास्तविकता व्यवस्थित है। बाहर से आरोपित नहीं, कठोर नहीं, मृत नहीं — बल्कि अन्तर्भूत, सजीव, और प्रत्येक पैमाने पर उपस्थित, आकाशगंगाओं के घूमने से आपके हृदय की धड़कन तक उस श्वास तक जो आपमें गति कर रही है जब आप यह वाक्य पढ़ते हैं। भारत के प्राचीन ऋषियों ने इस व्यवस्था को ऋतु कहा। भौतिकविद इसकी गहनतम परत को अपरिवर्त्यता कहते हैं; चीनियों ने इसे ताओ कहा; यूनानियों ने, लोगोसा नाम भिन्न हैं। व्यवस्था एक है, और यह वास्तविक है, और आप इसकी उपस्थिति को सबसे सरल ढंग से सत्यापित कर सकते हैं जो है: एक क्षण स्थिर बैठकर और यह लक्षित करके कि आपका शरीर कार्य करता है, श्वास लेता है, जीता है, आपसे एक भी निर्देश के बिना। कुछ आपको टिका रहा है। वह कुछ वह व्यवस्था है जिसे इस पुस्तक ने ऋतु कहा है।

*

**

आप इस व्यवस्था से पृथक् नहीं हैं। आप इसकी एक अभिव्यक्ति हैं — एक समुद्र की एक तरंग, एक स्थान जहाँ व्यवस्था संक्षिप्त रूप से स्वयं के प्रति सचेत हो गई है। और यहाँ

आपकी दुर्दशा का सम्पूर्ण और इसका सम्पूर्ण समाधान एक एकल पहचान में है: आपका दुःख वास्तविकता द्वारा उत्पन्न नहीं है, जो व्यवस्थित और संगत है और आपके विरुद्ध नहीं। आपका दुःख उस व्यवस्था के साथ सरेखण से बाहर जीने का घर्षण है जिससे आप बने हैं — उन परिणामों पर आसक्ति जिन्हें आप नियन्त्रित नहीं कर सकते, उससे लड़ना जो पहले से ही सत्य है, स्पष्ट देखने के बजाय भय और संस्कार की विकृतियों के माध्यम से बोध करना। आप टूटे हुए नहीं हैं। आप खोए हुए नहीं हैं। आप विसरेखित हैं, और विसरेखण इस विषय में कोई तथ्य नहीं कि आप क्या हैं बल्कि एक सम्बन्ध है जिसे सुधारा जा सकता है।

तब, सरेखण किसी विदेशी या दूरस्थ वस्तु की उपलब्धि नहीं है। यह अनावश्यक प्रतिरोध का त्याग है — वास्तविकता के विरुद्ध युद्ध का क्रमिक विराम, ताकि जो पहले से ही सत्य है वह दृश्य हो सके और जो पहले से ही समग्र है वह बिना घर्षण के कार्य कर सके। आपको व्यवस्था के साथ अपना सरेखण रचना नहीं है। आपको केवल उससे दूर हटना बन्द करना है। और आरम्भ करने के लिए सबसे निकट स्थान, वह स्थान जो सदा उपलब्ध है और आपसे ध्यान के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगता, श्वास है। उसे धीमा कीजिए, उसे लक्षित कीजिए, उसकी ओर लौटिए। उस सरल वापसी में, व्यवस्था कुछ ऐसी बन जाती है जिसे आप अनुभव कर सकते हैं, और सरेखण, जो इन समस्त पृष्ठों भर इतना भव्य सुनाई दिया, एक अकेली सचेत श्वास जितना छोटा और जितना निकट बन जाता है।

**

यही सम्पूर्ण पुस्तक है। व्यवस्था वास्तविक है; आप इसके अंग हैं; आपका दुःख इससे लड़ने का घर्षण है; और घर का मार्ग उस लड़ाई का धैर्यपूर्ण, जीवनपर्यन्त, श्वास-दर-श्वास त्याग है, जब तक कि सरेखण कुछ ऐसा न हो जिसे आप अभ्यासित करते हैं बल्कि केवल कैसे आप जीते हैं। हर अन्य वस्तु — विज्ञान और शास्त्र, आपत्तियाँ और ऋतुएँ, लम्बे अध्याय और ध्यानपूर्ण तर्क — केवल यही थी, अधिक धीरे कही गई, उनके लिए जिन्हें छोटे सत्य तक पहुँचने के लिए लम्बा मार्ग चाहिए था। यदि आपके पास केवल यह पृष्ठ है, तो आपके पास सत्य है। शेष केवल उसकी ओर यात्रा के लिए संगति थी।

अतः आरम्भ कीजिए, अब, जहाँ आप हैं, उस श्वास के साथ जो आप ले रहे हैं जब आप यह वाक्य समाप्त करते हैं। इसे लक्षित कीजिए। आपने इसे आरम्भ नहीं किया। कुछ विशाल और विश्वसनीय आपके माध्यम से श्वास ले रहा है, जैसे यह आपके सम्पूर्ण जीवन भर ले रहा रहा है, जैसे यह समस्त वस्तुओं के माध्यम से लेता है, जैसे यह आपके और मेरे जाने

के बहुत बाद तक लेगा। इससे लड़ना बन्द कीजिए, तनिक भी, और आप वह अनुभव करेंगे जिसकी ओर यह सम्पूर्ण पुस्तक सम्पूर्ण समय संकेत कर रही थी: कि आप कभी खोए नहीं थे, कभी पृथक् नहीं, कभी व्यवस्था के बाहर नहीं — केवल, कुछ समय के लिए, यह भूलते हुए कि आप सदा पहले से ही इसके एक अंग थे। स्मरण कीजिए। वह स्मरण संरेखण है। और यह, पहले पृष्ठ से इस पृष्ठ तक, एकमात्र वस्तु थी जो इस पुस्तक को कभी कहनी थी।

"वास्तविकता व्यवस्थित है; आप इसकी एक अभिव्यक्ति हैं; आपका दुःख उससे लड़ने का घर्षण है जिससे आप बने हैं; और घर का मार्ग उस लड़ाई का श्वास-दर-श्वास त्याग है। यही सम्पूर्ण पुस्तक है। शेष केवल एक ऐसे सत्य की ओर यात्रा के लिए संगति थी जो सदा इतना सरल था, और सदा पहले से ही आपका।"

उपसंहार: वह श्वास जो कभी नहीं रुकती

"पहला शब्द लिखे जाने से पूर्व, ऋत पहले से ही श्वास ले रहा था। अन्तिम शब्द पढ़े जाने के पश्चात्, ऋत अभी भी श्वास ले रहा होगा। आप, इसे अभी पढ़ते हुए, इसकी श्वासों में से एक हैं।"

— अनिल पाण्डेय

यह पुस्तक एक श्वास के साथ आरम्भ हुई। इसके पहले पृष्ठों में वर्णित श्वास नहीं — वह स्वचालित, स्वयं-टिकाऊ जैविक प्रक्रिया जो एक सजीव मनुष्य में ऋत की सर्वाधिक तात्कालिक अभिव्यक्ति है। बल्कि पहचान की श्वास: वह क्षण जिसमें कुछ जो सचेत ध्यान की देहली के नीचे कार्य कर रहा था अकस्मात् दृश्य हो जाता है। ऋत सदा वहाँ था। धर्म सदा सम्भव था। यह सरेखण जिसका यह पुस्तक वर्णन करती है हर उस जीवन के हर दिन के हर क्षण में उपलब्ध रहा है जो कभी जिया गया।

वह श्वास जो आप अभी ले रहे हैं कोई रूपक नहीं है। यह उसकी सर्वाधिक शब्दशः सम्भव अभिव्यक्ति है जिसके विषय में यह सम्पूर्ण पुस्तक रही है। यह अपने सर्वाधिक तात्कालिक रूप में ऋत है। वही ब्रह्माण्ड जो ग्रहों की कक्षाओं और आकाशगंगाओं की संरचना को बनाए रखता है, जिसने रसायन से जीवन और जीवविज्ञान से चेतना उत्पन्न की, स्वयं को इस शरीर की विशिष्ट, आत्मीय, अपूरणीय क्रिया में अभिव्यक्त करता हुआ, इस क्षण में, जो उसे जीने के लिए आवश्यक है उसे भीतर लेते हुए और जो उसे अब आवश्यक नहीं उसे छोड़ते हुए।

*

**

आप कुछ नहीं कर रहे। ऋत सब कुछ कर रहा है। और उसमें आपकी सचेत सहभागिता — सजगता के साथ श्वास लेने की, ईमानदारी से देखने की, उस स्पष्टता के साथ कर्म करने की जिसे सरेखण सम्भव बनाता है, आपकी तत्परता — धर्म है। यह पर्याप्त है। यह सदा पर्याप्त रहा है। नदी को समुद्र बनने की आवश्यकता नहीं। इसे केवल सही दिशा में बहने की आवश्यकता है।

*

**

ऋत ब्रह्माण्ड का श्वास लेना है।

धर्म वह है जब आप उसके साथ सचेत रूप से श्वास लेते हैं।

और आप पहले से ही ऐसा कर रहे हैं।

आभार

यह पुस्तक उन प्रज्ञा-परम्पराओं के बिना अस्तित्व में नहीं होती जिन्होंने ऋत और धर्म की समझ को सहस्राब्दियों भर संरक्षित और संचरित किया। ऋग्वेद के ऋषियों के प्रति, उपनिषदों के शिक्षकों के प्रति, परमहंस स्वामी अङ्गद्वानन्द जी महाराज के प्रति जिनका यथार्थ गीता पर भाष्य एक मार्गदर्शक प्रकाश रहा है — ऐसी कृतज्ञता जिसे शब्द पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त नहीं कर सकते।

सीमा बंसल और स्वप्निल सोनी के प्रति, जिनके दिव्य दृष्टि: द कॉस्मिक ब्रेथ पर सहयोग ने वह नींव रची जिससे यह कार्य विकसित हुआ। आधार बंसल, योगेश भाटिया, और दीपिका भाटिया के प्रति, जिनकी मित्रता और वार्तालाप स्पष्टता और प्रोत्साहन के निरन्तर स्रोत रहे हैं।

अनुपमा पाण्डेय के प्रति, मेरी पत्नी — उस धैर्य, उस सहयोग, और संरक्षण में जीने के दैनिक अभ्यास के लिए जो इस सबको सिद्धान्त से अधिक बनाता है।

और उस पाठक के प्रति जो इतनी दूर आया है: आपकी श्वास गहरी हो, आपका बोध स्पष्ट हो, और आपके कर्म उससे संरक्षित हों जो वस्तुतः सत्य है।

— अनिल पाण्डेय, लखनऊ, 2025

प्रमुख शब्दों की शब्दावली

Rita (ऋत)

ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की आधारभूत वैदिक संकल्पना — वह अन्तर्भूत, स्वयं-टिकाऊ संगति जो समस्त स्तरों पर अस्तित्व का शासन करती है। बाहर से आरोपित कोई नियम नहीं, बल्कि वह अन्तर्निहित सिद्धान्त जो नियम, प्रतिरूप, और संगति को सम्भव बनाता है। ऋग्वेद में 500 से अधिक बार प्रकट होता है।

धर्म

सटीक प्रत्युत्तर — वह कर्म जो ऋत की गहन व्यवस्था के प्रकाश में किसी परिस्थिति की वास्तविक आवश्यकताओं से संरेखित होता है। संस्कृत धृ से जिसका अर्थ है 'धारण करना, टिकाना।' धर्म नहीं, स्थिर नैतिकता नहीं, बल्कि सन्दर्भ-संवेदी बुद्धिमत्ता जो संगति को बाधित करने के बजाय टिकाती है।

Karma (कर्म)

परिणाम का सिद्धान्त — यह प्रेक्षण कि प्रत्येक कर्म ऐसे परिणाम रचता है जो विशिष्ट, कारणात्मक, और यादृच्छिक नहीं हैं। अलौकिक पुरस्कार-और-दण्ड नहीं बल्कि जटिल तन्त्रों की उन निवेशों के प्रति स्वाभाविक प्रतिपुष्टि जो वे प्राप्त करते हैं।

Satya (सत्य)

सत्य — विचार, वाणी, और कर्म में वास्तविकता का सटीक प्रतिनिधित्व। मानव चेतना और ऋत की व्यवस्था के बीच का सेतु। ऋग्वैदिक विश्वदृष्टि में ऋत का सहचर।

Prana (प्राण)

श्वास का प्राणिक आयाम; वह जीवन-शक्ति जो व्यक्तिगत जैविक कार्य को ब्रह्माण्ड के वृहत्तर व्यवस्थाकारी सिद्धान्त से जोड़ती है।

Pranayama (प्राणायाम)

सचेत श्वास-नियमन। प्राण (जीवन-शक्ति) और आयाम (प्रसार, नियमन) से नाड़ी शोधन, भ्रामरी, उज्जायी, और आन्तरिक अवस्था को ऋत के साथ संरेखित करने की अनेक अन्य विशिष्ट तकनीकें सम्मिलित हैं।

Chitta (चित्त)

चेतना का क्षेत्र — वह माध्यम जिसमें विचार, भावनाएँ, बोध, स्मृतियाँ, और संस्कार उठते, बने रहते, और विलीन होते हैं। अपनी स्वाभाविक अवस्था में, शुद्ध प्रभामय सजगता।

Vritti (वृत्ति)

चित्त के वे परिवर्तन या उतार-चढ़ाव जो साधारण मानसिक अनुभव का गठन करते हैं। पतंजलि योग को चित्त वृत्ति निरोधः के रूप में परिभाषित करते हैं — स्पष्टता प्रकट करने के लिए इन परिवर्तनों का विराम।

Samskara (संस्कार)

छाप या चिह्न — अनुभव, विचार, और कर्म द्वारा चित्त में छोड़े गए निशान। स्मृति, आदत, और चरित्र का आधार।

Guna (गुण)

गुण या मोड — व्यक्त अस्तित्व की तीन मूलभूत शक्तियाँ: तमस् (जड़ता), रजस् (उद्वेलन), और सत्त्व (स्पष्टता)। उनका सापेक्ष सन्तुलन एक तन्त्र के कार्य के चरित्र को निर्धारित करता है।

Sakshi (साक्षी)

साक्षी — शुद्ध साक्षी सजगता जो मानसिक सक्रियता को उसमें पूर्णतः लीन हुए बिना प्रेक्षित कर सकती है। अद्वैत वेदान्त में, चेतना की स्वाभाविक अनुपाधिक अवस्था।

Nishkama Karma (निष्काम कर्म)

उसके फलों के प्रति आसक्ति के बिना कर्म — भगवद्गीता की केन्द्रीय शिक्षा: पूर्ण संलग्नता और उपस्थिति जबकि उस विकृति से मुक्त जो व्यक्तिगत परिणामों में अहं-निवेश प्रस्तुत करता है।

Ahimsa (अहिंसा)

अहिंसा — केवल हानि की अनुपस्थिति नहीं बल्कि इस पहचान की अभिव्यक्ति कि अस्तित्व एक एकीकृत तन्त्र है। अन्यो को स्वयं के समान ऋत की अभिव्यक्तियों के रूप में देखने की व्यवहारगत अभिव्यक्ति।

Santosha (संतोष)

सन्तोष — वर्तमान क्षण के प्रति आन्तरिक अभिविन्यास का एक गुण जिसे आन्तरिक शान्ति उपलब्ध होने के लिए उससे भिन्न होने की आवश्यकता नहीं जो वह है। पतंजलि के नियमों में से एक।

Tapas (तपस्)

तपस् या ताप — कठिन अनुभव की अग्नि में इतने लम्बे समय तक उपस्थित रहने की तत्परता कि अनावश्यक भस्म हो जाए और अनिवार्य उभर आए।

समता

ध्यान की एक स्थिर, अप्रतिक्रियाशील स्थिरता जो न तो परिस्थितियों से विरक्त है न उनसे अभिभूत। वह आन्तरिक गुण जो सटीक बोध — और धार्मिक प्रत्युत्तर — को सुसंगति से सम्भव बनाता है।

Yat Pinde Tat Brahmande (यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे)

'जो व्यक्ति में है वह ब्रह्माण्ड में है।' व्यक्ति और सार्वभौमिक के बीच संरचनात्मक तादात्म्य की औपनिषदिक पहचान।

Drishti (दृष्टि)

दृष्टि या देखना — बोध का वह गुण जो तब उपलब्ध होता है जब संस्कार और प्रतिक्रियाशीलता की विकृतियाँ घट जाती हैं। दिव्य दृष्टि (ईश्वरीय दृष्टि) बोध की वह स्पष्टता है जो एक पर्याप्त रूप से सरेखित चेतना की स्वाभाविक अवस्था है।

Svadharm (स्वधर्म)

किसी का अपना धर्म — वह विशेष आकार जो सरेखण एक विशिष्ट जीवन में लेता है, किसी की प्रकृति, परिस्थिति, और सामर्थ्य को देखते हुए। भगवद्गीता सिखाती है कि किसी का अपना धर्म, अपूर्ण रूप से किया गया, किसी को दूसरे के भली-भाँति किए धर्म से अधिक सच्चा सरेखित करता है।

Yajna (यज्ञ)

यज्ञ या आहुति। मूलतः वैदिक अग्नि-अनुष्ठान; गीता द्वारा इस पहचान में अन्तःकृत कि एक सम्पूर्ण भली-भाँति जिया गया जीवन एक सतत आहुति है — स्व के लिए पकड़े जाने के बजाय वृहत्तर व्यवस्था में दिया गया कर्म। समस्त सजीव वस्तुओं की खुले-तन्त्र प्रकृति से सरेखित।

स्पन्द

कम्पन, धड़कन, या स्पन्दन। काश्मीर शैव परम्परा में, समस्त अभिव्यक्ति के मूल में आदिम स्पन्दन — यह पहचान कि वास्तविकता अपने गहनतम में स्थैतिक के बजाय लयबद्ध है। आधुनिक भौतिकी की नींवों के क्षेत्र-और-कम्पन चित्र के साथ अनुनादित।

लोगोस

हेराक्लाइटस और बाद में स्टोइकों द्वारा ब्रह्माण्ड के विवेकपूर्ण व्यवस्थाकारी सिद्धान्त के लिए प्रयुक्त यूनानी शब्द — प्रवाह के नीचे की संगति जिसके लिए ज्ञानी सुनते हैं और जिससे सरेखित होते हैं। ऋत का एक पश्चिमी समानान्तर, स्वतन्त्र रूप से पहुँचा गया।

ताओ / वू वेई

ताओ (मार्ग): वास्तविकता की अन्तर्निहित व्यवस्था और गति की चीनी संकल्पना। वू वेई (अबल, सहज कर्म): किसी परिस्थिति के स्वभाव के साथ ऐसे अनुसार कर्म करना कि वस्तुओं की धारा के विरुद्ध कोई संघर्ष आवश्यक न हो — जलधारा-मार्ग। ऋत के साथ संरेखण और गीता के सहज कर्म का एक समानान्तर।

समस्थापन / अपस्थापन

समस्थापन: सतत स्वयं-संशोधक प्रतिपुष्टि के माध्यम से शरीर का एक स्थिर आन्तरिक परिवेश बनाए रखना — शरीरक्रिया में अभिव्यक्त ऋत। अपस्थापन: परिवर्तन के माध्यम से प्राप्त स्थिरता; अपस्थापन-भार दीर्घकालिक तनाव के अधीन स्थिरता बनाए रखने की संचयी शारीरिक लागत है — टिकाए गए विसंरेखण का मापनीय हस्ताक्षर।

ऋणैन्द्रोपी

ऋण एन्द्रोपी — वह व्यवस्था जो एक सजीव तन्त्र अपने परिवेश से निरन्तर खींचता है ताकि अव्यवस्था की उस सार्वभौमिक प्रवृत्ति के विरुद्ध स्वयं को बनाए रखे जिसका वर्णन ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम करता है। जिस पर जीवन निर्वाह करता है उसके लिए श्रोडिंगर का शब्द; उस बहती व्यवस्था का भौतिक मुख जिसे यह पुस्तक ऋत कहती है।

स्वयं-संगठन / उद्भव

सरल सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले भागों की स्थानीय अन्योन्यक्रिया से वृहत्-पैमाने की व्यवस्था का स्वतःस्फूर्त उठना, बिना किसी केन्द्रीय सेनापति के — जैसे पक्षियों के एक झुण्ड या एक सजीव कोशिका में। आरोपित के बजाय अन्तर्भूत व्यवस्था के रूप में समझे गए ऋत के सर्वाधिक निकट से अनुरूप आधुनिक वैज्ञानिक संकल्पना।

पूर्वानुमानी संसाधन

समकालीन तंत्रिकाविज्ञान में एक ढाँचा जो मानता है कि बोध निष्क्रिय ग्रहण नहीं बल्कि सक्रिय पूर्वानुमान है — मस्तिष्क उसका एक प्रतिमान उत्पन्न करता है जिसकी वह अपेक्षा करता है और उसे संवेदी त्रुटि के विरुद्ध सुधारता है। इस पुस्तक के पठन में,

विसंरक्षण एक ऐसा पूर्वानुमानी प्रतिमान है जिसने वास्तविकता के विरुद्ध अद्यतन होना बन्द कर दिया है, और सजगता वह है जो उसे सुधार के लिए पुनः खोलती है।

अपरिवर्त्यता / सममिति

भौतिकी में, वह जो रूपान्तरण के अधीन नहीं बदलता। नोएदर का प्रमेय प्रत्येक संरक्षण-नियम को एक अन्तर्निहित सममिति से जोड़ता है, यह प्रकट करते हुए कि भौतिक नियम की विश्वसनीयता एक गहनतर अपरिवर्त्यता पर टिकी है — समस्त परिवर्तन के नीचे स्थिर व्यवस्था के रूप में ऋत का निकटतम वैज्ञानिक अनुरूप।

लेखक के विषय में

अनिल पाण्डेय प्लेक्सस डिजिटल्स प्रा. लि. के संस्थापक और सीईओ हैं, जो लखनऊ, भारत में स्थित एक तकनीक और डिजिटल रूपान्तरण कम्पनी है, और फिनकैप्सोल के संस्थापक हैं, जो एक रियल एस्टेट परामर्श फर्म है। रोबोटिकी, डिजिटल रूपान्तरण, और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में नवाचार नेतृत्व भर तीन दशकों के अनुभव के साथ, वे अपने लेखन में सीएक्सओ-स्तरीय रणनीतिक चिन्तन और गहन दार्शनिक जिज्ञासा का एक विरल संयोजन लाते हैं।

वे साइंस ऑफ़ स्पिरिचुअलिटी यूट्यूब चैनल के रचयिता हैं, जो आधुनिक विज्ञान के प्राचीन भारतीय प्रज्ञा-परम्पराओं के साथ अभिसरण का अन्वेषण करता है — एक ऐसी परियोजना जिसने हजारों दर्शकों को समकालीन जीवन के लिए वेदान्तिक और योगिक अन्तर्दृष्टियों की जीवित प्रासंगिकता से जोड़ा है।

ऋत एवं धर्म: संरक्षण का विज्ञान उनकी साइंस ऑफ़ स्पिरिचुअलिटी शृंखला का आधारभूत खण्ड है — कृतियों का एक क्रम जो एक एकल जिज्ञासा का अनुसंधान करता है जो पहली बार 2005 में गति में लाई गई, जब डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने उनसे पूछा कि भगवद्गीता में विज्ञान कहाँ था। यह शृंखला दिव्य दृष्टि: द कॉस्मिक ब्रेथ से, जो श्वास-विज्ञान, वेदान्तिक प्रज्ञा, और ब्रह्माण्डविज्ञान को मानव चेतना के एक एकीकृत ढाँचे में समेकित करती है, इस पुस्तक और द साइंस ऑफ़ कर्म के माध्यम से, साइंस इन द श्रीमद् भगवद्गीता में अपनी परिणति की ओर बढ़ती है। उनका लेखन उसी परिशुद्धता और स्पष्टता से लक्षित है जो वे रणनीतिक नेतृत्व में लाते हैं — बौद्धिक रूप से कठोर, व्यावहारिक रूप से आधारित, और परमहंस स्वामी अङ्गड़ानन्द जी महाराज तथा यथार्थ गीता आश्रम द्वारा प्रतिनिधित्व की गई प्राचीन प्रज्ञा-परम्परा में निहित।

वे लखनऊ, भारत में रहते और कार्य करते हैं, जहाँ वे प्राचीन प्रज्ञा और आधुनिक समझ के प्रतिच्छेदन का अन्वेषण करते रहते हैं, इस विश्वास के साथ कि दोनों तनाव में नहीं बल्कि भिन्न लेंसों के माध्यम से प्रेक्षित उसी ऋत की अभिव्यक्तियाँ हैं।

ग्रन्थसूची और अग्रिम पठन

निम्नलिखित कृतियों ने इस पुस्तक में विकसित ऋत, धर्म, और सरेखण की समझ को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूचित किया है। वे यहाँ उस पाठक के लिए द्वारों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं जो अधिक गहरे जाना चाहता है।

प्राथमिक संस्कृत स्रोत

Adgadanand, Paramhans Swami. Yatharth Geeta: As It Is. Yatharth Geeta Ashram, Lucknow. (अनेक संस्करण)। भगवद्गीता की सरेखण और आन्तरिक रूपान्तरण के एक विज्ञान के रूप में इस पुस्तक की व्याख्या के लिए आधारभूत ग्रन्थ।

The Rigveda. Translated by Stephanie W. Jamison and Joel P. Brereton. Oxford University Press, 2014. ब्रह्माण्डीय व्यवस्था के रूप में ऋत की संकल्पना के लिए प्राथमिक स्रोत।

Patanjali. The Yoga Sutras of Patanjali. Translated by Sri Swami Satchidananda. Integral Yoga Publications, 1990. चित्त, वृत्ति, संस्कार, और आन्तरिक रूपान्तरण के व्यवस्थित विज्ञान पर आधारभूत ग्रन्थ।

The Upanishads. Translated by Eknath Easwaran. Nilgiri Press, 2007. छान्दोग्य, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, और केन उपनिषद सम्मिलित हैं, जो ऋत, ब्रह्म, और यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे को समझने के लिए आधारभूत हैं।

The Bhagavad Gita. Translated by Eknath Easwaran. Nilgiri Press, 2007. यथार्थ गीता के साथ तुलनात्मक पठन के लिए।

Vivekananda, Swami. Raja Yoga. Advaita Ashrama, 1920 (पुनर्मुद्रण)। पतंजलि के योग सूत्रों और चेतना के विज्ञान की एक स्पष्ट आधुनिक व्याख्या।

वैदिक दर्शन और भारतीय प्रज्ञा-परम्पराएँ

- Chinmayananda, Swami. The Art of Man Making. Central Chinmaya Mission Trust, 1995. धर्म, चरित्र, और आन्तरिक जीवन पर।
- Krishnamurti, J. Freedom from the Known. Harper & Row, 1969. संस्कार, बोध, और मनोवैज्ञानिक स्वतन्त्रता की प्रकृति पर।
- Maharshi, Ramana. Be As You Are: The Teachings of Sri Ramana Maharshi. Edited by David Godman. Arkana, 1985. साक्षी, आत्म-जिज्ञासा, और सजगता की प्रकृति पर।
- Radhakrishnan, S. Indian Philosophy, Volumes I and II. Oxford University Press, 1923. वैदिक, औपनिषदिक, और शास्त्रीय भारतीय चिन्तन का एक व्यापक विद्वत्तापूर्ण विवेचना।
- Sivananda, Swami. Practice of Karma Yoga. Divine Life Society, 1937. निष्काम कर्म और आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में कर्म पर।

तंत्रिकाविज्ञान और मनोविज्ञान

- Davidson, Richard J., and Sharon Begley. The Emotional Life of Your Brain. Hudson Street Press, 2012. तंत्रिका-सुनम्यता और अभ्यास के माध्यम से परिवर्तन की मस्तिष्क की क्षमता पर।
- Goleman, Daniel, and Richard J. Davidson. Altered Traits: Science Reveals How Meditation Changes Your Mind, Brain, and Body. Avery, 2017. ध्यान के प्रभावों पर वैज्ञानिक प्रमाण की एक कठोर समीक्षा।
- Hanson, Rick. Hardwiring Happiness: The New Brain Science of Contentment, Calm, and Confidence. Harmony, 2013. तंत्रिका-सुनम्यता और सकारात्मक मस्तिष्क परिवर्तन पर।
- Porges, Stephen W. The Polyvagal Theory: Neurophysiological Foundations of Emotions, Attachment, Communication, and Self-

Regulation. W. W. Norton, 2011. श्वास, वेगस तंत्रिका, और तंत्रिका-तन्त्र नियमन को समझने का वैज्ञानिक आधार।

Sapolsky, Robert M. Why Zebras Don't Get Ulcers. Henry Holt, 2004. दीर्घकालिक तनाव के जीवविज्ञान और स्वास्थ्य के लिए उसके परिणामों पर।

Siegel, Daniel J. Mindsight: The New Science of Personal Transformation. Bantam, 2010. एकीकरण, सजगता, और कल्याण के तंत्रिकाविज्ञान पर।

तन्त्र-विज्ञान और जटिलता

Capra, Fritjof. The Web of Life: A New Scientific Understanding of Living Systems. Anchor Books, 1996. स्वयं-संगठन, जटिलता, और जीवन की तन्त्र-दृष्टि पर।

Meadows, Donella H. Thinking in Systems: A Primer. Chelsea Green, 2008. तन्त्र-चिन्तन और प्रतिपुष्टि-चक्रों का एक सुलभ और कठोर परिचय।

Senge, Peter M. The Fifth Discipline: The Art and Practice of the Learning Organization. Doubleday, 1990. संगठनात्मक जीवन पर लागू तन्त्र-चिन्तन पर।

Waldrop, M. Mitchell. Complexity: The Emerging Science at the Edge of Order and Chaos. Simon & Schuster, 1992. उद्भव, स्वयं-संगठन, और जटिल अनुकूली तन्त्रों पर।

दर्शन, नैतिकता, और प्रज्ञा-परम्पराएँ

Aurelius, Marcus. Meditations. Translated by Gregory Hays. Modern Library, 2002. समता, धार्मिक कर्म, और प्रकृति के अनुसार जीने पर स्टोइक क्लासिक।

Frankl, Viktor E. Man's Search for Meaning. Beacon Press, 1959. अर्थ, प्रत्युत्तर, और उद्दीपन तथा प्रत्युत्तर के बीच के अवकाश में विद्यमान स्वतन्त्रता पर।

Lao Tzu. Tao Te Ching. Translated by Stephen Mitchell. Harper & Row, 1988. वू वेई, अबल कर्म, और स्वाभाविक व्यवस्था के साथ संरक्षण पर आधारभूत ताओवादी ग्रन्थ।

Seneca. Letters from a Stoic. Translated by Robin Campbell. Penguin Classics, 1969. समता, ध्यान, और आन्तरिक स्वतन्त्रता के स्टोइक मार्ग पर।

चेतना और चिन्तनपरक विज्ञान

Chalmers, David J. The Conscious Mind: In Search of a Fundamental Theory. Oxford University Press, 1996. चेतना की कठिन समस्या और मन तथा वास्तविकता के बीच सम्बन्ध पर।

Penrose, Roger. The Emperor's New Mind. Oxford University Press, 1989. चेतना, क्वाण्टम यान्त्रिकी, और मन के अभिकलनात्मक प्रतिमानों की सीमाओं पर।

Thompson, Evan. Mind in Life: Biology, Phenomenology, and the Sciences of Mind. Harvard University Press, 2007. चेतना, जीवन, और मन तथा जीव के बीच गहन सम्बन्ध पर।

पर्यावरण नैतिकता और पारिस्थितिकी

Berry, Thomas. The Dream of the Earth. Sierra Club Books, 1988. मानवता के प्राकृतिक संसार के साथ सम्बन्ध और पारिस्थितिक पुनर्संरक्षण की आवश्यकता पर।

Leopold, Aldo. A Sand County Almanac. Oxford University Press, 1949. पारिस्थितिक चिन्तन और भूमि-नैतिकता पर।

Wilson, E. O. Biophilia. Harvard University Press, 1984. सजीव तन्त्रों के प्रति जन्मजात मानवीय आत्मीयता और कल्याण तथा नैतिकता के लिए उसके निहितार्थों पर।

अधिक गहरे जाने के लिए अनुशंसित पठन

Chopra, Deepak, and Leonard Mlodinow. War of the Worldviews: Science vs. Spirituality. Harmony, 2011. वास्तविकता के प्रति वैज्ञानिक और चिन्तनपरक उपागमों के बीच संवाद पर।

- Hawkins, David R. Power vs. Force: The Hidden Determinants of Human Behavior. Veritas, 1995. चेतना, संरक्षण, और आन्तरिक अवस्था के व्यावहारिक परिणामों पर।
- Pandey, Anil. Divya Drishti: The Cosmic Breath. Plexus Digital, 2024. लेखक की पूर्व कृति, जो श्वास-विज्ञान, वेदान्तिक प्रज्ञा, और ब्रह्माण्डविज्ञान को समेकित करती है।
- Tolle, Eckhart. The Power of Now. New World Library, 1999. उपस्थिति, सजगता, और संस्कारित प्रतिक्रियाशीलता के विलय पर।
- Wilber, Ken. A Theory of Everything: An Integral Vision for Business, Politics, Science, and Spirituality. Shambhala, 2000. मानव विकास की एक व्यापक समझ के लिए अनेक परिप्रेक्ष्यों को समेकित करने पर।

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्याएँ अध्यायों को सन्दर्भित करती हैं; प्रमुख संकल्पनाएँ
उन अध्यायों के साथ सूचीबद्ध हैं जहाँ उन्हें प्राथमिक विवेचन मिलता है।

A

अहिंसा (अहिंसा) अध्याय 51

- बोध के रूप में, केवल व्यवहार नहीं अध्याय 51
- सूक्ष्म रूप: वाणी और विचार अध्याय 51
- हिंसा विसरेखण के रूप में अध्याय 51

सरेखण सर्वत्र

- घर-वापसी के रूप में, उपलब्धि नहीं अध्याय 8
- जीवनपर्यन्त अभ्यास के रूप में अध्याय 45
- सरेखण में जिया गया एक दिन अध्याय 44
- पारिस्थितिक सरेखण अध्याय 52
- आन्तरिक और बाह्य एक के रूप में अध्याय 30
- बनाम नियन्त्रण अध्याय 17

ध्यान अध्याय 27

- डिजिटल युग और विकर्षण अध्याय 55
- ध्यान का अर्थशास्त्र अध्याय 27
- एकल-कार्य अध्याय 44

स्वायत्त तंत्रिका-तन्त्र अध्याय 5, 20, 39, 48

- परानुकम्पी सक्रियण अध्याय 5, 20
- बहुवेगस सिद्धान्त अध्याय 48
- अनुकम्पी बनाम परानुकम्पी अध्याय 5

सजगता अध्याय 21

- सुधारक शक्ति के रूप में अध्याय 21
- साक्षी-गुण का विकास अध्याय 21, 43
- बनाम चिन्तन अध्याय 21

B

भगवद्गीता अध्याय 11, 38

अर्जुन का संकट अध्याय 38

निष्काम कर्म अध्याय 29, 38

यथार्थ गीता भाष्य प्राक्कथन, अध्याय 38

भ्रामरी प्राणायाम अध्याय 39

शरीर अध्याय 4

जैविक ऋत अध्याय 4

शरीर-संकेत सूचना के रूप में अध्याय 4

वे व्यवधान जो हम चुनते हैं अध्याय 4, 16

समस्थापन अध्याय 4

निद्रा अध्याय 24, 44

श्वास अध्याय 5, 20, 39, 72

जीवित सेतु के रूप में अध्याय 5

बोलने से पूर्व अध्याय 72

सचेत ठहराव तकनीक अध्याय 72

दैनिक समेकन अध्याय 20, 72

अभ्यास का प्रवेश-बिन्दु अध्याय 20

श्वास-अभ्यास के स्तर अध्याय 20

प्राण और अध्याय 5, 39

प्राणायाम अभ्यास अध्याय 39

तीन-श्वास पुनःस्थापन अध्याय 72

बौद्ध धर्म, उसमें धर्म अध्याय 50

C

चित्त (चेतना का क्षेत्र) अध्याय 41

स्पष्टता की स्वाभाविक अवस्था अध्याय 6, 41

का शुद्धिकरण अध्याय 41

वृत्ति (उतार-चढ़ाव) अध्याय 41

स्पष्टता अध्याय 15

बोधात्मक स्पष्टता कैसे उठती है अध्याय 15

बनाम बौद्धिक समझ अध्याय 15

- जब स्पष्टता आती है तो क्या बदलता है अध्याय 15
- सामूहिक धर्म अध्याय 68
- प्रतिबद्धता अध्याय 62
- समुदाय (सङ्घ) अध्याय 45, 59
- संस्कार अध्याय 14
 - संस्कार के रूप में अध्याय 42
 - संस्कार को देखना अध्याय 14
 - बनाम ताज़ा बोध अध्याय 14, 22
- चेतना अध्याय 41, 43
 - चित्त इसके क्षेत्र के रूप में अध्याय 41
 - साक्षी (द्रष्टा) अध्याय 43
 - की तीन अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, गहन निद्रा) अध्याय 44
- सन्तोष (सन्तोष) अध्याय 54
- नियन्त्रण, का भ्रम अध्याय 17

D

- दैनिक जीवन, उसमें धर्म अध्याय 24
 - भोजन अध्याय 24
 - सान्ध्य पुनरावलोकन अध्याय 71
 - प्रातःकालीन अभ्यास अध्याय 24, 70
 - गति और विश्राम अध्याय 24
 - निद्रा अध्याय 24, 44
- मृत्यु, का धर्म अध्याय 67
- डिफ़ॉल्ट मोड नेटवर्क (डीएमएन) अध्याय 48
- धर्म अध्याय 9
 - सटीक प्रत्युत्तर परिभाषित अध्याय 9
 - सामूहिक धर्म अध्याय 68
 - सन्दर्भगत और भूमिका-आधारित अध्याय 11
 - निर्णय-निर्माण और अध्याय 12
 - मृत्यु का अध्याय 67
 - डिजिटल युग का अध्याय 55
 - विवाह और साझेदारी का अध्याय 63

- प्रकृति और पारिस्थितिकी का अध्याय 52
- साधारण जीवन का अध्याय 24
- माता-पिता-भाव का अध्याय 64
- दुःख का अध्याय 58
- कार्य का अध्याय 25
- बनाम धर्म और नैतिकता अध्याय 9
- धर्म क्या नहीं है अध्याय 9
- डिजिटल युग अध्याय 55
 - ध्यान और विकर्षण अध्याय 55
 - गहन कार्य आधुनिक धर्म के रूप में अध्याय 55
 - पहचान और निष्पादन अध्याय 55
- विवेक (विवेक) अध्याय 59
- दृष्टि (दर्शन/बोध) अध्याय 22, शब्दावली

E

- पारिस्थितिकी अध्याय 52
 - पर्यावरण-संकट विसंरक्षण के रूप में अध्याय 31, 52
 - प्रकृति ऋत की अभिव्यक्ति के रूप में अध्याय 52
- सहज कर्म (वू वेई) अध्याय 28
- भावनाएँ अध्याय 57
 - सूचना के रूप में, पहचान नहीं अध्याय 57
 - शरीर भावनात्मक बुद्धिमत्ता के रूप में अध्याय 57
 - नामकरण तकनीक अध्याय 23, 57
 - संकेत बनाम कोलाहल अध्याय 18, 57
- ऊर्जा (व्यक्तिगत) अध्याय 27
 - प्रबन्धन बनाम समय-प्रबन्धन अध्याय 27
 - अल्ट्राडियन लय अध्याय 44
- समता अध्याय 12, शब्दावली
 - निर्णय-निर्माण में अध्याय 12
 - शारीरिक आधार अध्याय 39
- सान्ध्य पुनरावलोकन अभ्यास अध्याय 71

F

प्रतिपुष्टि के रूप में विफलता अध्याय 19

सुधार का चक्र अध्याय 19

कर्म और अध्याय 19

विफलता को भली-भाँति ग्रहण करना अध्याय 19

प्रवाह-अवस्थाएँ अध्याय 28

भग्न और संरचनात्मक तादात्म्य अध्याय 8

G

शोक, का धर्म अध्याय 46, 58

गुण (प्रकृति के तीन मोड) अध्याय 40

रजस् (उद्वेलन) अध्याय 40

सत्त्व (स्पष्टता) अध्याय 40

तमस् (जड़ता) अध्याय 40

गुरु-सिद्धान्त अध्याय 61

H

आदत-परिवर्तन, तंत्रिकावैज्ञानिक आधार अध्याय 56

तंत्रिका-सुनम्यता और अध्याय 48, 56

प्रतिपक्ष भावना (विपरीत संवर्धन) अध्याय 42, 56

पुनरावृत्ति क्रियाविधि के रूप में अध्याय 56

हृदय-गति परिवर्तनशीलता (एचआरवी) अध्याय 5, 39, 48

समस्थापन अध्याय 4

I

पहचान (डिजिटल युग और) अध्याय 55

अनित्यता अध्याय 66

अनुक्रमणिका (यह खण्ड) पृ. -

आन्तरिक विज्ञान भाग दस

K

कर्म अध्याय 13

धर्म और अध्याय 13

अलौकिक नहीं अध्याय 13

निष्काम कर्म अध्याय 29, 38

तत्काल क्यों नहीं अध्याय 13

ज्ञान (सही और ग़लत) अध्याय 41

L

नेतृत्व अध्याय 7, 25

संरखित बनाम नियन्त्रक अध्याय 7, 17

धार्मिक नेतृत्व अध्याय 25

ऋत और संगठनात्मक अभिकल्प अध्याय 32

धार्मिक अभ्यास के रूप में श्रवण अध्याय 26

लोगोस (यूनानी संकल्पना) अध्याय 50

प्रेम (प्रेम) अध्याय 53

सर्वोच्च संरखण के रूप में अध्याय 53

प्रेम और ऋत अध्याय 53

प्रक्षेपण और अध्याय 53

M

विवाह और साझेदारी अध्याय 63

अर्थ, ऋत और अध्याय 47

ध्यान अध्याय 60

डिफ़ॉल्ट मोड नेटवर्क इससे घटाया गया अध्याय 48

प्रातःकालीन अभ्यास अध्याय 70

स्पष्टता का व्यवस्थित संवर्धन अध्याय 60

मानसिक स्वास्थ्य महामारी अध्याय 31

मन अध्याय 6

मानसिक जीवन की कारणात्मक संरचना अध्याय 6

स्पष्टता की स्वाभाविक अवस्था अध्याय 6

मन में ऋत अध्याय 6

विसरेखण भाग तीन

शरीर-प्रत्युत्तर की प्रावस्थाएँ अध्याय 16

ऋत की उपेक्षा की लागत अध्याय 16

नियन्त्रण का भ्रम अध्याय 17

संगठनात्मक विसरेखण अध्याय 16

प्रातःकालीन अभ्यास अध्याय 70

N

नाड़ी शोधन (अनुलोम-विलोम श्वसन) अध्याय 39

तंत्रिका-सुनम्यता अध्याय 48, 56

तंत्रिकाविज्ञान और संरेखण अध्याय 48

निष्काम कर्म (आसक्ति के बिना कर्म) अध्याय 29, 38, शब्दावली

अनासक्ति (वैराग्य) अध्याय 58

अहिंसा (अहिंसा) अध्याय 51

O

संगठन अध्याय 7

ईमानदार सूचना-प्रवाह अध्याय 7

में विसरेखण अध्याय 16

ऋत-आधारित अभिकल्प अध्याय 32

मूल्य बनाम व्यवहार अन्तराल अध्याय 7

P

पीड़ा बनाम दुःख अध्याय 58

परमहंस स्वामी अङ्गद्वानन्द जी महाराज प्रेरणा पृष्ठ, प्राक्कथन, अध्याय 38

माता-पिता-भाव, का धर्म अध्याय 64

पतंजलि के योग सूत्र अध्याय 41

चित्त वृत्ति निरोधः अध्याय 41

- वृत्ति के पाँच प्रकार अध्याय 41
- नियम और सन्तोष अध्याय 54
- बोध अध्याय 22
 - की विकृतियाँ अध्याय 22
 - भावनात्मक रंगाई अध्याय 22
 - अतीत-प्रक्षेपण अध्याय 22
 - चयनात्मक ध्यान अध्याय 22
- बहुवेगस सिद्धान्त अध्याय 48
- प्राण अध्याय 5, 39, शब्दावली
- प्राणायाम अध्याय 39, शब्दावली
 - भ्रामरी अध्याय 39
 - दैनिक जीवन अनुप्रयोग अध्याय 72
 - नाड़ी शोधन अध्याय 39
 - उज्जायी अध्याय 39
- प्रतिपक्ष भावना अध्याय 42
- प्रेम (अशर्त प्रेम) अध्याय 53
- प्रक्षेपण (मनोवैज्ञानिक) अध्याय 26, 53

R

- प्रतिक्रिया बनाम प्रत्युत्तर अध्याय 23
 - अन्तराल का निर्माण अध्याय 23
 - नामकरण तकनीक अध्याय 23
 - एक सचेत श्वास तकनीक अध्याय 23, 72
- सम्बन्ध अध्याय 26
 - देखभाल के रूप में ईमानदारी अध्याय 26
 - धार्मिक अभ्यास के रूप में श्रवण अध्याय 26
 - में प्रक्षेपण अध्याय 26
- विश्राम अध्याय 24
- ऋग्वेद अध्याय 36
 - ऋग्वेद में ऋत अध्याय 36
 - में सत्य अध्याय 36, 37
 - वरुण ऋत के रक्षक के रूप में अध्याय 36

ऋत सर्वत्र

- जैविक बुद्धिमत्ता के रूप में अध्याय 2, 4
- नैतिक संगति के रूप में अध्याय 2
- भौतिक नियम के रूप में अध्याय 2, 3
- मनोवैज्ञानिक कारणता के रूप में अध्याय 2, 6
- ऋग्वेद में खोज अध्याय 36
- तन्त्रों और संगठनों में अध्याय 7
- संरचना की तीन अभिव्यक्तियाँ अध्याय 3
- आप ऋत की अभिव्यक्ति के रूप में अध्याय 8

भूमिका-आधारित धर्म अध्याय 11

S

- सहज (स्वाभाविक अवस्था) अध्याय 28
- साक्षी (द्रष्टा चेतना) अध्याय 43, शब्दावली
- संस्कार (छाप) अध्याय 42, शब्दावली
 - के लिए प्रतिपक्ष भावना अध्याय 42
 - आदत के आधार के रूप में अध्याय 42
- सङ्घ (समुदाय) अध्याय 45
- सन्तोष (सन्तुष्टि) अध्याय 54, शब्दावली
- सत्य (सत्य) अध्याय 37, शब्दावली
 - इनकार असत्य के रूप में अध्याय 37
 - डिजिटल युग में अध्याय 55
 - संगठनात्मक जीवन में अध्याय 25, 37
 - आत्म-वंचना असत्य के रूप में अध्याय 37
 - रणनीतिक मिथ्यानिरूपण अध्याय 37
- स्वयं-संगठन अध्याय 3, 7, 49
- सेवा (सेवा) अध्याय 65
- निद्रा अध्याय 4, 24, 44
- स्टोइक दर्शन अध्याय 17, 50
- तनाव अध्याय 18
 - दीर्घकालिक तनाव-प्रभाव अध्याय 4, 16

संकेत बनाम कोलाहल अध्याय 18

तनाव सूचना के रूप में अध्याय 18

दुःख अध्याय 46, 58

दुःख की कीमिया अध्याय 46

पीड़ा बनाम दुःख अध्याय 58

द्वितीयक दुःख अध्याय 46, 58

सुषुम्ना नाड़ी अध्याय 5, शब्दावली

तन्त्र-विज्ञान अध्याय 49

उद्भव अध्याय 49

प्रतिपुष्टि-चक्र अध्याय 7, 49

स्वयं-संगठन अध्याय 3, 49

T

ताओ (व्यवस्था की चीनी संकल्पना) अध्याय 50

तपस् (तप) अध्याय 46, शब्दावली

तकनीक और संरेखण अध्याय 32, 55

समय-प्रबन्धन बनाम ऊर्जा-प्रबन्धन अध्याय 27

परम्पराएँ, उनमें भर ऋत अध्याय 50

बौद्ध धर्म अध्याय 50

यूनानी दर्शन / लोगोस अध्याय 50

ताओवाद / वू वेई अध्याय 50

रूपान्तरण, आन्तरिक का विज्ञान भाग चौदह

U

उज्जायी प्राणायाम अध्याय 39

उपनिषद अध्याय 8, 30, 43

यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे अध्याय 8, 30

V

वेगस तंत्रिका अध्याय 5, 39, 48

वैराग्य (अनासक्ति) अध्याय 58

वरुण (ऋत के रक्षक) अध्याय 36

विवेक (विवेचन) अध्याय 59

वृत्ति (मानसिक उतार-चढ़ाव) अध्याय 41, शब्दावली

W

साक्षी चेतना (साक्षी) अध्याय 43

कार्य अध्याय 25

गहन कार्य आधुनिक धर्म के रूप में अध्याय 55

धार्मिक नेतृत्व अध्याय 25

की नैतिकता अध्याय 25

वू वेई (सहज कर्म) अध्याय 28, 50

Y

यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे अध्याय 8, 30, शब्दावली

यथार्थ गीता प्राक्कथन, अध्याय 38

पतंजलि के योग सूत्र अध्याय 41

चित्त वृत्ति निरोधः अध्याय 41

नियम (सन्तोष) अध्याय 54

विस्तारित सामग्री के लिए अग्रिम पठन (भाग सत्रह-चौबीस)

Lao Tzu. Tao Te Ching. (अनेक अनुवाद।) ताओवाद का आधारभूत ग्रन्थ और वू वेई की शिक्षा का क्लासिक स्रोत — मार्ग के अनुसार सहज, अविवादी कर्म।

Marcus Aurelius. Meditations. (अनेक अनुवाद।) ब्रह्माण्ड की विवेकपूर्ण व्यवस्था के अनुसार जीने पर एक स्टोइक सम्राट की निजी नोटबुक — संरक्षण के अभ्यास का पश्चिमी परम्परा का सर्वाधिक व्यक्तिगत अभिलेख।

Epictetus. Discourses and Enchiridion. (अनेक अनुवाद।) इस बीच का स्टोइक भेद कि क्या हमारी शक्ति में है और क्या नहीं — पूर्णता से कर्म करते हुए परिणामों के प्रति आसक्ति छोड़ने पर गीता की शिक्षा का एक पश्चिमी समानान्तर।

Schrödinger, Erwin. What Is Life? Cambridge University Press, 1944.

भौतिकविद के क्लासिक व्याख्यान जो यह विचार प्रस्तुत करते हैं कि सजीव जीव ऋण-एन्ट्रॉपी पर निर्वाह करके अपनी व्यवस्था टिकाते हैं — ऊष्मागतिकी और उस बहती व्यवस्था के बीच एक प्रमुख सेतु जिसे यह पुस्तक ऋत कहती है।

Heraclitus. Fragments. (अनेक अनुवाद।) उस पूर्व-सुकराती दार्शनिक के बचे हुए अंश जिसने लोगोस को नाम दिया — प्रवाह के नीचे की छिपी व्यवस्था जिसे सुनना ज्ञानियों को सीखना ही चाहिए।

अध्याय संख्याएँ मूल अध्याय अनुक्रम (1-72) को सन्दर्भित करती हैं;
विस्तारित संस्करण अध्याय 114 तक जारी रहता है।

लेखक के विषय में

दिव्य दृष्टि त्रयी

अनिल पाण्डेय 'दिव्य दृष्टि त्रयी' के लेखक हैं — वेदान्तिक आन्तरिक विज्ञान तथा समकालीन भौतिकी, तंत्रिका-विज्ञान और ब्रह्मांड-विज्ञान का त्रि-खण्डीय व्यवस्थित एकीकरण। इस त्रयी में सम्मिलित हैं: 'दिव्य दृष्टि: ब्रह्मांडीय श्वास' (प्रथम खण्ड), 'दिव्य दृष्टि: क्रतु और धर्म' (द्वितीय खण्ड), तथा 'दिव्य दृष्टि: यू-इनवर्स — चेतना का कोड, जैसा भीतर वैसा बाहर' (तृतीय खण्ड)।

उनका कार्य एक विशिष्ट प्रतीति से आगे बढ़ता है: कि प्राचीन भारत की चिन्तनशील परम्पराओं और आधुनिक पश्चिम के अनुभवसिद्ध विज्ञानों के बीच की आभासी पृथक्ता यथार्थ की कोई अनिवार्य विशेषता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक इतिहास की एक आकस्मिकता है। दोनों परम्पराएँ एक ही यथार्थ का अन्वेषण भिन्न पद्धतियों से करती आई हैं, और वर्तमान क्षण उनके एकीकरण का एक अभूतपूर्व अवसर प्रस्तुत करता है।

उनका दृष्टिकोण न तो धार्मिक कट्टरता है और न वैज्ञानिक भौतिकवाद। वे समकालीन विज्ञान के विशिष्ट अनुभवसिद्ध निष्कर्षों को बाह्य ब्रह्मांड के प्रामाणिक ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं। वे वैदिक चिन्तन परम्परा के विशिष्ट अनुभवसिद्ध निष्कर्षों को भी आन्तरिक ब्रह्मांड के प्रामाणिक ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं। वे अपने समस्त कार्य में यह प्रदर्शित करते हैं कि ज्ञान के ये दोनों निकाय एक ही यथार्थ — यू-इनवर्स — पर अभिसरित होते हैं, और यह कि उनका एकीकरण ऐसा बोध उत्पन्न करता है जिस तक कोई भी परम्परा अकेले नहीं पहुँच सकती।

अनिल पाण्डेय लखनऊ, भारत में निवास करते हैं। वे वेदान्त परम्परा के एक समर्पित अध्येता हैं, जो निरन्तर चिन्तन-साधना में संलग्न रहते हैं — वही साधना जो उनकी पुस्तकों के सैद्धान्तिक ढाँचे को अनुप्राणित करती है।

उनका यह कार्य यथार्थ गीता आश्रम के परमहंस स्वामी अङ्गुलानन्द जी महाराज को समर्पित है, जिनकी शिक्षाएँ वह अनुभवजन्य आधार प्रदान करती हैं जिससे इस त्रयी का सैद्धान्तिक ढाँचा उद्भूत होता है। स्वामीजी द्वारा आत्मसात् की गई सिद्ध अवस्था का जीवन्त मूर्तरूप, जो सच्ची जिज्ञासा के साथ उनके निकट आने वाले शिष्यों के लिए निरन्तर उपलब्ध है, वही वह विशिष्ट स्थिति है जो इस कार्य को सम्भव बनाती है। जिसने अन्तर्यात्रा पूर्ण की हो, ऐसी किसी सत्ता तक पहुँच के बिना, इन पुस्तकों में सूत्रबद्ध ढाँचा वर्णन नहीं, बल्कि मात्र कल्पना होता।

यह खण्ड कर्नल लक्ष्मी कान्त तिवारी, भारतीय सेना (सेवानिवृत्त) की स्मृति में भी समर्पित है — जिनकी मौन सेवा, जिनके अनुशासन, और जिनकी गम्भीर उपस्थिति ने इस बात की लेखक की आरम्भिक समझ को आकार दिया कि सत्यनिष्ठा के साथ जीना क्या होता है।

लेखक स्वामीजी के प्रति, यथार्थ गीता आश्रम के साधकों के सुदृढ़ समुदाय के प्रति, उन अनेक वैज्ञानिक शोधकर्ताओं के प्रति जिनके कार्य इस खण्ड में उद्धृत हैं, तथा उन पाठकों के प्रति जो इस कार्य से सच्ची जिज्ञासा की भावना से जुड़ते हैं — सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। यह त्रयी प्राचीन और आधुनिक बोधों का जो एकीकरण करने का प्रयास करती है, वह परवर्ती अन्वेषकों के हाथों निरन्तर विकसित होता रहे — चेतना और ब्रह्मांड के उस व्यापक बोध की ओर जिसकी वह यथार्थ, जिसमें हम निवास करते हैं, माँग भी करता है और सम्भव भी बनाता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शान्ति, शान्ति, शान्ति।

